यह पुस्तक, बम्बई खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लैन, स्वकीय **श्रीवेङ्कटेश्वर** स्टीम् प्रेसमें **खेमराज श्रीकृष्णदासने** अपने लिये छापकर यहीं प्रकाशित किया ।

भूमिका।

संसारमें कौनसा ऐसा पंडित और महात्मा संन्यासी होगा जो कि, श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीके नामको न जानता होगा. यद्यपि स्वामी दत्तात्रेयजीके नामको तो इस भारतखण्डमें अनेक स्त्री पुरुष जानते हैं, तथापि उनके त्याग और वैराग्यके वृत्तान्तको बहुत ही कम पुरुष जानते हैं, सो मैंने इस ग्रन्थकी आदिमें उनके **जीवनवृत्तान्त** को प्रथम दिखला करके फिर स्वामी दत्तात्रेयजीकी बनाई हुई जो "अवधूत गीता" है उसके प्रत्येक शब्दके अर्थको और फिर तिसके भावार्थको भी दिखाया है मुझे आशा है कि उसको पढकरके संपूर्ण विरक्त महात्मा जन दत्तात्रेयजीकी तरह गुणोंको ग्रहण करके परम लाभ उठावेंगे।

स्वामी परमानन्दजी-

ईश्वर गुरु वन्दना।

दोहाः—नमो नमो तिस रूपको, आदि अन्त जेहि नाहिं।
सो साक्षी मम रूप है, घाट बाढ कहुँ नाहिं॥ १॥
अवगत अविनाशी अचल, व्याप रह्यो सब थाहि।
जो जानै अस रूपको, मिटै, जगत भ्रम ताहि॥२॥
हंसदास गुरुको प्रथम, प्रणमों वारंवार।
नाम लेतजेहि तम मिटै, अघ होवत सब छार॥ ३॥

टीकाकारका परिचय।

चौ०—परमानन्द मम नाम पछानो।उदासीन मम पथको जानो
रामदास मम गुरुको गुरु है।आत्म वित्त जो मुनिवर गुनिहै ४॥
दोहाः—परशराम मम नगर है, सिंधु नदी उस पार।
भारतमंडलके विषै, जानै सब संसार॥ ५॥

अथ श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीका वृत्तान्त।

संसारमें जन्ममरण रूपी बन्धनसे छूटनेके लिये संपूर्ण मोक्षके साधनोंसे वैराग्यही प्रधान साधन है क्योंकि जबतक प्रथम पुरुषको वैराग्य नहीं होताहै तबतक पुरुषका मन विषयभोगोंकी तरफसे नहीं हटताहै और मनको भोगोंकी तरफसे हटाये बिना कोई भी मोक्षका साधन सफल नहीं होता है इसीसे सिद्ध होताहै कि संपूर्ण मोक्षके साधनोंका मूल कारण वैराग्य ही है क्योंकि आजतक जितने जीवन्मुक्त महात्मा हुए हैं वे सब वैराग्य करके ही हुए है सो वैराग्य तीन प्रकारका है एक तो मन्द वैराग्य है दूसरा तीव्र है तीसरा तीव्रतर वैराग्य है, स्त्रीपुत्रादिकोंमेंसे किसी एकके नष्ट होजानेसे जो वैराग्य होताहै वह मन्द वैराग्य कहाजाताहै क्योंकि वह थोडे कालके पीछे नष्ट होजाताहै तात्पर्य यह

है कि, जिसकालमें किसीका धन या पुत्र स्त्री या कोई दूसरा प्रिय वस्तु नष्ट होजाता है तब पुरुष अपनेको और संसारको दुःखी होकर धिक्कार देने लगताहै और कुछ कालके पीछे जबकि तिसका मन संसारके दूसरे पदार्थोंकी तरफ लग जाताहै तब वह वैराग्य भी तिसको भूलजाताहै इसीका नाम मन्द वैराग्य है और विना ही किसी दुःखकी प्राप्तिके विषय भोगोंके त्यागकी इच्छाका उत्पन्न होना जो है इसका नाम तीव्र वैराग्य है और अपनी अभिलाषाके अनुकूल समस्त राज्यादिक सांसारिक पदार्थ तथा स्त्री, पुत्र आदिके वर्तमान होनेपर भी उनके त्यागकी इच्छाका जो उत्पन्न होनाहै उसे तीव्रतर वैराग्य कहतेहैं सो ऐसे वैराग्यवान् अर्थात् ज्ञानवैराग्यकी मूर्ति श्रीस्वामी दत्तात्रेयजी हुए हैं और जिसवास्ते वह अवधूत होकर संसारमें विचरेहैं इसी वास्ते उन्होंने "अवधूतगीता" भी बनाई है उन्हींकी "अवधूतगीता" के अर्थोंको हम भाषाटीकामें दिखावेंगे अब प्रथम उनके जीवन वृत्तांतको दिखातेहैं इसवार्ताको तो हिंदू-मात्र जानतेहैं जो सत्ययुग त्रेता द्वापर कलि यह चारों युग बराबर ही अपनी २ पारीसे आते जाते रहते हैं । जिस जमानेमें सब लोग सत्यवादी और धर्मात्मा होतेहैं उसी जमानेका नाम **सत्ययुग** है फिर जिस जमानेमें तीन हिस्सा सत्यवादी और चौथा हिस्सा असत्यवादी होतेहैं उसी जमानेका नाम **त्रेतायुग** हैं और जिस जमानेमें आधे सत्यवादी और आधे असत्यवादी होतेहैं उसका नाम **द्वापर** है जबकि चौथा हिस्सा सत्यवादी होतेहैं तब **कलियुग** कहा जाताहै और जब कि हजारों लाखोंमें एक आधा सत्यवादी होताहै और सब असत्यवादी होतेहैं तब उस जमानेका नाम घोर कलियुग है सो सत्ययुगमें जबकि, सब लोग सत्यवादी थे उसी जमानेमें अत्रि नाम करके एक राजर्षि बडे भारी तपस्वी राजा हुए हैं उनकी स्त्रीका नाम अनसूया था और अनसूयाके सन्तति नहीं थी. सो सन्ततिकी कामना करके अनसूयाने ब्रह्मा विष्णु और महादेव जोकि, संपूर्ण देवतामें प्रधान हैं इन्हीं तीनों देवतोंकी उपासनाको किया अर्थात् अनसूयाने वडे भारी नियमको धारण करके इन तीनोंदेवतोंकी उपासनाको चिरकालतक किया जब कि, तपस्याको करते २ अनुसूयाको बहुतसा समय व्यतीत होगया तब एक दिन तीनों देवता आकरके अन-

सूयासे कहनेलगे हम तुम्हारेपर बडे प्रसन्न हुए हैं क्योंकि तुमने हमारी बडी कठिन उपासनाको कियाहै अब तुम हमसे वरको मांगो, जिस वरको तुम मांगोगी उसी वरको हम तुम्हारे प्रति देवैंगे । ब्रह्मा आदिक देवतोंकी इस वार्ताको सुनकर अनसूयाने उनसे कहा कि, यदि तुम तीनों देवता हमारेपर प्रसन्न हुए हो तो तुम तीनों देवता पृथक् २ पुत्ररूप होकर मेरे उदरसे जन्मको धारण करो अनसूयाकी इस प्रार्थनाको सुनकर तीनों देवतोंने तथास्तु कहा अर्थात् हम तीनों तुम्हारे घरमें पुत्ररूप होकर उत्पन्न होवैंगे इस प्रकारका वर अनसूयाको देकर तीनों देवता चलेगये फिर कुछ कालके वीतजानेपर तीनों देवतोंने क्रमसे अनसूयाके उदरसे अवतार लिया उन तीनोंमेंसे प्रथम विष्णुने अनसूयाके उदरसे अवतार लिया इनका नाम दत्तात्रेय रक्खा गया जिस कारणसे विष्णुने अपने वचनकी पालना करनेके वास्ते आप ही अनसूयाकी कुक्षिसे जन्मको धारण किया इसी वास्ते सब लोग इनको विष्णुका अवतार कहतेहैं और जैसे विष्णुमें स्वाभाविक ही ज्ञान वैराग्यादिक गुण भरेथे वैसेही स्वामी दत्तात्रेयजीमें भी थे फिर काल पाकर महादेवजीने भी अनसूयाकी कुक्षिसे अवतार लिया तब इनका नाम दुर्वासा रक्खा गया क्योंकि जैसे महादेवजी तमोगुण प्रधान थे वैसेही दुर्वासाका भी अवतार तमोगुण प्रधान था फिर कुछ कालके पीछे ब्रह्माने भी अनसूयाके घरमें अवतार लिया इनका नाम चन्द्रमा हुआ सो ब्रह्माजीकी तरह यह भी रजोगुण प्रधानही हुए। तीनोंमेंसे ज्येष्ठ पुत्र अनसूयाके दत्तात्रेयजी थे, सो यह बाल्यावस्थासे ही ज्ञान और वैराग्य करके पूर्ण रहतेथे तथापि जब कि, यह सयाने हुए तब इनके पिताका देहान्त होगया और सब प्रजाने इनको बडा जानकर राजसिंहासनपर बिठलादिया, राजा बन-कर कुछ कालतक तो यह प्रजाकी पालनाको करते रहे और दुष्टोंको दण्ड देकर सज्जनोंकी रक्षाको भी करतेरहे कुछ कालके पीछे इनके चित्तमें राज्यकी तरफसे घृणा उत्पन्न हुई तब राज्यका त्याग करके यह अकेलेही विचरनेलगे इनकी सौम्य और दयालु मूर्तिको देखकर बहुतसे मुनियोंके लडके भी इनके साथ होलिये और जहाँ २ दत्तात्रेयजी जायँ वहाँ वह बालक भी सब साथ ही साथ जायँ, कितना ही दत्तात्रेयजीने उन बालकोंको समझाकर हटाना चाहा परन्तु

यह किसी प्रकारसे भी न हटे तब दत्तात्रेयजीने अपने मनमें विचार किया कि, कोई ऐसा कर्म करना चाहिये जिस कर्मको देखकर इन बालकोंको हमारी तरफसे घृणा उत्पन्न होजाय क्योंकि विना ग्लानिके यह हमारा पीछा नहीं छोडेंगे ऐसा विचार करके एक दिन दत्तात्रेयजी वनमें विचरते २ एक तालावके किनारे पर जाकर खडे होगये और कुछ देरके पीछे पानीमें गोता लगाय तीन दिनतक बराबर जलके भीतरही समाधि लगाये बैठरहे पर तोभी वे मुनियोंके लडके बाहर तलावके किनारे पर बैठेही रहे, क्योंकि मुनियोंके लडकोंका दत्तात्रेयजीके साथ अतिस्नेह होगया था। जब दत्तात्रेयजीने समाधिसे देखा कि, मुनियोंके लडके तो इसतरहसे भी नहीं हटतेहैं तब उन्होंने योगबलसे एक मायाकी, युवा अवस्थावाली स्त्री रची और एक मदिराकी बोतल रची फिर एक हाथमें तो मदिराकी बोतलको पकडा और दूसरे हाथमें स्त्रीका हाथ पकडेहुए जलसे बाहर निकले और अपना विहार करनेलगे तब उनके इस निन्दित आचरणको देखकर मुनियोंके बालक भी सब चलेगये और कहनेलगे कि, यह तो उन्मत्त होगयेहैं अब इनका संग करना अच्छा नहीं हैं। जब कि, सब मुनियोंके बालकोंने उनका पीछा छोडदिया तब दत्तात्रेयजीने उस मायाकी स्त्री और मदिराकी बोतलका भी अपनी मायामें लय करदिया और नग्न अवधूत होकर विचरनेलगे विचरते २ कभी २ तो ग्रामोंमें जाकर लोगोंको अपने दर्शनसे कृतार्थ करते और कभी नगरोंमें जाकर लोगोंको अपने उपदेशसे कृतार्थ करते और कभी वनोंमें और पर्वतोंमें जाकर विचरते और कभी शून्यमन्दिरोंमें जाकर ध्यानावस्थित होकर बैठ रहते। श्रीस्वामी दत्तात्रेयजी वासनासे रहित होकर और जीवन्मुक्त होकर संसारमें जहां तहां विचरतेथे और अपने कालको व्यतीत करतेथे। एक दिन दत्तात्रेयजी अपने आपमें मग्न मस्त हस्तीकी तरह चले जातेथे, इनको मस्त देखकर एक राजाने इनसे पूंछा आपको ऐसा आनन्द किस गुरुसे मिला है जो आप संपूर्ण चिन्तासे रहित होकर मस्त हस्तीकी तरह होकर विचरते फिरतेहैं। राजाके इस वाक्यको सुनकर श्रीस्वामीदत्तात्रेयजीने कहा:—

आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः।
यत्प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविंदते॥ १॥

पुरुषका विशेषकरके गुरु अपना आत्मा ही है क्योंकि प्रत्यक्ष और अनुमानसे अपने आत्माके ज्ञानसे ही पुरुष कल्याणको प्राप्त होताहै ॥ १ ॥

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हे राजन् ! मैंने किसी एक मनुष्यको गुरु नहीं बनायाहै और न मैंने किसीके कानोंमें फूँक मरवाकर मंत्र ही लिया है किन्तु जिस२ से जितना २ गुण हमको मिलाहै उतने २ गुणका प्रदाता मानकर मैंने उस २ को गुरु बनायाहै इसीसे मैंने २४ को अपना गुरु मानाहै क्योंकि उनमेंसे हरएकसे हमको एक २ गुण मिलाहै इसवास्ते मैं उन सबको गुरु करके मानताहूँ । राजाने कहा कि, हे महाराज ! जिन चौबीसोंसे आपको गुण मिलेहैं उन सबके भिन्न २ नामोंको हमारे प्रति आप निरूपण करैं और जो २ गुण उनसे आपको जिस २ रीतिसे मिलाहै उस २ गुणका भी आप हमारे प्रति निरूपण करैं जिससे मेरेको भी उन गुणोंका और उनके फलोंका यथार्थ रीतिसे बोध होजाय ॥

दत्तात्रेयजीने राजाको जिज्ञासु जानकर कहा कि, हे राजन् ! तुम एकाग्रचित्त होकर श्रवण करो प्रथम हम आपको उन चौवीस गुरुओंके नामोंको सुनातेहैं और फिर उनके गुणोंको श्रवण करावैंगे १ पृथिवी, २ जल, ३ अग्नि, ४ वायु, ५ आकाश, ६ चन्द्रमा, ७ सूर्य्य, ८ कपोत, ९ अजगर, १० सिंधु, ११ पतंग, १२ भ्रमर, १३ मधुमक्षिका, १४ गज, १५ मृग, १६ मीन, १७ पिंगला, १८ कुररपक्षी, १९ बालक, २० कुमारी, २१ साँप, २२ शरकत, २३ मकडी, २४ भृंगी, यह चौवीस गुरुओंके नाम हैं। इन्हीं चौवीस गुरुओंसे जो २ हमको गुण मिले हैं उन सब गुणोंको भी आपके प्रति हम सुनातेहैं. हे राजन् ! क्षमा और परोपकार करना ये दो गुण हमको पृथिवीसे मिलेहैं, पृथिवी अपने प्रयोजनसे विना संपूर्ण जीवोंके लिये अनेक प्रकारके पदार्थोंको उत्पन्न करतीहै और ताडना करनेसे भी वह बदलाको नहीं चाहतीहै ऐसी वह क्षमाशीलहै फिर जो कोई और भी पृथिवीसे इन गुणोंको ग्रहण करलेताहै वह भी संसारमें जीवन्मुक्त होकर विचरताहै इसमें कोई भी संदेह नहीं है इसीवास्ते हमने पृथिवीसे इन गुणोंको ग्रहण करके उसे अपना गुरु बनायाहै ॥ १ ॥

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हे राजन्! जलसे स्वच्छता और माधुर्यता ये दो गुण हमको मिलेहैं जैसे जल अपने स्वभावसे स्वच्छ और मधुर भी है तैसे मनुष्यको भी अपने स्वभावसे ही स्वच्छ और मधुर भी होना चाहिये क्योंकि आत्मा अपने स्वभावसेही शुद्ध और सुखरूप भी है इसवास्ते मनुष्यको भी उचितहै कि, छलकपटसे रहित होकर मधुर ही भाषण करे क्योंकि ये गुण कल्याणकारक हैं ये दो गुण हमको जलसे मिलेहैं इसवास्ते जलको भी हमने गुरु मानाहै॥ २॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन्! अग्निका अपना उदर ही पात्र है जितना द्रव्य अग्निमें डालाजाताहै तिसको अग्नि अपने उदरमेंही रखलेता है तैसेही मैंने भी अपने उदरको ही पात्र बनाया है क्योंकि मुझको भी समयपर जितना भोजन मिलजाताहै तिसको मैं भी अपने उदरमें ही रखलेता हूँ अपने पास दूसरे समयके वास्ते कुछ भी नहीं रखताहूँ इसीसे मैंने अग्निको भी गुरु बनाया है॥३॥

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हे राजन्! जैसे वायु सर्वकाल चलता रहता है परन्तु किसी भी पदार्थमें आसक्त नहीं होताहै और जो शरीरके भीतर वायु है सो केवल आहार करके ही सन्तोषको प्राप्त होजाताहै और किसी भोगकी इच्छाको वह नहीं करता है वैसे हम भी चलते फिरतेहैं परन्तु किसीमें भी आसक्त नहीं होतेहैं और समयपर जो आहार मिलजाताहै तिसी करके सन्तोषको प्राप्त होजातेहैं और अधिक भोगकी इच्छाको भी हम नहीं करतेहैं इसीवास्ते हमने वायुको भी गुरु बनाया है॥ ४॥

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हे राजन्! जैसे आकाशमें तारागण और वायु तथा बादल आदि रहतेहैं परन्तु आकाशका किसीके भी साथ सम्बन्ध नहीं होताहै किन्तु आकाश सबसे असंग ही रहताहै, और आकाश व्यापक भी है और असंग भी है तैसे आत्मा भी व्यापक है और असंग है इसीवास्ते शरीरादिकोंके साथ आत्माका कोई भी सम्बन्ध नहीं है और संसारमें रहकर भी किसीके साथ यह आत्मा लिप्त नहीं होताहै इस असंगतारूपी गुणको मैंने आकाशसे लियाहै इसीवास्ते आकाशको भी मैंने अपना गुरु बनायाहै॥ ५॥

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हे राजन्! जैसे चन्द्रमण्डल सर्वकाल एकरस रहताहै। अर्थात् न घटताहै न बढताहै किन्तु पूर्णरूपसे ज्योंकात्यों रहताहै और जैसे

चन्द्रमंडलके जितने २ भागोंपर पृथिवी मंडलकी छाया पडतीजातीहै उतना २ भाग तिसका न्यूनसा प्रतीत होनेलगताहै परन्तु स्वरूपसे वह न्यून नहीं होताहै किन्तु एकरस ही रहताहै वैसे आत्मामें भी घटना बढना नहीं होताहै किन्तु सर्वकाल एकरस ज्योंकात्यों ही रहताहै। आत्माकी पूर्णताका ज्ञानरूपी गुण हमने चन्द्रमासे लियाहै इसवास्ते हमने चन्द्रमाको भी गुरु माना है ॥ ६ ॥

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हे राजन्! जैसे सूर्य्य अपनी किरणोंके द्वारा जलको पृथिवीतलसे खींचकर फिर समयपर तिसका त्याग करदेताहै तैसे ही विद्वान् पुरुष भी इन्द्रियापेक्षित वस्तुओंका ग्रहण करके भी फिर उनका त्याग ही करदेताहै इस गुणको हमने सूर्य्यसे लियाहै इसवास्ते सूर्य्यको भी हमने गुरु बनायाहै ॥ ७ ॥

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हे राजन्! स्नेहका त्यागरूपी गुण हमने कपोतसे लियाहै सो दिखाते हैं। वनमें एक वृक्षके ऊपर कपोत और कपोतिनी दोनों रहतेथे उन्होंने उसी वृक्षपर बच्चोंको भी उत्पन्न किया जब कि, उनके बच्चे दाना खानेलगे तब कपोत और कपोतिनी दोनों इधर उधरसे दाना लाकर उनको खिलानेलगे जब कि, वह दोनों बच्चे कुछ बडे होगये तब उसी वृक्षके नीचे वह भी इधर उधर घूमकर खेलनेलगे। एक दिन एक फंदकने वहां पर आकर जालको लगाकर उन दोनों बच्चोंको उस जालमें फँसालिया इतनेमें वह कपोत और कपोतिनी भी अपने वृक्षपर आगये और अपने बच्चोंको जालमें बँधाहुआ देखा दोनों ही स्नेहके वशमें होकर रुदन करनेलगे, बहुतसा रुदन करके कपोतिनी कहा कि, जिसकी सन्तति कष्टको प्राप्त होकर मारीजाय तिसका जीनेसे मरना ही अच्छा है इसप्रकार शोच कर वह कपोतिनी तिसी जालमें गिरपडी, उसको भी फंदकने बाँधलिया। तब कपोतने भी विलाप करके कहा जिसका कुटुंब नष्ट होजाय तिसका मरना ही अच्छा है अब मै अकेला जीकर क्या करूंगा ऐसे कहकर कपोतभी उसी जालमें गिरपडा। फंदकने उसको भी बांध लिया और चलदिया। हे राजन्! स्नेहके वशमें प्राप्त होकर वह कपोत और कपोतिनी भी मारेगये इससे सिद्ध होताहै कि; संपूर्ण जीवोंके जन्म और मरणका हेतु स्नेह ही है और स्नेहका त्याग-

ही मोक्षरूपी सुखका परम साधन है सो स्नेहका त्यागरूप ही गुण मैंने कपोतसे सीखाहै इसीवास्ते मैंने कपोतको भी गुरु बनाया है ॥ ८ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं–हे राजन् ! जैसे अजगर एक स्थानमें पडारहताहै अपने भोजनके लिये भी यत्न नहीं करताहै जो कुछ तिसको दैवयोगसे प्राप्त होजाताहै उसीमें सन्तुष्ट रहताहै उससे अधिककी इच्छाको भी वह नहीं करताहै इसी प्रकार हम भी शरीरके योगक्षेमकी इच्छाका नहीं करते हैं. यह गुण हमनें अजगरसे लियाहै इसीवास्ते हमने अजगरको भी गुरु करके मानाहै ॥ ९ ॥

दत्तात्रेयजी कहतेहैं–हे राजन् ! जैसे हजारों नदियां समुद्रमें जाकर मिलतीहैं परन्तु समुद्र अपनी मर्यादासे चलायमान नहीं होता है तैसे विद्वान्का मन भी अनेक प्रकारके विषयोंकि प्राप्त होनेपरभी चलायमान नहीं होताहै । सो मनका अडोल रखनारूपी गुण हमने समुद्रसे लियाहै; इसी वास्ते हमने समुद्रको भी अपना गुरु मानाहै ॥ १० ॥

दत्तात्रेयजी कहतेहैं–हे राजन् ! जैसे पतंग रूपको देखकर अग्निमें भस्म होजाताहै और तिसका निशान भी नहीं मिलताहै । तैसे ही सुन्दर स्त्रीके रूपको देखकर पुरुषका मन भी तिसीमें लीन होजाताहै और संसारकी तिसको कोई भी खबर नहीं रहतीहै सो मनको आत्मामें लीन करदेना ही जीवन्मुक्तिका साधन है यह गुण हमने पतंगसे लिया है । इससे हमने पतंगको भी अपना गुरु बनाया है ॥ ११ ॥

दत्तात्रेयजी कहतेहैं–हे राजन् ! जैसे भ्रमर एक पुष्पसे जरासा रस लेकर फिर दूसरे पुष्पपर चलाजाताहै उससे रस लेकर फिर तीसरे पुष्पसे रस लेताहै अर्थात् थोडा २ रस हरएक पुष्पसे लेकर बहुतसा रस जमा करलेताहै तैसे हमभी हरएक गृहसे एक २ रोटीके ग्रासको लेकर अपने उदरको भरलेतेहैं यह गुण हमने भ्रमरसे लियाहै इससे हमने भ्रमरको भी गुरु बनायाहै ॥ १२ ॥

दत्तात्रेयजी कहतेहैं–हेराजन् ! मक्षिका जब बहुतसा मधु जमा करलेतीहैं तब एक दिन शिकारी मनुष्य उनको मारकर जमा किया हुआ सब मधु उनसे छीन करके लेजाताहै और जैसे मक्षिका बडे कष्टसे मधुको जमा करतीहैं इसी तरहसे मनुष्य भी बडे २ कष्टोंको उठाकर पदार्थोंको इकट्ठा करते है और जिस-

कालमें यमराजके दूत आकर इनको पकडकर लेजातेहैं तबते तो खाली हाथही चले जातेहैं और उनके पदार्थोंको दूसरा कोई आकर लेजाताहै इससे सिद्ध हुआ कि, संग्रह करनेमेंही महान् दुःख होताहै सो संग्रहका न करनारूपी गुण हमने मधुमक्षिकासे लियाहै इसवास्ते हमने तिसको भी गुरु माना है ॥ १३ ॥

दत्तात्रेयजी कहतेहैं–हे राजन्! काम करके मदान्ध हुआ हाथी कागजोंकी हाथिनीको देखकरके गढेमें गिरपडताहै और फिर जन्मभर सैकडों लोहेके अंकुशोंको अपने शिरपर खातारहताहै तैसे ही कामातुर पुरुष भी स्त्रीको देखकर संसाररूपी गढेमें गिरपडतेहैं सो यह स्त्रीका त्यागरूपी गुण हमने गजसे लियाहै सो यह इससे गजको भी अपना गुरु बनाया है ॥ १४ ॥

दत्तात्रेयजी कहतेहैं–हे राजन्! हिरनको राग सुननेका वडाभारी व्यसन है और रागके ही पीछे वह बंधायमान भी होजाताहै इसी कारण शिकारी तिसको बांध भी लेताहै। तैसेही कामी पुरुष भी सुंदर स्त्रियोंके गायनको सुनकर और उनके हावभावरूपी कटाक्षों करके बंधायमान भी होजाताहै सो श्रोत्र इन्द्रियका विषय सुंदर गायन है सो तिसको बंधनका हेतु जानकर उसका त्यागरूपी गुण हमने मृगसे लियाहै इससे मृगको भी हमने गुरु बनायाहै ॥ १५ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं–हे राजन्! जैसे मछली आहारके लोभसे कुंडीमें फँस जातीहै तैसे ही आहारके लोभसे पुरुष भी परतन्त्र होजाताहै और परतन्त्र होकर अनेक प्रकारके दुःखोंको उठाताहै सो आहारके लिये लोभका त्याग हमने मछलीसे सीखाहै इसवास्ते तिसको भी हमने गुरु बनायाहै ॥ १६ ॥

दत्तात्रेयजी कहतेहैं–हे राजन्! निराशतारूपी गुण हमने वेश्यासे लियाहै सो दिखाते हैं, किसी नगरमें पिंगला नामक वेश्या रहतीथी सन्ध्याके समय वह नित्य ही हारशृंगार करके अपनी खिडकीमें ग्राहकके वास्ते बैठतीथी जब कि, कोई ग्राहक आजाता तब तिसको लेकर सो जाती। एक दिन संध्याको खिडकीमें बैठकर अपने ग्राहककी आशा करनेलगी जब बहुतसी रात्रि बीतगई और कोई भी ग्राहक तिसके पास नहीं आया तब वह उठकर मकानके भीतर चलीगई थोडी देरके पीछे पुरुषकी आशासे फिर वह बाहर निकल आई फिर थोडी देरके पीछे भीतर चलीगई इसी प्रकार करते जब, तिसको आधी रात्रि

व्यतीत होगई और कोई भी तिसके पास ग्राहक नहीं पहुँचा तब तिसके मनमें ऐसा विचार उठाकि, हमको धिक्कार है और हमारे इस पेशेको भी धिक्कार है जो मैं व्यभिचार कर्मके लिये कभी बाहरको जातीहूँ और कभी भीतरको जातीहूँ यदि मैं परमेश्वरके साथ मिलनेकी इतनी आशा लगाती तो क्या जाने मेरेको कौनसी उत्तम पदवी प्राप्त होजाती ऐसे कहकर जब वह निराश होगई तब भीतर जाकर बडे आनन्दके साथ सोभी रही सो यह निराशतारूपी गुण हमने वेश्यासे ग्रहण कियाहै इसलिये वेश्याको भी हमने गुरु बनायाहै और योगवासिष्ठमें भी रामजीने आशाको ही बंधनका हेतु कहा भी है ॥

आशाया ये दासास्ते दासाः सन्ति सर्वलोकस्य ।
आशा येषां दासी तेषां दासायते विश्वम् ॥ १ ॥

अन्यच्च–

तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् ।
येनाशाः पृष्ठतः कृत्वा नैराश्यमवलम्बितम् ॥ २ ॥
ते धन्याः पुण्यभाजस्ते तैस्तीर्णः क्लेशसागरः ।
जगत्संमोहजननी यैराशाऽऽशीविषी जिता ॥ ३ ॥

इस संसारमें जो पुरुष आशाके दास होरहेहैं अर्थात् जिन्होंने स्त्री पुत्र धनादिकोंकी प्राप्ति की और चिरकाल तक जीनेकी आशा लगाई है उनको सब लोगोंका दास ही होना पडताहै और आशाको जिन्होंने अपनी दासी बनालियाहै संपूर्ण जगत् उनका दास बनगयाहै ॥ १ ॥ उसी पुरुषने संपूर्ण शास्त्रोंका अध्ययन करलियाहै और उसीने सर्वशास्त्रका श्रवण भी किया जिसने आशाको पीछे हटाकर निराशताको अंगीकार करलियाहै ॥ २ ॥ संसारमें वही पुरुष धन्य हैं और वेही महात्मा भी हैं जोकि, दुःखरूपी संसारसे तरगयेहैं और जिन्होंने जगत्को मोहन करनेवाली आशाका नाश करदियाहै ॥ ३ ॥ आशा ही जन्म और मरणका हेतु है जो निराश होगयेहैं वही मुक्त होगयेहैं ॥ १७ ॥

दत्तात्रेयजी कहतेहैं-कि, हे राजन् !कुरर नामक एक पक्षी होताहै उस कुरर पक्षीको कहींसे एक मांसका टुकडा मिला तिसको लेकर वह आकाशमार्गसे उम्मेद-पर उडा जाता था कि, कहींपर बैठकरके इसको मैं खाऊँगा । तिस पक्षीके मुखमें पकडेहुए टुकडेको देखकर और भी पक्षी तिसको छीननेके वास्ते तिसके पीछे दौडे और तिसको मारनेलगे उस कुरर पक्षीने देखा कि, इस मांसके टुकडेके लिये सब पक्षी मेरेको मारतेहैं यदि मैं इसको फेंक देऊंगा तो यह मेरेको नहीं मारेंगे ऐसा विचार करके उसने तिस टुकडेको भूमिपर फेंकदिया तब सब पक्षियोंने तिसको मारना भी छोड दिया और वह भी मारखानेसे बचगया। इसीप्रकार पुरुषने भी जबतक भोगोंको पकडरक्खा है तबतक दुष्ट तस्करादि-कोंकी मारको पडा खाताहै जब त्याग करदेताहै तब उनकी मारसे बचजाताहै। सो भोगोंका त्यागरूपी गुण मैंने कुररपक्षीसे लिया है इसवास्ते मैंने कुररप-क्षीको भी गुरु बनाया है ॥ १८ ॥

दत्तात्रेयजी कहतेहैं-हे राजन् ! जैसे दूधपीनेवाले बालकको किसी प्रकारकी भी चिन्ता नहीं होतीहै किन्तु दूधको पान करके अपने आनन्दमें मग्न होकर वह पडारहता है और आनन्दसे हंसता ही रहताहै तैसे भिक्षान्नको भोजन करके हम भी चिन्तासे रहित होकर पडेरहतेहैं । यह गुण हमने दूध पीनेवाले बाल-कसे लिया है इसलिये तिसको भी हमने गुरु माना है ॥ १९ ॥

दत्तात्रेयजी कहतेहैं-हे राजन् ! एकग्राममें हम भिक्षाकेवास्ते गये और वहां देखा कि एक ब्राह्मणके घरके और सब लोग तो कहीं गये एक कुमारी कन्या ही अकेली घरमें थी और एक भिक्षुकने आकर उसीके द्वारपर हरिनारायण जगाया, तब कन्याने कहा महाराज ठहरजावो मैं धानोंको कूटकर चावल निकाल करके आपके प्रति भिक्षाको देती हूँ भिक्षुक तो बाहर खडा होगया और भीतर घरमें वह कन्या जब धानोंको कूटने लगी तब तिसके हाथकी चूडियाँ छन २ करनेलगीं उनके छनं २ शब्दसे कन्याको लज्जा आई तब वह एक २ करके उतारनेलगी जब दो बाकी रहगईं तब भी थोडा २ शब्द होता ही रहा जब एक ही बाकी रह गई तब शब्दका होना भी बंद होगया तब सो मुझे यह निश्चय हुआ कि-

वासे बहूनां कलहो भवेद्वार्ता द्वयोरपि
एकाकी विचरेद्विद्वान्कुमार्या इव कङ्कणः ॥ १ ॥

बहुतसे आदमियोंमें निवास करनेसे नित्य ही लडाई झगडा होताहै एवं दोके इकट्ठा रहनेसे भी बातें होती हैं विचार ध्यान नहीं होताहै इसवास्ते विद्वान् कुमारीके कंगनकी तरह अकेला ही विचरे सो हे राजन् ! अकेला रहना यह गुण हमने कुमारी कन्यासे लिया है इसवास्ते हमने तिसको भी गुरु बनायाहै २० ॥

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हे राजन् ! जैसे सर्प अपना घर नहीं बनाताहै किन्तु बने बनाये घरोंमें वह रहताहै तैसे हम भी अपने घरको नहीं बनातेहैं किन्तु बने बनाये मन्दिरों और गुफाओंमें रहते हैं । यह गुण हमको सर्पसे मिला है इसलिये हमने सर्पको भी अपना गुरु बनाया है ॥ २१ ॥

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हे राजन् ! किसी नगरके बाजारमें अपनी दूकानपर एक बाणोंका बनानेवाला बाण बनारहाथा और बाणके सीधा करनेमें उसकी दृष्टि जमी थी, दैवयोगसे उसी समय राजाकी सवारीआ निकली पर तिसकी दृष्टि सवारीपर न गई क्योंकि वह बाणके सीधा करनेके लिये एक दृष्टिसे देखरहाथा जब राजाकी समस्त सेना तिसके आगेसे निकलगई तब पीछेसे एक सवारने आकर उससे पूछा कि क्या इधरको राजाकी सवारी गई है ? तब उसने कहा हम नहीं जानतेहैं ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हे राजन् ! तिसका मन बाण बनानेमें ऐसा एकाकार हुआ था जिससे सामनेसे भी जाती हुई फौजको उसने नहीं देखाथा सो मनके एकाग्र करनेका गुण हमने उस बाण बनानेवालेसे सीखाहै इसवास्ते हमने उसको भी गुरु बनायाहै ॥ २२ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! जैसे मकडी एक छोटासा जीव होताहै वह अपने मुखसे तारको निकालकर फिर उसीमें फँसजाताहै तैसे जीव भी अपने मनसे अनेक प्रकारके संकल्परूपी तारोंको निकालकर फिर उन्हींमें फँसजाताहै । सो मनके संकल्पोंका त्याग हमने मकडीसे सीखाहै इसवास्ते मकडीको भी हमने गुरु बनायाहै ॥ २३ ॥

दत्तात्रेयजी कहतेहैं हे राजन् ! भृंगी एक जीव होताहै सो एक कीटको पकडकर अपने घोसलामें उसको लाकरके अपने सम्मुख रखकर शब्दको करताहै। वह कीट उसी भृंगीके शब्दको सुनकर भृंगीरूप होकर और फिर तिस भृंगीमें मोहका त्याग करके उडजाताहै तैसे हम भी इस देहमें आत्माका ध्यान करके आत्मरूप होकर देहमें मोहको नही करते हैं सो देहमें मोहका त्यागरूपीगुण हमने भृंगीसे सीखाहै इसवास्ते तिसको भी हमने गुरु बनायाहै ॥ २४ ॥

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हे राजन् ! मेरेको चौवीस गुरुओंसे परमार्थका बोध हुवाहै इसलिये मैं अब अपने स्वरूपमें स्थित हूं और आत्मानन्दको प्राप्त होकर जीवन्मुक्त होकरके संसारमें विचरताहूँ इसीवास्ते मैं चिन्तासे रहित होकर और निर्द्वंद्व होकरके विचरताहूँ। दत्तात्रेयजीके उपदेशसे राजाको भी आत्मज्ञानका लाभ हुआ और राजा भी मोहसे रहित होकर अपने घरको चलेगये और दत्तात्रेयजी फिर मस्त हस्तीकी तरह आत्मानन्दमें मग्न होकर विचरनेलगे। आठ महीना तो दत्तात्रेयजी एक स्थानमें निरन्तर ही रहतेथे किन्तु जहाँ तहाँ रागसे रहित होकरके विचरते ही रहतेथे और वर्षाऋतुके चतुर्मासमें निरन्तर एक स्थानमें रहजातेथे। सो चतुर्मासमें जिन २ स्थानोंमें उन्होंने निवास कियाहै वह स्थान आजतक उन्हींके नामसे प्रसिद्ध हैं और तीर्थरूप करके पूजे भी जातेहैं क्योंकि जिस २ स्थानमें स्थित होकर महात्मा लोग तप या निवास करतेहैं वह स्थान तीर्थरूप और दूसरोंको पवित्र करने वाला होजाताहै। दत्तात्रेयजीका एक स्थान गोदावरीके किनारेपर नासिकसे कुछ दूर है और दूसरा जूनागढसे तीन मील पर गिरनार पर्वतपर है, तीसरा कश्मीरके श्रीनगरशहरसे दो मील दूर एक पर्वतपर है और भी बहुतसे स्थान उन्हींके नामसे प्रसिद्ध है श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीके जीवनचरित्रसे यह वार्ता सिद्ध होतीहै कि जितना गुण जिससे जिसको मिलजाय वह उतने गुणका उसको गुरुमानलेवै और वह गुण चाहे व्यवहारको सुधारनेवाला हो चाहै परमार्थको सुधारनेवाला हो और गुणका लेना सबसे उचित है, दोषका छोडदेना भी एक गुण है और कानमें फूँक लगागर आजकल जो गुरु बनजातेहैं वह तो एक अपनी जीविकाकेवास्ते करते

हैं । आजकल भारतवर्षमें दम्भपाखण्ड बहुत बढगयाहै इसीवास्ते दम्भियोंने वेद और शास्त्रकी रीतिको हटाकर अपने नये २ पाखण्डोंको चलाकर नये २ यंत्रोंको बनाकर मूर्खोंके कान फूँककर अपनेको पशु बनालेतेहैं वह मूर्ख भी उनके पूरे २ पशु बनजातेहैं और उन्ही दम्भियों पाखण्डियोंकी पूजा सेवा आदि करतेहैं सो उनका ऐसा व्यवहार वेदशास्त्रसे विरुद्ध होनेसे नरकका ही हेतु है इसीवास्ते उनको इसलोक और परलोकमें भी सुख नहीं मिलताहै इसवास्ते मुमुक्षुको उचित है कि, स्वामी दत्तात्रेयजीकी तरह गुणग्राही बनकर संसारमें विचरे किसी चालाकके फंदेमें फँसकर कान फुँकवाय तिसका पशु न बनें जो वेदान्ती कहातेहैं और फिर कानफुँकवाकर दूसरेके पशु बनतेहैं वह अत्यन्त मूर्ख हैं । और जो चेलोंके कान फूँककरके उनके गुरु बनते है वह भी वेदशास्त्रकी रीतिसे स्वार्थी मूर्ख ही कहेजातेहैं क्योंकि वेदशास्त्रमें ऐसा लेख नहीं है किन्तु शिष्यके संदेहोंको दूर करके तिसको आत्मज्ञानका उपदेश करके तिसके अज्ञानको दूर करदेना ही वेदान्तमें गुरुशिष्यकी रीति है । देखो रामजीने वसिष्ठजीसे कान फुँकवाकर कोई भी मंत्र नहीं सुनाथा किन्तु हजारों प्रश्न कियेथे और उनके उत्तरोंको देकर जब वसिष्ठजीने उसके अज्ञानको दूर कियाथा तब रामजीने वसिष्ठजीको गुरु माना था इसीतरह अर्जुनने भी श्रीकृष्णजीसे अनेक प्रश्न किये जिनकी कि गीता बनी है, जब अर्जुनके सब संदेह दूर होगयेथे तब भगवानको गुरु मानाथा कान नहीं फुँकवायेथे ऐसे ही जनकजीने याज्ञवल्क्यको गुरु बनायाथा कान नहीं फुँकवायेथे शुकदेवजीने जनकजीको गुरु बनाया था कानोंमें उनसे मंत्र नहीं सुनाथा । याज्ञवल्क्यजीने सूर्य्यसे उपदेश लियाथा कान नहीं फुँकवायेथे । नचिकेताने यमराजसे आत्मविद्याको लियाथा कान नहीं फुँकवाये थे । विदुरजीने सनत्कुमारोंसे आत्मविद्याको ग्रहण कियाथा कान नहीं फुंकवाये थे कहांतक कहे इसीप्रकार और भी बडे २ तत्त्ववेत्ता वेदान्ती पूर्व युगोंमें हुए हैं और इसयुगमें भी गुरुनानकजीसे आदिलेकर महात्मा वेदान्ती हुए हैं उन्होंने भी किसीसे कान नहीं फुँकवायेथे इन्हीं युक्तियोंसे और उपनिषदादिके प्रमाणोंसे यह बात सिद्ध होती है कि, वेदान्तके सिद्धान्तमें कान फूँककर गुरु बनना और कान फुँकवाकर चेला बनना यह व्यवहार नहीं है इससे जोकि ऐसा करते हैं वह मूर्ख या दम्भी पाखंडी

कहे जाते हैं और जो कर्मी हैं, वेदान्ती नहीं हैं और द्विज हैं उनके लिये संस्कारोंके समयमें यज्ञोपवीत करानेवालेसे गायत्री मंत्रका उपदेश लेना कहा है क्योंकि विना गायत्री मंत्रके शूद्र ही होताहै और फिर गायत्री मंत्रके ऊपर दूसरा कोई भी शिवमंत्र या और कोई भी मंत्र लेकर गुरु बनाना द्विजातिकेवास्ते नहीं लिखाहै जो कर्मी कहातेहैं और फिर गायत्री मंत्रके ऊपर अपना दूसरा शिवादिकोंका मंत्र कानोंमें फूँककर गुरु बनकर चेलोंके धनको वंचन करतेहैं वह दम्भी कलियुगी गुरु कहेजातेहैं और वह चेले भी मूर्ख ही कहे जाते है। बस पूर्वोक्त युक्तियोंसे यह वार्ता सिद्ध होतीहै कि, आजकलके कलियुगी मनुष्य वेद और शास्त्रके विरुद्ध व्यवहारका प्रचार करके लोगोंके और अपने धर्मका नाश कररहेहैं इसवास्ते मुमुक्षु पुरुषोंको उचितहै कि, श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीकी तरह गुणग्राही बनें और कलियुगी गुरुओंके फंदेमें न फसें और हरएक महात्मोंके सत्संगसे गुणोंको ग्रहण करके संसारमें राजा जनककी तरह या श्रीस्वामी दत्तात्रेयजी की तरह होकरके विचरैं ॥

श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीके जीवनवृत्तान्तका तो संक्षेपसे वर्णन करदिया अब उनकी बनाईहुई जो **"अवधूतगीता"** है जिसमें कि उन्होंने अपने अनुभवका निरूपण कियाहै तिसकी भाषाटीकाका प्रारम्भ करैंगे। जिसको पढकर सब लोग लाभ उठावैंगे. इस टीकामें प्रथम ऊपर मूल फिर नीचे पदच्छेद तिसके नीचे पदार्थ अर्थात् प्रत्येक पदका अर्थ फिर नीचे भावार्थ लिखा है जिसको कि, थोडासा भी हिन्दीका बोध होगा वह भी इसके तात्पर्यको भलेप्रकारसे जान लेवेगा।

इति श्रीस्वामीदत्तात्रेयजीका वृत्तान्त।

अवधूतगीताकी विषयानुक्रमणिका ।

इति अवधूतगीताकी विषयानुक्रमणिका संपूर्ण ।

अथावधूतगीता ।

भाषाटीकासहिता ।

ईश्वरानुग्रहादेव पुंसामद्वैतवासना ।
महद्भयपरित्राणा विप्राणामुपजायते ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ईश्वरानुग्रहात्, एव, पुंसाम्, अद्वैतवासना ।
महद्भयपरित्राणा, विप्राणाम्, उपजायते ॥

पदार्थः ।

ईश्वरानुग्रहात् = ईश्वरके अनुग्रहसे, कृपासे	महद्भयपरित्राणा = महान् भयसे रक्षाको करनेवाली
एव = निश्चय करके	अद्वैतवासना = अद्वैतकी वासना
पुंसाम् = पुरुषोंके मध्यमें	
विप्राणाम् = विप्रोंको	उपजायते = उत्पन्न होतीहै ।

भावार्थः ।

श्रीस्वामी दत्तात्रेयजी कहतेहैं—ईश्वरके कृपासे ही पुरुषोंको अद्वैतकी वासना अर्थात् जीव और ब्रह्मके अभेदकी वासना उत्पन्न होतीहै । अब इसमें यह शंका

होतीहै कि, यदि ईश्वरके अनुग्रहसे ही अद्वैतकी वासनायें उत्पन्न होतीहैं, तब सभीको अद्वैतकी वासनायें उत्पन्न होनी चाहियें क्योंकि ईश्वरका अनुग्रह जीवमात्रपर है, भगवद्गीतामें भी भगवान्ने कहा है-"समोहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः"भगवान् कहतेहैं, मैं संपूर्ण प्राणियोंमें सम हूँ मेरा किसीके साथ द्वेष और प्रियत्व नहींहै । इसी वाक्यसे ईश्वरका अनुग्रह सब जीवोंपर तुल्य ही सिद्ध तो होताहै परन्तु अद्वैतकी वासनायें सबको उत्पन्न नहीं होतीहैं तो फिर दत्तात्रेयजीने कैसे कहा ईश्वरके अनुग्रहसे अद्वैतकी वासनायें उत्पन्न होतीहैं । इस शंकाका यह उत्तर है—भगवद्गीतामें ही भगवान्ने कहा है—"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्॥"जो पुरुष जिस २ कामनाको लेकरके मेरा भजन करतेहैं उनको मैं भी उसी प्रकारसे भजताहूं । सो श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीका यही तात्पर्य है कि, जो पुरुष निष्काम होकर परमेश्वरकी उपासनाको करताहै उसीके ऊपर ईश्वरका अनुग्रह होताहै और ईश्वरके अनुग्रहसे ही अद्वैतकी वासनायें भी उत्पन्न होतीहैं । पुंसाम्—पुरुषोंको अर्थात् चारों वर्णोंमेंसे किसी वर्णका भी हो क्योंकि आत्मज्ञानमें मनुष्यमात्रका अधिकार है । जब कि मनुष्यमात्रपर उसकी उपासना-द्वारा कृपा होजातीहै तब फिर जो कि वेदका अभ्यास करके विप्रपदवीको प्राप्त हुए हैं, वह यदि ईश्वरकी उपासनाको करैंगे तब उनके ऊपर ईश्वरकी कृपा क्यों नहीं होवैगी? किन्तु अवश्य ही होवैगी । इसी तात्पर्यको लेकरके विप्रोंको भी कह-दिया । ननु अद्वैतवासना उत्पन्न होनेसे फिर फल क्या होवैगा । उच्यते "मह-द्भयपरित्राणा" अर्थात् जन्ममरणरूपी जो महान् भय है उससे वह अद्वैतकी वासनायें रक्षा करलेवैंगी अर्थात् जन्ममरणरूपी संसारचक्रसे वह छूटकरके ब्रह्म-रूप होजायगा ॥ १ ॥

ननु-ग्रन्थके आदिमें श्रेष्ठ पुरुष मंगलाचरणको करतेहैं अर्थात् अपने इष्ट-देवको नमस्कार करके पीछे ग्रन्थका आरम्भ करतेहैं सो इस ग्रन्थके आदिमें स्वामीजीने मंगलाचरणको क्यों नहीं किया है ? उच्यते—जीवन्मुक्तोंका मंगला-चरण इतर प्राकृत भेदवादी पुरुषोंकी तरह नहीं होताहै, क्योंकि उनको सर्वत्र एक आत्मदृष्टि ही रहतीहै । सो स्वामीजीने भी भेदका दर्शनरूपी मंगलाचरण द्वितीयश्लोक करके दर्शाया है—

येनेदं पूरितं सर्वमात्मनैवाऽऽत्मनात्मनि ।
निराकारं कथं वन्दे ह्यभिन्नं शिवमव्ययम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

येन, इदम्, पूरितम्, सर्वम्, आत्मना, एव, आत्मना, आत्मनि।
निराकारम्, कथम्, वन्दे, हि, अभिन्नम्, शिवम्, अव्ययम् ॥

पदार्थः ।

येन=जिस	निराकारम्=निराकार आत्माको
आत्मना=आत्माकरके	कथम्=किस प्रकार
एव=निश्चयसे	वन्दे=मैं वन्दन करूं
आत्मनि=अपनेमें ही	हि=क्योंकि वह
आत्मना=अपने करके	अभिन्नम्=जीवसे अभिन्न है फिर वह कैसा है ?
इदम्=यह दृश्यमान	शिवम्=कल्याणस्वरूप है ।
सर्वम्=संपूर्ण जगत्	अव्ययम्=फिर वह अव्यय है ।
पूरितम्=पूर्ण होरहाहै तिस	

भावार्थः ।

जिस आत्माकरके अर्थात् जिस चेतन ब्रह्मकरके यह दृश्यमान संपूर्ण प्रपंच पूर्ण होरहाहै अर्थात् संपूर्ण प्रपंचके भीतर और वाहर वही आत्मा व्यापक होकर स्थित है वह जगत् भी जिस चेतनमें शुक्ति और रजतकी तरह कल्पित होकर स्थित है वास्तवसे नहीं है उस निराकार आत्माको हम कैसे वन्दना करें अर्थात् उसकी वन्दना करनी ही नहीं बनतीहै क्योंकि वन्दना उसकी कीजातीहै जिसका कि, अपनेसे भेद होताहै उसका तो भेद नहीं है किन्तु वह अभिन्न है "अय-मात्मा ब्रह्म" यह अपना आत्मा ही ब्रह्म है इत्यादि अनेक श्रुतियां इस जीवात्माको ही ब्रह्मरूप करके कथन करतीहैं, फिर यह आत्मा कैसा है? शिवरूप है अर्थात् कल्याणस्वरूप है फिर वह अव्यय है अर्थात् नाशसे भी रहित है । तात्पर्य यह है कि, जब ब्रह्मात्मा अपनेसे भिन्न ही नहीं है अर्थात् अपना आत्माही ब्रह्मरूप है

तब वन्दना कैसे बन सकती है ? किन्तु कभी नहीं, इसवास्ते इस ग्रन्थके आदिमें अभेदचिंतनरूप ही मंगल किया है ॥ २ ॥

ननु–ब्रह्म चेतन है, जगत् जड है और जड चेतनका अभेद किसी प्रकारसे भी नहीं बनताहै इसीसे अभेदचिंतनरूपी मंगल भी नहीं बनताहै ।

पञ्चभूतात्मकं विश्वं मरीचिजलसन्निभम् ।
कस्याप्यहो नमस्कुर्यामहमेको निरञ्जनः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

पञ्चभूतात्मकम्, विश्वम्, मरीचिजलसन्निभम् ।
कस्य, अपि, अहो, नमस्कुर्याम्, अहम्, एकः, निरञ्जनः ॥

पदार्थः ।

पञ्चभूतात्मकम् =पांच भूतोंका समुदायरूप ही	अहो=इति खेदे
विश्वम्=यह जगत् है और	कस्य=किसको
मरीचिजलसन्निभम् =मृगतृष्णाके जलके सदृश मिथ्या भी है	अहम्=मैं
अपि=निश्चयकरके	नमस्कुर्याम्=नमस्कार करूं क्योंकि
	एकः=मैं एक ही हूं
	निरञ्जनः=मायामलसे रहित भी हूँ.

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं–यह जितना दृश्यमान जगत् है सो मृगतृष्णाके जलकी तरह मिथ्या है अर्थात् जैसे मृगतृष्णाका जल वास्तवमें नहीं होताहै और भ्रम करके प्रतीत होताहै तैसे यह जगत् भी वास्तवमें नहींहै किन्तु अज्ञान करके अज्ञानी पुरुषोंको सचा प्रतीत होताहै परन्तु जिसका अज्ञान दूर होगयाहै उसको मिथ्या प्रतीत होताहै जबकि चेतनसे भिन्न जगत् सब मिथ्या है और मैं एक ही द्वैतसे रहित मायामलसे रहित शुद्ध हूँ तब फिर नमस्कार किसको करूं नमस्कार तो अपनेसे भिन्न सत्यवस्तु चेतनको कियाजाताहै । सो अपनेसे भिन्न दूसरा चेतन तो है नहीं और जगत् सब मिथ्या असत्यरूप है । मिथ्या जड

वस्तुको तो नमस्कार करना बनता नहीं है और एकमें भी यह व्यवहार नहीं बनताहै इसवास्ते अभेदका चिंतनरूप मंगल सिद्ध होताहै ॥ ३ ॥

आत्मैव केवलं सर्वं भेदाभेदो न विद्यते ।
अस्ति नास्ति कथं ब्रूयां विस्मयः प्रतिभाति मे॥४॥

पदच्छेदः ।

आत्मा, एव, केवलम्, सर्वम्, भेदाभेदः, न, विद्यते ।
अस्ति, नास्ति, कथम्, ब्रूयाम्, विस्मयः, प्रतिभाति, मे॥

पदार्थः ।

आत्मा=आत्माही
एव=निश्चयकरके
केवलम्=केवल है और
सर्वम्=सर्वरूप भी है तिसमें
भेदाभेदः=भेद और अभेद
न विद्यते=विद्यमान नहीं है
अस्ति=है और
नास्ति=नहीं है
कथम्=किसप्रकार
ब्रूयाम्=मै कहूँ
विस्मयः—आश्चर्यरूप
मे—मेरेको
प्रतिभाति—प्रतीत होताहै

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—संपूर्ण ब्रह्माण्डमें एक आत्मा ही केवल सत्यरूप है आत्मासे भिन्न दूसरा कोईभी पदार्थ सत्य नहीं है किन्तु मिथ्या है और सर्वरूप आत्मा ही है क्योंकि कल्पित पदार्थकी सत्ता अधिष्ठानसे भिन्न नहीं होतीहै इसवास्ते संपूर्ण विश्व आत्मासे भिन्न नहीं है और अभिन्न भी नहीं कहसकतेहैं । क्योंकि संपूर्ण विश्व चक्षु इन्द्रिय करके दिखाई पडताहै यदि अभिन्न हो तब आत्माकी तरह कदापि दिखाई न पडै और दिखाई भी पडताहै इसवास्ते अनिर्वचनीय है । जिसका सत्य असत्यरूपसे कुछभी निर्वचन न होसकै उसीका नाम अनिर्वचनीय है । जैसे शुक्तिमें रजत, आकाशमें नीलता, रज्जुमें सर्प यह सब जैसे अनिर्वचनीय हैं क्योंकि सत्य होवैं तो अधिष्ठानके ज्ञानसे इनका नाश न हो और यदि असत्य होवैं तो इनकी प्रतीति न हो परन्तु इनकी प्रतीति होतीहै और इनका नाश भी

होताहै इसी प्रकार जगत्की भी प्रतीति होतीहै और नाश भी इसका होताहै इसवास्ते यह अनिर्वचनीय है और अनिर्वचनीय पदार्थका अपने अधिष्ठानके साथ भेद अभेद भी नहीं कहाजाताहै क्योंकि सत्यरूप आनन्दरूप ज्ञानरूप चेतन अधिष्ठान ब्रह्मके साथ असद्रूप दुःखरूप जडरूप प्रपंचका अभेद कदापि नहीं होसकताहै और भेद भी नहीं होसकताहै, क्योंकि सत्य असत्यके अभेदमें कोई भी दृष्टान्त नहीं मिलताहै इसवास्ते यह जगत् नास्ति और अस्ति दोनों रूपोंसे नहीं कहाजाताहै । इसीवास्ते विस्मयकी तरह अर्थात् आश्चर्यकी तरह यह जगत् हमको प्रतीत होताहै अर्थात् विनाहुए मृगतृष्णाकी तरह प्रतीत होताहै ॥ ४ ॥

ननु दत्तात्रेयजीका सिद्धान्त क्या है ?

वेदान्तसारसर्वस्वं ज्ञानविज्ञानमेव च ।
अहमात्मा निराकारः सर्वव्यापी स्वभावतः ॥५॥

पदच्छेदः ।

वेदान्तसारसर्वस्वम्, ज्ञानविज्ञानम्, एव, च ।
अहम्, आत्मा, निराकारः, सर्वव्यापी, स्वभावतः ॥

पदार्थः ।

वेदान्तसारसर्वस्वम् =वेदान्तका जो सार अद्वैत है वही हमारा सर्वस्व है	अहम्=मैं ही
च एव=और निश्चय करके	आत्मा=आत्मा हूँ और
ज्ञानविज्ञानम् =वही हमारा ज्ञान विज्ञान भी है	निराकारः=निराकार भी हूँ
	स्वभावतः=स्वभावसे ही मैं
	सर्वव्यापी=सर्वव्यापी भी हूँ ॥

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं–वेदान्तका सारभूत जो अद्वैत ब्रह्मका चिन्तन है वही हमारा सर्वस्व है और वही हमारा ज्ञान विज्ञान भी है अर्थात् परोक्ष तथा अपरोक्ष

ज्ञान भी हमारा वही है और मैं ही व्यापकरूप आत्मा हूँ और निराकार भी हूँ अणु, ह्रस्व, मध्यम और दीर्घ आदि आकारोंसे रहित हूँ और स्वभावसे ही मैं सर्वव्यापी भी हूँ ॥ ५ ॥

यो वै सर्वात्मको देवो निष्कलो गगनोपमः ।
स्वभावनिर्मलः शुद्धः स एवाहं न संशयः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

यः, वै, सर्वात्मकः, देवः, निष्कलः, गगनोपमः ।
स्वभावनिर्मलः शुद्धः, सः, एव, अहम्, न, संशयः ॥

पदार्थः ।

यः=जो
सर्वात्मकः=सर्वरूप
देवः=देव है
वै=निश्चयकरके
निष्कलः=निरवयव है
गगनोपमः=आकाशकी तरह अडोल है
स्वभावनिर्मलः=स्वभावसे ही निर्मल है
शुद्धः=शुद्ध है
स एव=सोई निश्चयकरके
अहम्=मैं हूँ
संशयः=संशय इसमें
न=नहीं है ।

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जो सर्वरूप प्रकाशमान देव है सो निरवयव है और गगन जो आकाश है उसकी उपमावाला भी है अर्थात् जैसे आकाश किसी प्रकारसे भी चलायमान नहीं होताहै वैसे वह देव भी अर्थात् प्रकाशस्वरूप ब्रह्म भी चलायमान नहीं होताहै और स्वभावसे ही वह निर्मल है स्वच्छ और शुद्ध भी है सोई निर्मल शुद्ध चेतन ब्रह्म मैं हूँ इसमें किसी प्रकारका भी संदेह नहीं है ॥ ६ ॥

अहमेवाव्ययोऽनन्तः शुद्धविज्ञानविग्रहः ।
सुखं दुःखं न जानामि कथं कस्यापि वर्तते ॥७॥

पदच्छेदः ।

अहम्, एव, अव्ययः, अनन्तः, शुद्धविज्ञानविग्रहः ।
सुखम्, दुःखम्, न, जानामि, कथम्, कस्य, अपि, वर्त्तते ॥

पदार्थः ।

अहम्=मैं ही	सुखम्=सुखको और
एव=निश्चयकरके	दुःखम्=दुःखको
अव्ययः=नाशसे रहित हूँ	न जानामि=मैं नहीं जानताहूँ
अनन्तः=अनन्त भी हूँ और	कथम्=किसप्रकार
शुद्धविज्ञान-विग्रहः =शुद्ध विज्ञानस्वरूप भी हूँ	कस्य=किसको
	अपि=निश्चयकरके
	वर्तते=वर्तते हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अपने अनुभवको कहतेहैं—मैं ही अव्यय हूँ अर्थात् नाशसे रहित हूँ, अनन्त हूँ, फिर मैं शुद्धज्ञानस्वरूप हूँ अर्थात् मायामलसे रहित शुद्ध हूँ और ज्ञान-स्वरूप हूँ, फिर मैं सुख और दुःखको भी नहीं जानताहूँ । तात्पर्य यह है कि, जिसका शरीरादिकोंके साथ अध्यास होताहै वही शरीरादिकोंके धर्म जो कि सुखदुःखादिक हैं उनको जानताहै अर्थात् दूसरोंके धर्मोंको अपनेमें मानताहै क्योंकि उसका अज्ञान अभी नष्ट नहीं हुआहै और हमारा अज्ञान नष्ट होगयाहै और देहादिकोंमें हमारा अध्यास भी नहीं रहाहै, अध्यासके नष्ट होजानेसे देहा-दिकोंमें हमारी अहंता और ममता भी नहीं रहीहै । अहं—ममताके नाश होजा-नेसे विषयइन्द्रियोंके सम्बन्धसे जन्य जो सुख दुःख हैं उनको भी मैं नहीं जान-ताहूँ, सुखदुःखादिक किस प्रकार किसको होतेहैं किसमें वर्ततेहैं क्योंकि जीवन्मुक्त विद्वान्की दृष्टिमें केवल ब्रह्मके दूसरा कोईभी नहीं होताहै ॥ ७ ॥

न मानसं कर्म शुभाशुभं मे ।
न कायिकं कर्म शुभाशुभं मे ॥

न वाचिकं कर्म शुभाशुभं मे ।
ज्ञानामृतं शुद्धमतीन्द्रियोऽहम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

न, मानसम्, कर्म, शुभाशुभम्, मे ।
न कायिकम् कर्म, शुभाशुभम् मे ॥
न, वाचिकम्, कर्म शुभाशुभम् मे ।
ज्ञानामृतम्, शुद्धम्, अतीन्द्रियः, अहम् ॥

पदार्थः ।

मानसम्=मानस	वाचिकम्=वाणीकृत
कर्म=कर्म जितने कि	कर्म=कर्म भी
शुभाशुभम्=शुभ और अशुभ हैं	शुभाशुभम्=शुभ और अशुभ
मे न=मेरेको नहीं लगतेहैं	मे न=मेरे नहीं हैं क्योंकि
कायिकम्=शारीरिक	ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
कर्म=कर्म जो कि	शुद्धम्=शुद्ध और
शुभाशुभम=शुभ अशुभ हैं	अतीन्द्रियः=इन्द्रियोंका अविषय
मे न=मेरेको नहीं लगतेहैं	अहम्=मैं हूँ

भावार्थः ।

मनुस्मृतिमें कायिक वाचिक मानसिक ये तीन तरहके कर्म लिखे हैं, शरीरके जितने कि, अच्छे बुरे कर्म होतेहैं उनका नाम कायिक है और वाणीकरके जितने अच्छे बुरे कर्म होतेहैं उनका नाम वाचिक है और मनकरके जितने अच्छे बुरे कर्म होतेहैं उनका नाम मानसिक है, शारीरकरके जो कर्म होतेहैं उनका फल शरीर ही भोगताहै वाणीकरके जो कर्म होतेहैं उनका फल वाणी ही भोगती है, मनकरके जो अच्छे बुरे कर्म होतेहैं उनका फल पुरुष मनकरके ही भोगता है, क्योंकि अज्ञानी पुरुषोंका इनके साथ अध्यास होताहै इसीवास्ते वह शरीरादिकोंके कर्मोंको अपनेमें मानतेहैं. ज्ञानवान् जीवन्मुक्तका इनके साथ अध्यास नहीं रहताहै इसवास्ते वह इनके कर्मोंको अपनेमें नहीं मानताहै किन्तु वह अपनेको

इनसे असंग चिद्रूप मानताहै सो दत्तात्रेयजी कहतेहैं जिसवास्ते ज्ञानस्वरूप अमृतरूप शुद्ध और इन्द्रियोंके हम अविषय हैं इसीवास्ते कायिक, वाचिक, मानसिक यह तीन प्रकारके कर्म भी हमारे नहीं हैं किन्तु देहादिकोंके हैं। किन्तु हम इनके साक्षी द्रष्टा हैं। ननु—जबतक शरीर विद्यमान है, ज्ञानी भी खानपानादिक और गमनागमनादिक कर्मोंको करताहै तब फिर यह कथन नहीं बनताहै कि हमारे ये कर्म नहीं हैं। उच्यते—जो अपनेमें कर्मोंको मानताहै या जिसको शुभ अशुभ कर्मोंका ज्ञान होता है उसीको कर्मोंका फल भी मिलताहै। जो न मानताहै और न उसको शुभ अशुभ कर्मोंका ज्ञान ही है तिसको फलभी नहीं होताहै जैसे बालक और पागल अपनेमें न तो कर्मोंको मानतेहैं और न उनको शुभ अशुभ कर्मोंके स्वरूपका ही ज्ञान है इसी वास्ते उनको कर्मोंका फल भी नहीं होताहै। इसीप्रकार जीवन्मुक्त ज्ञानवान्को भी कायिक वाचिक और मानसिक कर्मोंका फल कुछ भी नहीं होताहै क्योंकि एक तो वह अपनेमें मानता नहीं है, द्वितीय आत्मानन्दमें वह सर्वकाल मग्न रहताहै इसवास्ते उसको उनका ज्ञान भी नहीं। इसी तात्पर्यको लेकरके दत्तात्रेयजीने भी कहाहै ॥ ८ ॥

मनो वै गगनाकारं मनो वै सर्वतोमुखम् ।
मनोऽतीतं मनः सर्वं न मनः परमार्थतः ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

मनः, वै, गगनाकारम्, मनः, वै, सर्वतोमुखम् ।
मनः, अतीतम्, मनः, सर्वम्, न, मनः, परमार्थतः ॥

पदार्थः ।

मनः=मन ही
वै=निश्चयकरके
गगनाकारम्=गगनके आकारवाला है
मनः=मन ही
वै=निश्चयकरके
सर्वतो=सर्वओरका
मुखम्=मुख है

मनः=मनसे आत्मा
अतीतम्=अतीत है
मनः=मन ही
सर्वम्=संपूर्ण विश्व है
परमार्थतः=परमार्थसे
मनः=मन भी
न=सत्य नहीं है

भावार्थः ।

जीवोंका मन जो है सोई गगनके आकारवाला है अर्थात् जिस कालमें मन संकल्पोंको करने लगताहै तव संपूर्ण आकाशमें भी व्याप्त हो जाताहै फिर मन कैसा है, सर्वओर मुखवाला है क्योंकि जिस तरफका संकल्प करताहै उधरकोही वेधडक चलाजाताहै कोई भी इसकी रुकावट नहीं करसकताहै इस वास्ते मनही संपूर्ण विश्वरूप भी है क्योंकि संपूर्ण जगत् इसीका बनाया है, वह मन भी परमार्थसे सत्यरूप नहीं है और आत्मा चेतन मनसे भी अतीत और सूक्ष्म है इसी वास्ते वही सत्यरूप है ॥ ९ ॥

अहमेकमिदं सर्वं व्योमातीतं निरन्तरम् ।
पश्यामि कथमात्मानं प्रत्यक्षं वा तिरोहितम् ॥१०॥

पदच्छेदः ।

अहम्, एकम्, इदम्, सर्वम्, व्योमातीतम्, निरन्तरम् ।
पश्यामि, कथम्, आत्मानम्, प्रत्यक्षम्, वा, तिरोहितम् ॥

पदार्थः ।

अहम्=मैं	**एकम्**=मैं एक ही हूँ
आत्मानम्=आत्माको	**इदम्**=यह दृश्यमान
प्रत्यक्षम्=प्रत्यक्ष	**सर्वम्**=सर्वरूप भी हूँ और
वा=अथवा	**निरन्तरम्**=निरन्तर
तिरोहितम्=तिरोहित	**व्योमातीतम्**=आकाशसे भी सूक्ष्म हूँ ।
कथम्=किसप्रकार	
पश्यामि=देखूं क्योंकि	

भावार्थः ।

श्रीस्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं—हम आत्माको प्रत्यक्ष अर्थात् अपरोक्ष और तिरोहित अर्थात् परोक्ष कैसे देखैं क्योंकि वह आत्मा एक है और देखना जो होताहै सो भेदको लेकर अपनेसे भिन्नका ही होता है जब कि आत्मासे भिन्न दूसरी वस्तु ही कोई नहीं है तब देखना कैसे हो सकता है । ननु—यद्यपि आत्मा एकभी है तथापि जगत् दृश्यमान तो तिससे भिन्न है इसवास्ते जगत्का

देखना तो वनजावैगा । उच्यते—यह संपूर्ण जगत् भी आत्मरूप ही है क्योंकि कल्पित वस्तु अधिष्ठानसे भिन्न नहीं होताहै । इसीपर स्वामीजी कहते हैं वह निरन्तर आत्मा एक ही है और आकाशसे भी अति सूक्ष्म है इसी अर्थको श्रुति भी कहती है—"एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन" वह ब्रह्म चेतन एक ही द्वैतसे रहित है इस ब्रह्ममें जोकि नानारूप करके जगत् प्रतीत होता है सो वास्तवसे नहीं है ॥ १० ॥

त्वमेवमेकं हि कथं न बुध्यसे
समं हि सर्वेषु विमृष्टमव्ययम् ।
सदोदितोऽसि त्वमखण्डितः प्रभो
दिवा च नक्तं च कथं हि मन्यसे ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

त्वम्, एव, एकम्, हि, कथम्, न, बुध्यसे, समम्, हि, सर्वेषु, विमृष्टम्, अव्ययम् । सदा, उदितः, असि, त्वम्, अखण्डितः, प्रभो, दिवा, च, नक्तम्, च, कथम्, हि, मन्यसे ॥

पदार्थः ।

त्वम्=तू
एव=निश्चय करके
एकं हि=एक ही है
कथम्=क्यों अपनेको
न बुध्यसे=नहीं जानता है
सर्वेषु=संपूर्ण शरीरोंमें
समम्=बराबर तू है
विमृष्टम्=विचार कियागया है
अव्ययम्=नाशसे रहित है
प्रभो=हे प्रभो
त्वम्=तू ही
सदा=सर्वकाल
उदितः=प्रकाशमान
असि=है और
अखण्डितः=भेदसे रहित ही है
च=और फिर तू
दिवा=दिनको
च=और
नक्तम्=रात्रिको
कथं हि=किस प्रकार
मन्यसे=मानताहै

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अपनेको ही कहतेहैं—हे प्रभो तू एक ही ब्रह्मचेतन आत्माको क्यों नहीं जानते हो ? वह कैसा है संपूर्ण प्राणियोंमें सम है अर्थात् तुल्य ही है विमृष्ट अर्थात् विचार कियागया है फिर वह कैसा है अव्यय है नाशसे रहित है सो तुम ही हो फिर तुम सर्वकाल उदित हो अर्थात् प्रकाशमान हो, फिर तुम भेदसे रहित हो, स्वयं स्वप्रकाश होनेपर दिन और रात्रिको तुम कैसे मानते हो, क्योंकि स्वयंप्रकाशमें दिन और रात्रि बन नहीं सकते हैं ॥ ११ ॥

आत्मानं सततं विद्धि सर्वत्रैकं निरन्तरम् ।
अहं ध्याता परं ध्येयमखण्डं खण्डयते कथम् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

आत्मानम्, सततम्, विद्धि, सर्वत्र, एकम्, निरन्तरम् ।
अहम्, ध्याता, परम्, ध्येयम्, अखण्डम्, खण्डयते, कथम् ॥

पदार्थः ।

एकम्=एकही	**ध्याता**=ध्यानका कर्ता हूँ
आत्मानम्=आत्माको	**परम्**=आत्मा
सततम्=निरन्तर	**ध्येयम्**=ध्यानका कर्म है इस प्रकार
सर्वत्र=सर्वत्र	**अखण्डम्**=भेदसे रहित
निरन्तरम्=एकरस	**कथम्**=किसप्रकार
विद्धि=तुम जानो	**खण्डयते**=भेद करतेहो ।
अहम्=मैं	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अधिकारियोंके प्रति कहतेहैं-हे अधिकारी जनो सर्व तुम एकरस एक ही आत्मा चेतनको ज्योंका त्यों जानो जब कि, सर्वत्र भेदसे रहित एकही आत्मा है तब फिर उस एकमें यह भेद कैसे बनताहै जो मैं ध्याता हूँ अर्थात् ध्यानका

कर्ता हूँ और आत्मा ध्येय है अर्थात् ध्यानका कर्म है क्यों भेदमें ही यह सब व्यवहार होताहै अभेदमें नहीं होताहै । यदि कहो बुद्धि आत्माका ध्यान करताहै आत्मा अपना ध्यान नहीं करताहै तो हम कहतेहैं कि, बुद्धि जड है, जड पदार्थमें ध्यान करनेकी शक्ति ही नहीं है। यदि कहो बुद्धिरूपी उपाधिमें स्थित होकरके आप ही अपना ध्यान करताहै सो यह कथन भी नहीं बनता क्योंकि उपाधि सब आप ही मिथ्या है और कल्पित है वह मिथ्यावस्तु सत्यवस्तुका वास्तवसे भेद भी कदापि नहीं करसकती है इसवास्ते भेदकी कल्पना सब मिथ्या है, अभेदमें भेदबुद्धि करना इसीका नाम अज्ञान है ॥ १२ ॥

न जातो न मृतोसि त्वं न ते देहः कदाचन ।
सर्वं ब्रह्मेति विख्यातं ब्रवीति बहुधा श्रुतिः ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

न, जातः, न, मृतः, असि, त्वम्, न, ते, देहः, कदाचन ।
सर्वम्, ब्रह्म, इति, विख्यातम्, ब्रवीति, बहुधा, श्रुतिः ॥

पदार्थः ।

त्वम्=तू	सर्वम्=संपूर्ण जगत्
न जातः=न तो उत्पन्न हुआ	ब्रह्म=ब्रह्मरूप ही है
असि=है और	इति=इसप्रकार
न मृतः=न मरता है	विख्यातम्=प्रसिद्ध है और
न ते=न तो तुम्हारा	बहुधा=बहुतसी
देहः=देह ही	श्रुतिः=श्रुति भी
कदाचन=कभी है	ब्रवीति=ऐसे ही कथन करतीहै

भावार्थः ।

हे शिष्य ! वास्तवसे तो न तू कभी उत्पन्न होताहै और न कभी मरता ही है अर्थात् यह जन्म मरण तुम्हारेमें नहीं है क्योंकि तुम एकरस व्यापक हे और तुम्हारा यह देह भी नहीं है क्योंकि वेद आत्माको "अकायम्" अर्थात् शरीरसे रहित

कहताहै और (सर्वम्) संपूर्ण जगत् ही ब्रह्म अर्थात् ब्रह्मरूप है । इसप्रकार संपूर्ण शास्त्रोंमें यह वार्त्ता प्रसिद्ध है और बहुतसी श्रुतियां भी इसी वार्त्ताको कहती हैं ॥ १३ ॥

स बाह्याभ्यन्तरोसि त्वं शिवः सर्वत्र सर्वदा ।
इतस्ततः कथं भ्रान्तः प्रधावसि पिशाचवत् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ।

सः, बाह्याभ्यन्तरः, असि, त्वम्, शिवः, सर्वत्र, सर्वदा । इतः, ततः, कथम्, भ्रान्तः, प्रधावसि, पिशाचवत् ॥

पदार्थः ।

स बाह्या-भ्यन्तरः=सो जो चेतन बाह्य और अभ्यन्तर है वह
शिवः=कल्याणस्वरूप है
सर्वत्र=सब स्थानोंमें
सर्वदा=सर्वकाल विद्यमान है सो
त्वम् असि=तू ही है
इतः ततः=इधर उधर
भ्रान्तः=भ्रान्त होकर
पिशाचवत्=पिशाचकी तरह
कथम्=क्यों तू
प्रधावसि=दौडता फिरता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जिस चेतन ब्रह्मका पीछे निरूपण कियाहै जो एक है भेदसे रहित है सोई चेतन सबके बाहर और भीतर भी है और कल्याणस्वरूप भी है और सर्वत्र एकरस सर्वदा विद्यमान भी है, सो तुम ही हो, जबकि शुद्धस्वरूप चेतन तुम ही हो तब फिर तिसकी प्राप्तिके वास्ते पिशाचकी तरह तू इधर उधर क्यों दौडते फिरते हो किन्तु मत इधर उधर दौडो. अपनेमें ही विचार करके तिसको जानो ॥ १४ ॥

संयोगश्च विभागश्च वर्तते न च ते न मे ।
न त्वं नाहं जगन्नेदं सर्वमात्मैव केवलम् ॥ १५ ॥

पदच्छेदः ।

संयोगः, च, विभागः, च, वर्तते, न, च, ते, न, मे ।
न, त्वम्, न, अहम्, जगत्, न, इदम्, सर्वम्, आत्मा, एव, केवलम् ॥

पदार्थः ।

संयोगः=संयोग	त्वम्=तुम भी और
च=और	अहम्=मैं भी
विभागः=विभाग	न=नहीं है और
ते=तुम्हारेमें	इदम्=यह दृश्यमान
न च=नहीं	जगत्=जगत् भी
वर्तते=वर्तते हैं	न=वास्तव नहीं है
च=और	केवलम्=केवल
मे=मेरेमें भी	आत्मा=आत्मा ही
न=नहीं वर्ततेहै	एव=निश्चयकरके
	सर्वम्=सर्वरूप है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हे मुमुक्षुजन संयोग और विभाग तुम्हारेमें नहींहैं और मेरेमें भी नहीं है और तुम हम यह भेद भी एक आत्मामें नहीं बनता है फिर यह दृश्यमान जगत् भी वास्तवसे रज्जुमें सर्पकी तरह नहीं है किन्तु सर्वरूप केवल आत्मा ही है आत्मासे भिन्न कोई भी वस्तु स्वरूपसे सत्य नहीं है ॥ १५ ॥

शब्दादिपञ्चकस्यास्य नैवासि त्वं न ते पुनः ॥
त्वमेव परमं तत्त्वमतः किं परितप्यसे ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ।

शब्दादिपञ्चकस्य, अस्य, न, एव, असि, त्वम्, न, ते, पुनः ।
त्वम्, एव, परमम्, तत्त्वम्, अतः, किम्, परितप्यसे ॥

पदार्थः ।

अस्य=इस
शब्दादि- पञ्चकस्य=शब्दादिपञ्चकका
एव=निश्चयकरके
त्वम्=तू
न असि=नहीं है और
पुनः=फिर वह
ते=तुम्हारे भी
न=नहीं है
त्वम्=तूही
एव=निश्चयकरके
परमम्=परम
तत्त्वम्=तत्त्व हो
अतः=इसी हेतुसे
किम्=किसवास्ते
परित- प्यसे=तुम संतप्त होतेहो

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अपने चित्तको ही उपदेश करते हैं—यह जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, पाँच विषय हैं, इनके साथ तुम्हारा और तुम्हारे साथ इनका कोई भी सम्बन्ध नहीं है क्योंकि ये सब असद्रूप मिथ्या हैं और तुम सद्रूप चेतन हो मिथ्या और सत्यका वास्तवसे कोई भी सम्बन्ध नहीं बनता है और तुम ही परमतत्त्वसार वस्तु भी हो इसवास्ते क्यों संतप्त होतेहो ॥ १६ ॥

जन्म मृत्युर्न ते चित्त बन्धमोक्षौ शुभाशुभौ ॥
कथं रोदिषि रे वत्स नामरूपं न ते न मे ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ।

जन्म, मृत्युः, न, ते, चित्तम्, बन्धमोक्षौ, शुभाशुभौ ।
कथम्, रोदिषि, रे, वत्स, नामरूपम्, न, ते, न, मे ॥

पदार्थः ।

जन्म मृत्युः = जन्म और मरण
चित्तम्=चित्तके धर्म हैं
ते न=तुम्हारे नहीं हैं
बन्धमोक्षौ=बन्ध और मोक्ष तथा
शुभाशुभौ=शुभ और अशुभ भी सब चित्तके धर्म हैं
हे वत्स=हे वत्स
कथम्=किसवास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
नामरूपम्=नाम और रूप भी
ते न=तुम्हारे नहीं हैं
मे न=मेरे भी नहीं हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे वत्स ! पैदा होना और मरना ये सब चित्तके धर्म हैं, तुम्हारे नहीं हैं अर्थात् यह सब तुम्हारेमें नहीं हैं और बन्ध मोक्ष तथा शुभ अशुभ जितने कर्म हैं येभी सब चित्तके ही धर्म हैं तुम्हारे नहीं हैं और नाम रूप भी चित्तके धर्म हैं तुम्हारे और हमारे नहीं हैं क्यों कि हम तो चित्तके साक्षी हैं१७॥

अहो चित्त कथं भ्रान्तः प्रधावसि पिशाचवत् ॥
अभिन्नं पश्य चात्मानं रागत्यागात्सुखी भव॥१८॥

पदच्छेदः ।

अहो, चित्त, कथम्, भ्रान्तः, प्रधावसि, पिशाचवत् ।
अभिन्नं, पश्य, च, आत्मानम्, रागत्यागात्, सुखी, भव॥

पदार्थः ।

अहो=बडा खेद है
चित्त=हे चित्त
भ्रान्तः=भ्रान्त हुआ
कथम्=किसप्रकार
पिशाचवत्=पिशाचकी तरह
प्रधावसि=दौडता फिरता है
अभिन्नम्=भेदसे रहित
आत्मानम्=आत्माको
पश्य=तुम देखो और
रागत्यागात्=रागका त्याग करके
सुखी भव=तुम सुखी होजाओ

भावार्थः ।

हे चित्त ! बडा खेद हैं जो तुम भ्रान्त होकर पिशाचकी तरह आत्माको अपनेसे भिन्न जानकरके वनों और पर्वतोंमें पडे खोजते फिरतेहो यही तुम्हारी बडी भूल है तुम आत्माको अभिन्न करके अर्थात् भेदसे रहित देखो और विषयोंमें रागका त्याग करके सुखी हो जाओ क्योंकि जबतक राग है तबतक ही दुःख है, रागका अभाव होजानेसे दुःखका भी अभाव होजाताहै ॥ १८ ॥

त्वमेव तत्त्वं हि विकारवर्जितं
निष्कम्पमेकं हि विमोक्षविग्रहम् ।
न ते च रागो ह्यथवा विरागः
कथं हि सन्तप्यसि कामकामतः ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ।

त्वम्, एव, तत्त्वम्, हि, विकारवर्जितम्, निष्कम्पम्, एकम्, हि, विमोक्षविग्रहम् । न, ते, च रागः; हि; अथवा, विरागः, कथम्, हि, संतप्यसि, कामकामतः॥

पदार्थः ।

त्वम्—तू ही	ते=तुम्हारे
एव—निश्चयकरके	रागः=राग
तत्त्वम्—आत्मस्वरूप है और	वा=अथवा
हि—निश्चयकरके	विरागः=विराग भी
विकारवर्जितम्—विकारसे भी तू रहित है	न=नहीं है
निष्कम्पम्=निष्कंप और	कामकामतः=तो फिर कामोंकी कामनासे
एकम् हि=एक ही	हि=निश्चय करके
विमोक्षविग्रहम्=मोक्षस्वरूप भी तू है	कथम्=किसप्रकार
च=और	संतप्यसि—संतप्त होता है ।

भावार्थः ।

तुम ही चेतन आत्मस्वरूप षड्विकारोंसे रहित हो और निष्कम्प हो अर्थात् किसी देवता विशेषकरके कम्पायमान होनेके योग्य भी तुम नहीं हो किन्तु अचल हो और विशेष करके तुमही मोक्ष स्वरूप भी हो, जिसवास्ते तुम मुक्तरूप हो इसीवास्ते तुम्हारे राग और विरागका भी कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि राग और विराग बन्धवालेमें ही रहते हैं, फिर तुम कामोंकी कामनाकरके क्यों संतप्त होतेहो ॥ १९ ॥

वदन्ति श्रुतयः सर्वा निर्गुणं शुद्धमव्ययम्
अशरीरं समं तत्त्वं तन्मां विद्धि न संशयः ॥ २० ॥

पदच्छेदः ।

वदन्ति, श्रुतयः, सर्वाः, निर्गुणम्, शुद्धम्, अव्ययम् ।
अशरीरम्, समम्, तत्त्वम्, तत्, माम्, विद्धि, न, संशयः ॥

पदार्थः ।

सर्वाः=संपूर्ण	समम्=सबमें समरूप और
श्रुतयः=श्रुतियां आत्माको	तत्त्वम्=तत्त्व कथन करतीहैं
निर्गुणम्=निर्गुण ही	तत्=सोई
वदन्ति=कथन करतीहैं, और तिसीको	माम्=मेरेको
शुद्धम्=शुद्ध	विद्धि=तुम जानो
अव्ययम्=नाशसे रहित	न संशयः=इसमें संशय नहीं है
अशरीरम्=शरीरसे रहित	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—संपूर्ण श्रुतियाँ आत्माको निर्गुण अर्थात् सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंसे रहित कथन करतीहैं और मायामलसे भी रहित कथन करती हैं, नाशसे भी रहित और शरीरसे भी रहित तथा सबमें समरूप करके ही आत्माको कथन करतीहैं सो पूर्वोक्त विशेषणोंकरके युक्त जो आत्मा है सो तू

हे चित्त ! मेरेको ही जान इसमें संशय नहीं है । इस प्रकार अपने चित्तको अपना अनुभव कहते हैं ॥ २० ॥

साकारमनृतं विद्धि निराकारं निरन्तरम् ।
एतत्तत्त्वोपदेशेन न पुनर्भवसंभवः ॥ २१ ॥

पदच्छेदः ।

साकारम्, अनृतम्, विद्धि, निराकारम्, निरन्तरम् ।
एतत्तत्त्वोपदेशेन, न, पुनः, भवसंभवः ॥

पदार्थः ।

साकारम्=साकारको	एतत्तत्त्वोपदेशेन=इसी तत्त्वके उपदेशसे
अनृतम्=मिथ्या	पुनः=फिर
विद्धि=तू जान और	भवसंभवः=संसारका होना
निराकारम्=निराकारको	न=नहीं होवेगा
निरन्तरम्=सद्रूप जान	

भावार्थः ।

ब्रह्माण्डके भीतर जितने साकार पदार्थ दिखाई पडते हैं इन सर्वोको तुम मिथ्या जानो और जोकि सबको सत्ता देनेवाला निराकार चेतन है तिसको तुम सद्रूप करके जानो यही यथार्थ उपदेश है इसके धारण करनेसे फिर जन्ममरण-रूपी संसार जीवको कदापि नहीं होताहै ॥ २१ ॥

एकमेव समं तत्त्वं वदन्ति हि विपश्चितः ।
रागत्यागात्पुनश्चित्तमेकानेकं न विद्यते ॥ २२ ॥

पदच्छेदः ।

एकम्, एव, समम्, तत्त्वम्, वदन्ति, हि, विपश्चितः ।
रागत्यागात्, पुनः, चित्तम्, एकानेकम्, न, विद्यते ॥

पदार्थः ।

विपश्चितः=विद्वान् जन	रागत्यागात्=रागके त्यागदेनेसे
एव हि=निश्चय करके	पुनः=फिर
एकम्=एक ही	चित्तम्=चित्त
तत्त्वम्=आत्मतत्त्वको	एकानेकम्=द्वैत अद्वैतको भी
समम्=समरूप	न विद्यते=नहीं जानता है
वदन्ति=कथन करतेहैं	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं–विपश्चित् जो ज्ञानवान् हैं सो संपूर्ण ब्रह्माण्डमें एक ही आत्मतत्त्वको समरूप करके कथन करते हैं जो आत्मा सर्वत्र एक है और सबमें सम है अर्थात् प्राणिमात्रमें तुल्य ही है विषयोंमें राग करके ही जीवोंको अनेक आत्मा भान होरहे हैं । जब चित्त रागका त्याग करदेता है तब उसे एक अनेक अर्थात् द्वैत अद्वैतका भान नहीं होताहै किन्तु आत्मा ही ज्योंका त्यों एकरस अपनी महिमामें स्थित होजाता है ॥ २२ ॥

अनात्मरूपं च कथं समाधि-
रात्मस्वरूपं च कथं समाधिः ॥
अस्तीति नास्तीति कथं समाधि-
र्मोक्षस्वरूपं यदि सर्वमेकम् ॥ २३ ॥

पदच्छेदः ।

अनात्मरूपम्, च, कथम्, समाधिः, आत्मस्वरूपम्, च, कथम्, समाधिः । अस्ति, इति, नास्ति, इति, कथम्, समाधिः, मोक्षस्वरूपम्, यदि, सर्वम्, एकम् ॥

पदार्थः ।

अनात्मरूपम्=अनात्मारूपको	अस्ति इति=है इसप्रकार
समाधिः=समाधि	नास्ति इति=नहीं है इसप्रकार
कथम्=कैसे होसक्तीहै	कथं समाधिः=कैसे समाधि हो सकती है
च=और	मोक्षस्वरूपम्=मोक्षस्वरूप
आत्मस्वरूपम्=आत्मस्वरूपको	यदि=जो
कथम्=किसप्रकार	सर्वम्=सब
समाधिः=समाधि होतीहै ?	एकम्=एकही है तब कैसे समाधिहोतीहै
च=और	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-संसारमें दो ही पदार्थ हैं, एक तो आत्मा दूसरा अनात्मा सो दोनोंमेंसे एकमें भी समाधि व्यवहार नहीं बनताहै । समाधि नाम एकाग्रताका है सो जो कि अनात्मारूप जडपदार्थ है उसमें तो समाधि किसी-प्रकारसे भी नहीं बनतीहै क्योंकि तिसको तो किसीप्रकारका ज्ञान ही नहीं है और जोकि चेतन आत्मा है वह शुद्ध है और ज्योंका त्यों विक्षेपादिकोंसे रहित अपनी महिमामें स्थित है उसमें भी समाधि नहीं बनती क्योंकि जोकि पहले एकाग्र नहीं उसीको एकाग्र होनेकी इच्छा होती है सो आत्मामें यह बात नहीं है और जो पदार्थ सदैव विद्यमान है उसमें भी समाधि नहीं बन सकतीहैं और जोकि नास्ति है अर्थात् तीनों कालोंमें विद्यमान नहीं है उसमें तो समा-धिकी संभावना मात्र भी नहीं हो सकती है और फिर जो आत्माको नित्य शुद्ध मुक्त स्वरूप सर्वत्र पूर्ण और एक ही है अर्थात् द्वैतसे रहित है तिसमें तो समाधिकी संभावना मात्र भी नहीं बनती है ॥ २३ ॥

विशुद्धोऽसि समं तत्त्वं विदेहस्त्वमजोऽव्ययः ।
जानामीह न जानामीत्यात्मानं मन्यसे कथम्२४॥

पदच्छेदः ।

विशुद्धः, असि, समम्, तत्त्वम्, विदेहः, त्वम्, अजः, अव्ययः । जानामि, इह, न जानामि, ति, आत्मानम्, मन्यसे, कथम् ॥

पदार्थः ।

त्वम्=तू
विशुद्धोऽसि=विशेषकरके शुद्ध है
समम्=एकरस
तत्त्वम्=आत्मतत्त्व है
विदेहः=विदेह है तू
अजः=जन्मसे रहित है
अव्ययः=नाशसे रहित
इह=इस लोकमें
आत्मानम्=आत्माको
जानामि=मैं जानताहूँ
न जानामि=मैं आत्माको नहीं जानता हूँ
इति=इसप्रकार
कथम्=कैसे
मन्यसे=तू मानताहै

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे चित्त ! अथवा शिष्य तू शुद्धस्वरूप है मायामलसे रहित है और सर्वत्र एकरस सम भी है फिर तू विदेह है अर्थात् वास्तवसे तुम्हारा देहके साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है क्यों कि तू अज अर्थात् जन्मसे रहित है इसी वास्ते अव्यय भी है अर्थात् नाशसे भी रहित है । जब ऐसा तेरा स्वरूप है तब फिर तुम कैसे कहता है कि, मैं आत्माको जानताहूँ, मैं आत्माको नहीं जानता हूँ, क्यों कि इस प्रकारका तेरा कथन युक्त नहीं है॥२४॥

ननु—इस वार्ताको कौन कहताहै कि, तू मैं अज अव्यय हूँ । उच्यते:—

तत्त्वमस्यादिवाक्यैश्च स्वात्मा हि प्रतिपादितः ॥
नेति नेति श्रुतिर्ब्रूयादनृतं पाञ्चभौतिकम् ॥ २५ ॥

पदच्छेदः।

तत्त्वमस्यादिवाक्यैः, च, स्वात्मा, हि, प्रतिपादितः, ।
नेति, नेति, श्रुतिः, ब्रूयात्, अनृतम्, पाञ्चभौतिकम् ॥

पदार्थः।

तत्त्वमस्यादिवाक्यैः = "तत्त्वमसि" आदि-वाक्योंसे
हि=निश्चयकरके
स्वात्मा=अपना आत्मा ही
प्रतिपादितः=प्रतिपादन किया है
नेति नेति=नेति नेति इस प्रकार
श्रुतिः=श्रुति
ब्रूयात्=कथन करती है
पाञ्चभौतिकम्=पांचभौतिक प्रपञ्च
अनृतम्=सब मिथ्या है।

भावार्थः।

वेदने "तत्त्वमसि" आदि वाक्यों करके अपना आत्मा ही प्रतिपादन कियाहै और श्रुति भी "नेति नेति" अर्थात् यह जितना दृश्यमान जगत् है सो वास्तवसे ब्रह्ममें नहीं है ऐसे कहतीहै और जितना पाञ्चभौतिक जगत् है यह सब मिथ्या है ॥ २९ ॥

आत्मन्येवात्मना सर्वं त्वया पूर्णं निरन्तरम् ॥
ध्याता ध्यानं न ते चित्तं निर्लज्जं ध्यायते कथम् ॥२६॥

पदच्छेदः।

आत्मनि, एव, आत्मना, सर्वम्, त्वया, पूर्णम्, निरन्तरम् ।
ध्याता, ध्यानम्, न, ते, चित्तम्, निर्लज्जम्, ध्यायते, कथम् ॥

पदार्थः।

त्वया=तुम्हारे
आत्मना=आत्मा करके
आत्मनि=आत्मामें
निरन्तरम्=निरन्तर ही
सर्वम्=सब
पूर्णम्=पूर्ण है
ध्याता=ध्यानवाला और
ध्यानम्=ध्यान
ते न=तुम्हारे नहीं है
निर्लज्जम्=निर्लज्ज
चित्तम्=चित्त
कथम्=कैसे
ध्यायते=ध्यान करता है

भावार्थः ।

तुम्हारे करके ही तुम्हारेमें अर्थात् व्यापक तुम्हारे आत्मामें निरन्तर एकरस संपूर्ण यह जगत् पूर्ण होरहाहै, दूसरा तो कोई भी तुम्हारेसे बिना नहीं है। जब कि एक ही चेतन आत्मा सर्वत्र व्यापक है तब फिर मैं ध्यानका कर्ता हूँ आत्मा ध्येय है, यह व्यवहार कैसे बनताहै किन्तु किसीतरहसे भी नहीं बनताहै। फिर लज्जासे रहित चित्त ध्यान कैसे करता है? क्योंकि एकमें तो ध्यान बनता ही नहीं है ॥ २६ ॥

शिवं न जानामि कथं वदामि
शिवं न जानामि कथं भजामि ।
अहं शिवश्चेत्परमार्थतत्त्वं
समस्वरूपं गगनोपमं च ॥ २७ ॥

पदच्छेदः ।

शिवम्, न, जानामि, कथम्, वदामि, शिवम्, न, जानामि, कथम्, भजामि । अहम्, शिवः, चेत्, परमार्थतत्त्वम्, समस्वरूपम्, गगनोपमम्, च ॥

पदार्थः ।

शिवम्=कल्याणरूपको
न जानामि=मै नहीं जानताहूँ
कथम्=किसप्रकार
वदामि=मैं तिसको कहूँ
शिवम्=शिवको
न जानामि=मैं नहीं जानताहूँ
कथम्=किस प्रकार
भजामि=कैसे भजूं,
चेत्=यदि
अहम्=मैं ही
शिवः कल्याणरूप हूं
परमार्थतत्त्वम्=परमार्थस्वरूप भी हूं
समस्वरूपम्=समस्वरूप भी हूँ
च=और
गगनोपमम्=आकाशके तुल्य भी हूँ.

भावार्थः ।

कल्याणस्वरूप ब्रह्मको मैं नहीं जानताहूँ अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों करके मैं तिसके स्वरूपको नहीं विषय करसकता हूँ । तो फिर मैं कैसे तिसके स्वरूपको कहूँ ? जब कि, वह किसी भी इन्द्रियकरके जाना नहीं जाताहै तब फिर तिसका भजन मैं कैसे करूं ? क्योंकि विना जानेका भजन हो नहीं सकताहै । यदि वेद हमकोही शिवरूप करके कथन करता है और मैं ही शिवरूप परमार्थ स्वरूप और आकाशके तुल्य अचल हूँ तब भी फिर जानना और भजन नहीं बनसकता है क्योंकि जो चेतन सबको जाननेवाला है तिसका जानना किस करके होसकताहै ? किन्तु किसी करके भी नहीं होसकता है ॥ २७ ॥

नाहं तत्त्वं समं तत्त्वं कल्पनाहेतुवर्जितम् ।
ग्राह्यग्राहकनिर्मुक्तं स्वसंवेद्यं कथं भवेत् ॥ २८ ॥

पदच्छेदः ।

न, अहम्, तत्त्वं, समम्, तत्त्वं, कल्पनाहेतुवर्जितम् ।
ग्राह्यग्राहकनिर्मुक्तम्, स्वसंवेद्यम्, कथम्, भवेत् ॥

पदार्थः ।

अहम्=मैं
तत्त्वम्=तत्त्व
न=नहीं हूँ और
समम्=सम
तत्त्वम्=तत्त्व भी नहीं हूँ
कल्पनाहेतुवर्जितम्=कल्पना और हेतुसे भी रहित हूँ
ग्राह्यग्राहकनिर्मुक्तम्=ग्राह्य और ग्राहक व्यवहारसे भी रहित हूँ
स्वसंवेद्यम्=स्वसंवेद्य भी
कथम्=कैसे
भवेत्=होवे

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं–मैं भिन्नतत्त्व और समतत्त्व भी नहीं हूँ और कल्पना तथा कल्पनाके कारणसे भी रहित हूँ । और ग्राह्य (ग्रहण करने योग्य) तथा

ग्राहक (ग्रहण करनेवाला) के व्यवहारसे भी रहित हूँ क्योंकि एकमें ग्राह्यग्राहक-व्यवहारही नहीं बनताहै तब फिर स्वसंवेद्यता कैसे बनेगी किन्तु नहीं बनेगी२८॥

अनन्तरूपं न हि वस्तु किञ्चि-
त्तत्त्वस्वरूपं न हि वस्तु किञ्चित् ।
आत्मैकरूपं परमार्थतत्त्वं
न हिंसको वापि न चाप्यहिंसा ॥ २९ ॥

पदच्छेदः ।

अनन्तरूपम्, नहि, वस्तु, किञ्चित्, तत्त्वस्वरूपम्, न, हि, वस्तु, किञ्चित् । आत्मा, एकरूपम्, परमार्थतत्त्वम्, न, हिंसकः, वा, अपि, न, च, अपि, अहिंसा ॥

पदार्थः ।

अनन्तरूपम् = ब्रह्म चेतन अनन्तरूप है उससे भिन्न
वस्तुकिंचित् = किञ्चित् वस्तु भी सत्य-रूप
नहि = नहीं है
तत्त्वस्वरूपम् = वह ब्रह्म ही वास्तवरूप भी है उससे भिन्न
वस्तु किञ्चित् = सद्रूप वस्तु कोई भी
नहि = नहीं है वह
आत्मा = आत्मा ब्रह्म
एकरूपम् = एक रूप ही है और
परमार्थतत्त्वम् = परमार्थसे तत्त्वस्वरूप भी है
वा अपि = अथवा निश्चय करके
न हिंसकः = न तो कोई हिंसक है
अपि = निश्चय करके
अहिंसा = अहिंसा भी
न च = नहीं है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—वह चेतन आत्माका, अनन्तरूप है अर्थात् उसका अन्त नहीं मिलताहै कहांसे कहांतक है, उससे भिन्न और कोई भी वस्तु अनन्त नहीं है किन्तु परिच्छिन्न है अथवा वह आत्मा अनन्त है अर्थात् नाशसे रहित है और सब वस्तु नाशसे रहित नहीं हैं किन्तु नाशवान् हैं और आत्मा सदैव एकरूपसे

ही रहताहै और वही वास्तविक तत्त्व भी है, आत्मासे भिन्न और कुछ भी नहीं है इस वास्ते न तो कोई हिंसक अर्थात् हिंसाका कर्ता है और न अहिंस वास्तवसे है क्योंकि द्वैतको लेकरके अहिंसा और हिंसकका व्यवहार हो जब कि द्वैत ही नहीं है तो फिर अहिंसा हिंसकका व्यवहार कैसे होसक किन्तु कदापि नहीं होसकता है ॥ २९ ॥

घटे भिन्ने घटाकाशं सुलीनं भेदवर्जितम् ॥
शिवेन मनसा शुद्धो न भेदः प्रतिभाति मे ॥ ३० ॥

पदच्छेदः ।

घटे, भिन्ने, घटाकाशम्, सुलीनम्, भेदवर्जितम्, ।
शिवेन, मनसा, शुद्धः, न, भेदः, प्रतिभाति, मे ॥

पदार्थः ।

घटे भिन्ने=घटके नाश होनेपर	शुद्धः=शुद्ध प्रतीत होताहै इसवास्ते
घटाकाशम्=घटाकाश	मे=मेरेको
सुलीनम्=महाकाशमें लीन होजाताहै	भेदः=आत्माका भेद भी
भेदवर्जितम्=भेदसे रहित होजाताहै	न=नहीं
शिवेन=शुद्ध	प्रतिभाति=प्रतीत होताहै ।
मनसा=मनकरके	

भावार्थः ।

जबतक घट बना है तबतक घटाकाश यह व्यवहार भी होताहै जब घटका नाश होजाताहै तब घटाकाश यह व्यवहार भी नहीं होताहै क्योंकि घटाकाश महाकाशमें लीन होजाताहै इसीप्रकार जबतक लिंगशरीररूपी उपाधि विद्यमान है तबतक ही जीवव्यवहार भी होताहै आत्मज्ञान करके अज्ञानके नाश होनेपर अज्ञानका कार्य जो लिंगशरीररूपी उपाधि है तिसके नाश होनेपर जीवात्मा भी परमात्मामें लीन ही होजाता है अर्थात् फिर भेद-व्यवहार नहीं होताहै और अशुद्ध मनवालेको अशुद्ध भान होताहै । शुद्ध मनकरके आत्मा भी पुरुषको शुद्ध ही प्रतीत होताहै । सो दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जिसवास्ते शुद्ध मनकरके शुद्ध आत्माको हमने जानलियाहै इसवास्ते आत्माका भेद भी हमको नहीं भान होताहै ॥ ३० ॥

न घटो न घटाकाशो न जीवो जीवविग्रहः ।
केवलं ब्रह्म संविद्धि वेद्यवेदकवर्जितम् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः ।

न, घटः, न, घटाकाशः, न, जीवः, जीवविग्रहः ।
केवलम्, ब्रह्म, संविद्धि, वेद्यवेदकवर्जितम् ॥

पदार्थः ।

न घटः=घट नहीं है	केवलम्=केवल
घटाकाशः=घटाकाश भी	ब्रह्म=ब्रह्मचेतनको
न=नहीं है	संविद्धि=तू सम्यक् जान कैसा ब्रह्म
न जीवः=जीव भी नहीं है	वेद्यवेदक-वर्जितम्=जन्यज्ञानके विषयसेहै और जन्यज्ञानसे रहित है
जीवविग्रहः=जीवका जीवत्व भी नहीं है	

भावार्थः ।

जब कि एकरस भेदसे रहित ब्रह्म चेतन ही वास्तवसे सद्रूप है तब उपाधिरूप घट भी नहीं है घटके अभाव होनेसे वास्तवसे घटाकाश भी नहीं है इसीप्रकार अन्तःकरणरूपी उपाधिके अभावसे जीव भी नहीं है क्योंकि जीव नाम अन्तःकरणावच्छिन्न चेतनका है सो अन्तःकरणके मिथ्या होनेसे जीवका विग्रह अर्थात् अन्तःकरणविशिष्ट जीवका स्वरूप भी फिर नहीं रहता है किन्तु केवल अद्वैतसे भलेप्रकार तू ब्रह्मको जान जोकि विषयविषयीभावसे भी रहता है ॥ २१ ॥

सर्वत्र सर्वदा सर्वमात्मानं सततं ध्रुवम् ।
सर्वं शून्यमशून्यं च तन्मां विद्धि न संशयः ॥२२॥

पदच्छेदः ।

सर्वत्र, सर्वदा, सर्वम्, आत्मानम्, सततम्, ध्रुवम् ।
सर्वम्, शून्यम्, अशून्यम्, च, तत्, माम्, विद्धि, न, संशयः ॥

पदार्थः ।

आत्मानम्=आत्माको ही	शून्यम्=शून्य जान
सर्वत्र=सर्वत्र	च=और आत्माको
सर्वदा=सर्वकाल	अशून्यम्=शून्यसे रहित जान
सर्वम्=सर्वरूप	तत्=सो आत्मा
सततम्=निरन्तर	माम्=मेरेको ही
ध्रुवम्=नित्य	विद्धि=तू जान
विद्धि=तू जान और	न संशयः=इसमें संशय नहीं है
सर्वम्=सर्व प्रपंचको	

भावार्थः ।

सर्वकाल सर्वत्र सर्वरूप एकरस और नित्य आत्माको ही तुम जानो क्योंकि यह जितना दृश्यमान जगत् है सो सब स्वरूपसे शून्य है अर्थात् वास्तवसे असद्रूप है, और वह आत्मा अशून्य है शून्यसे रहित शून्यका भी वह साक्षी है । दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे शिष्य ! सो आत्मा तुम मुझको ही जानो इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥ ३२ ॥

वेदा न लोका न सुरा न यज्ञा
वर्णाश्रमौ नैव कुलं न जातिः ।
न धूममार्गो न च दीप्तिमार्गो
ब्रह्मैकरूपं परमार्थतत्त्वम् ॥ ३३ ॥

पदच्छेदः ।

वेदाः, न, लोकाः, न, सुराः, न, यज्ञाः, वर्णाश्रमौ, न, एव, कुलम्, न, जातिः । न, धूममार्गः, न, च, दीप्तिमार्गः, ब्रह्मैकरूपम्, परमार्थतत्त्वम्॥

पदार्थः ।

वेदाः=वास्तवसे वेद भी
न=नहीं हैं
लोकाः=लोक भी
न=नहीं हैं
सुराः=देवता भी
न=नहीं हैं
यज्ञाः=यज्ञ भी
न=नहीं हैं
वर्णाश्रमौ=वर्णाश्रम भी
न=नहीं हैं
एव=निश्चयकरके
कुलम्=कुल भी कोई
न=नहीं है
जातिः=जाति भी
न=नहीं है
धूममार्गः=धूममार्ग भी
न=नहीं है
दीप्तिमार्गः=अग्निमार्ग भी
न च=नहीं है
ब्रह्मैकरूपम्=ब्रह्म ही केवल एकरूप
परमार्थतत्त्वम्=परमार्थसे तत्त्व वस्तु है

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजीका तात्पर्य यह है कि जैसे सुषुप्तिकालमें बाहरका जितना प्रपञ्च है इसका अभाव होजाता है और जाग्रत् अवस्थामें सब प्रपञ्च ज्योंका त्यों बना रहताहै । इसीप्रकार चतुर्थी भूमिकावाले ज्ञानीकी दृष्टिमें तो संपूर्ण वेद शास्त्र और यज्ञादिक कर्मरूप प्रपञ्च सब बना रहताहै परन्तु जीवन्मुक्त छठी और सप्तमी अवस्थावालेकी दृष्टिमें वेद, लोक, देवता और उत्तरायण दक्षिणायन आदि कुछ भी नहीं रहताहै किन्तु परमार्थसे सद्रूप ब्रह्म ही उसकी दृष्टिमें रहताहै उसीकी दृष्टिका यह निरूपण है ॥ ३२ ॥

व्याप्यव्यापकनिर्मुक्तं त्वमेकः सफलो यदि ।
प्रत्यक्षं चापरोक्षं च ह्यात्मानं मन्यसे कथम् ॥ ३४ ॥

पदच्छेदः ।

व्याप्यव्यापकनिर्मुक्तम्, त्वम्, एकः, सफलः, यदि ।
प्रत्यक्षम्, च, अपरोक्षम्, च, हि, आत्मानम्, मन्यसे कथम् ॥

पदार्थः ।

यदि=यदि	हि=निश्चयकरके
त्वम्=तू	प्रत्यक्षम्=प्रत्यक्ष
व्याप्यव्यापकनिर्मुक्तम्=व्याप्य और व्यापकभावसे रहित है	च=और
एकः=एक ही	अपरोक्षम्=अपरोक्ष
सफलः=फलके सहित है	आत्मानम्=आत्माको
	कथम्=कैसे
	मन्यसे=तू मानता है

भावार्थः ।

दत्तात्रयजी अपने चित्तको अग्रणी करके सर्व मुमुक्षुओंके प्रति उपदेश करते हैं—हे शिष्यरूपी चित्त ! तू एक ही सबमें फलके सहित है अर्थात् जीवन्मुक्तिरूपी फलके सहित है, व्याप्य और व्यापकभावसे भी रहित है तब फिर तू आत्माको प्रत्यक्ष और अपरोक्ष कैसे मानता है ! यह व्यवहार तो किसी प्रकार एक ही अपने आत्मामें नहीं बनसकता है, और बन्ध मोक्ष व्यवहार भी नहीं बनताहै ॥ ३४ ॥

अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे ॥
समं तत्त्वं न विन्दन्ति द्वैताद्वैतविवर्जितम् ॥ ३५ ॥

पदच्छेदः ।

अद्वैतम्, केचित्, इच्छन्ति, द्वैतम्, इच्छन्ति, च, अपरे । समं, तत्त्वम्, न, विन्दन्ति, द्वैताद्वैतविवर्जितम् ॥

पदार्थः ।

केचित्=कोई एक विद्वान्	च=और वे सब
अद्वैतम्=अद्वैतको	समं तत्त्वम्=समतत्त्वको
इच्छन्ति=इच्छा करते हैं	न=नहीं
अपरे=और कोई	विन्दन्ति=जानते हैं जो कि
द्वैतम्=द्वैतको	द्वैताद्वैतविवर्जितम्=द्वैताद्वैतसे रहित है
इच्छन्ति=इच्छा करते हैं	

भावार्थः ।

कोई एक आधुनिक मुमुक्षु अथवा आधुनिक वेदान्ती अद्वैतकी ही इच्छा करतेहैं परन्तु अद्वैतमें उनका पूरा २ विश्वास नहीं है क्योंकि भक्तोंके सामने तो वडा भारी अद्वैत ज्ञान छाँटते हैं परन्तु जब मरनेका समय आजाताहै तब गंगा और काशीमें मरनेके वास्ते दौडते हैं, तिसकालमें अपने भक्तोंसे कहते हैं, कि, हमको गंगा या काशी लेचलो जिससे वहांपर हमारे शरीरका त्याग हो. बाजे २ नवीन वेदान्ती हरिद्वार और काशी आदि तीर्थोंमें रहकर भी बरसातके दिनोंमें भी वहींकी नदियोंका मैला जल पीतेहैं और उन्हींमें स्नान करके रोगी भी हो जाते हैं तब भी वह अपने हठका त्याग नहीं करतेहैं । जड जलादिकोंसे अपने कल्याणको चाहतेहैं अद्वैतपर उन मूर्खोंका विश्वास नहीं है उन्हींपर कहा है कि, कोई एक मूर्ख वेदान्ती केवल अद्वैतकी इच्छामात्र ही करतेहैं, विश्वास नहीं करतेहैं, और कोई एक वैष्णव और आचारी वगैरह मतोंवाले द्वैतकी ही इच्छा करतेहैं जो मोक्षावस्थामें भी हम जुदा रहकर विषयभोगोंको भोगते रहें परन्तु वह द्वैतके असली स्वरूपको नहीं जानतेहैं इसवास्ते मिथ्या जगत्को वह सत्य मानतेहैं और तिलक छापरूपी पाखंडोंको धर्म मानतेहैं, जीव ईश्वरके यथार्थ रूपको तो वह जानते ही नहीं हैं, इसवास्ते वह भी केवल द्वैत-मात्रकी इच्छा करतेहैं, अपने कल्याणकी इच्छाको वह नहीं करतेहैं, इसवास्ते पूर्वोक्त दोनों ही असली तत्त्वको नहीं जानतेहैं वह तत्त्व कैसा है ? द्वैत और अद्वैतसे रहित है, क्योंकि ब्रह्मचेतनसे अतिरिक्त यदि दूसरा कोई भी सत्यपदार्थ हो तब तो द्वैत है और अद्वैत भी दूसरेकी अपेक्षा करके ही कहा जाताहै सो ब्रह्मसे भिन्न जब कि दूसरा कोई भी पदार्थ नहीं है तब द्वैताद्वैतसे भी वर्जित है॥३५॥

श्वेतादिवर्णरहितं शब्दादिगुणवर्जितम् ।
कथयन्ति कथं तत्त्वं मनोवाचामगोचरम् ॥ ३६ ॥

पदच्छेदः ।

श्वेतादिवर्णरहितम्, शब्दादिगुणवर्जितम् ।
कथयन्ति, कथम्, तत्त्वम्, मनोवाचाम्, अगोचरम् ॥

पदार्थः ।

श्वेतादिवर्णरहितम्=श्वेतादि वर्णोंसे रहित
शब्दादिगुणवर्जितम्=शब्दादिक गुणोंसे भी रहित
मनोवाचाम्=मन और वाणीके
अगोचरम्=अविषयको
कथम्=किसप्रकार
तत्त्वम्=तत्त्व
कथयन्ति=कथन करते हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं कि, जिसमें कि श्वेत, पीत आदि वर्ण होतेहैं और शब्दादिक गुण होते हैं वहीं मन और वाणीका विषय होताहै अर्थात् उसीको मन और वाणी कथन करतेहैं और जो कि निर्गुण ब्रह्म है उसमें तो कोई भी गुण नहीं है अर्थात् श्वेत, पीतादि वर्ण भी सब उसमें नहीं हैं और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये गुण भी उसमें नहीं हैं तब फिर तिसको तत्त्वरूप करके कैसे कथन करतेहैं अर्थात् तत्त्वरूप करके तिसका कथन भी नहीं बनताहै॥३६॥

यदाऽनृतमिदं सर्वं देहादि गगनोपमम् ।
तदा हि ब्रह्म संवेत्ति न ते द्वैतपरम्परा ॥ ३७ ॥

पदच्छेदः ।

यदा, अनृतम्, इदम्, सर्वम्, देहादि, गगनोपमम् ।
तदा, हि, ब्रह्म, संवेत्ति, न, ते, द्वैतपरम्परा ॥

पदार्थः ।

यदा=जिस कालमें
इदम्=इस दृश्यमान
सर्वम्=संपूर्ण प्रपंचको
अनृतम्=मिथ्या जानताहै
देहादि गगनोपमम्=शरीरादिकोंको आकाशके तुल्य शून्य जानता है
तदा=उसी कालमें
हि=निश्चयकरके
ब्रह्म=ब्रह्मको
संवेत्ति=सम्यक् जानताहै
ते=तुम्हारेको तब
द्वैतपरम्परा=द्वैतकी परम्पराका भी
न=भान नहीं होवैगा

भावार्थः ।

जिसकालमें विद्वान् पुरुष संपूर्ण जगत्को मिथ्या जानलेताहै और शरीरादि-कोंको आकाशके तुल्य शून्य जानलेताहै उसी कालमें ब्रह्मको भी यह भलेप्रकार जानजाताहै तब द्वैतकी परम्पराका भी भान तिसको नहीं होता है ॥ २७ ॥

परेण सहजात्मापि ह्यभिन्नः प्रतिभाति मे ।
व्योमाकारं तथैवैकं ध्याता ध्यानं कथं भवेत्॥२८॥

पदच्छेदः ।

परेण, सहजात्मा, अपि, हि, अभिन्नः, प्रतिभाति, मे ।
व्योमाकारम्, तथा, एव, एकम्, ध्याता, ध्यानम्, कथम्, भवेत्॥

पदार्थः ।

परेण=परब्रह्मके	व्योमाकारम्=व्यापक है
सहजात्मा=साथ अनादि आत्मा	तथा एव=तैसे ही निश्चय करके
अपि हि=निश्चयकरके	एकम्=एक भी है तब फिर
मे=मुझको	ध्याता=ध्यानका कर्ता और
प्रतिभाति=भान होता है फिर कैसा वह है	ध्यानम्=ध्येयाकारवृत्ति
	कथम्=कैसे
अभिन्नः=ब्रह्मसे अभिन्न है और	भवेत्=होवे

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जैसे ब्रह्म चेतन अनादि है तैसे जीव चेतन भी अनादि है और जीव ब्रह्मका अभेद भी हमको भान होता है । फिर वह ब्रह्म चेतन एक है और आकाशकी तरह व्यापक भी है । जब कि चेतन सर्वत्र एक ही है तब फिर एकमें ध्याता और ध्यानका व्यवहार कैसे होसकताहै ? किन्तु कदापि नहीं. क्योंकि ध्याता ध्यानका व्यवहारभेदको ही लेकरके होताहै अभेद दृष्टिको लेकरके नहीं होसकता है। ननु—ज्ञानी लोग भी एकान्तमें बैठकर ध्यान करतेहैं और उनको अभेद निश्चय भी है तब फिर कैसे आप कहतेहैं कि, ध्याता ध्यानका व्यवहार नहीं होताहै॥ उच्यते—ज्ञानी दो प्रकारके हैं, एक तो चतुर्थी भूमिकावाले जोकि आचार्य्य कहेजातेहैं, दूसरी पांचवीं, छठी, सतमी, इन तीन

भूमिकावाले जीवन्मुक्त कहेजातेहैं सो दोनोंमें जोकि चतुर्थ भूमिकावाले हैं वह चित्तके विक्षेपकी निवृत्तिके वास्ते और जिज्ञासुओंकी अन्तर्मुखप्रवृत्ति करानेके वास्ते ध्यानको करतेहैं और जोकि जीवन्मुक्त हैं उनके चित्तोंमें विक्षेप नहीं है। अतएव उनकी दृष्टिमें ध्याता ध्यानका व्यवहार भी नहीं है सो उन्ही जीवन्मुक्तोंकी दृष्टिको लेकरके दत्तात्रेयजीने कहाहै ॥ ३८ ॥

यत्करोमि यदश्नामि यज्जुहोमि ददामि यत् ॥
एतत्सर्वं न मे किञ्चिद्विशुद्धोऽहमजोऽव्ययः ॥ ३९ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, करोमि, यत्, अश्नामि, यत्, जुहोमि, ददामि, यत् । एतत्, सर्वम्, न, मे, किञ्चित्, विशुद्धः, अहम्, अजः, अव्ययः ॥

पदार्थः ।

यत्=जो कुछ	एतत्=यह
करोमि=मैं करताहूँ	सर्वम्=संपूर्ण
यत्=जो कुछ	मे=मेरा
अश्नामि=मैं भक्षण करता हूँ	किञ्चित्=किञ्चित् भी
यत्=जो कुछ	न=नहीं है क्योंकि
जुहोमि=मैं हवन कर्ता हूँ	अहम्=मैं
यत्=जो कुछ	विशुद्धः=शुद्धस्वरूप हूँ
ददामि=मैं देताहूँ	अजः=जन्मसे रहित हूँ
	अव्ययः=नाशसे रहित हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जो कर्म मैं करताहूँ, फिर जो कुछ कि मैं खाता पीता हूँ, और जो कि हवन करताहूँ, जो कुछ देताहूँ, यह सब कुछ मैं नहीं करताहूँ क्योंकि ये सब इन्द्रियोंके धर्म हैं सो इन्द्रिय सब अपने २ धर्मोंको करती हैं। मेरा इनसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है मैं तो शुद्ध हूँ, अज अर्थात् जन्मसे रहित हूँ, नाशसे भी रहित हूँ ॥ ३९ ॥

सर्वं जगद्विद्धि निराकृतीदं सर्वंजगद्विद्धि विकारहीनम्॥
सर्वं जगद्विद्धि विशुद्धदेहं सर्वंजगद्विद्धि शिवैकरूपम्४०

पदच्छेदः ।

सर्वम्, जगत्, विद्धि, निराकृति, इदम्, सर्वम्, जगत्, विद्धि, विकारहीनम् । सर्वम्, जगत्, विद्धि, विशुद्धदेहम्, सर्वम्, जगत्, विद्धि शिवैकरूपम् ॥

पदार्थः ।

सर्वम्=संपूर्ण	सर्वम्=संपूर्ण
जगत्=जगत्को	जगत्=जगत्को
निराकृति=आकारसे रहित	विशुद्धदेहम्=ब्रह्मका शरीर
विद्धि=तू जान	विद्धि=तू जान
इदम्=इस दृश्यमान	सर्वम्=संपूर्ण
सर्वम्=संपूर्ण	जगत्=जगत्को
जगत्=जगत्को	शिवैकरूपम्=कल्याणस्वरूप
विकारहीनम्=विकारसे रहित	विद्धि=तू जान
विद्धि=तू जान	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं–हे चित्त ! संपूर्ण जगत्को तू निराकार ही जान क्योंकि, कल्पित वस्तु साकार नहीं होतीहै । जिसवास्ते यह जगत् सब ब्रह्ममें कल्पित है इसीवास्ते निराकार है और फिर निराकार वस्तु विकारी भी नहीं होतीहै इसीवास्ते संपूर्ण इस जगत्को विकारसे रहित जान और इस जगत्को विशुद्ध देह अर्थात् शुद्धस्वरूप तथा कल्याणस्वरूप भी तू जान, क्योंकि शुद्धस्वरूप और कल्याणस्वरूप ब्रह्मसे कल्पित जगत् भिन्न नहीं है ॥ ४० ॥

तत्त्वं त्वं हि न संदेहः किं जानाम्यथ वा पुनः ॥
असंवेद्यं स्वसंवेद्यमात्मानं मन्यसे कथम् ॥ ४१ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, त्वम्, त्वम्, हि, न, संदेहः, किम्, जानामि, अथवा, पुनः । असंवेद्यम्, स्वसंवेद्यम्, आत्मानम्, मन्यसे, कथम् ॥

पदार्थः ।

हि=निश्चयकरके	किम्=क्या
तत् त्वम्=सो तू है	जानामि=मैं जानूँ
त्वम् तत्=तू सो है	आत्मानम्=आत्माको
संदेहः=इसमें संदेह	असंवेद्यम्=असंवेद्य
न=नहीं है	स्वसंवेद्यम्=स्वसंवेद्य
अथवा=अथवा	कथम्=कैसे तू
पुनः=फिर और	मन्यसे=मानता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं–सो ब्रह्म तू है और तू ही सो ब्रह्म है इसमें किसीप्रकारका भी संदेह नहीं है क्योंकि वेद भगवान् आप ही इस वार्ताको स्पष्टरूपसे कहता है तो क्या फिर तुम आत्माको असंवेद्य किसीसे भी नहीं जानने योग्य है और (स्वसंवेद्य अपनेसे ही जानने योग्य) ही कैसे मानतेहो तात्पर्य यह है कि, जब एक ही चेतन आत्मा ब्रह्म सर्वत्र है तब फिर उपर्युक्त सब व्यवहार किसीप्रकारसे भी नहीं बनताहै ॥ ४१ ॥

मायाऽमाया कथं तात च्छायाऽछाया न विद्यते ।
तत्त्वमेकमिदं सर्वं व्योमाकारं निरञ्जनम् ॥ ४२ ॥

पदच्छेदः ।

माया, अमाया, कथम्, तात, छाया, अच्छाया, न, विद्यते । तत्, त्वम्, एकम्, इदम्, सर्वम्, व्योमाकारम्, निरञ्जनम् ॥

पदार्थः ।

तात=हे तात !
माया=माया और
अमाया=अमाया
कथम्=कैसे है
छाया=छाया और
अच्छाया=अछाया
न=नहीं
विद्यते=विद्यमान है
तत्=सो
त्वम्=तू
एकम्=एक ही है
इदम्=यह
सर्वम्=संपूर्ण जगत्
व्योमाकारम्=आकाशके तुल्य आकारवाला
निरञ्जनम्=निरञ्जन ही है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जब कि चेतन निराकार निरवयव एक ही है तब फिर माया और अमाया, छाया और अछाया यह सब व्यवहार कैसे होसकता है ? सो ब्रह्म चेतन एक ही है और वह तू ही है । यह जितना कि, दृश्यमान जगत् है, सो सब आकाशके तुल्य आकारवाला है अर्थात् ब्रह्मरूप है और वह ब्रह्म मायामलसे रहित है ॥ ४२ ॥

आदिमध्यान्तमुक्तोऽहं न बद्धोऽहं कदाचन ।
स्वभावनिर्मलः शुद्ध इति मे निश्चिता मतिः ॥४३॥

पदच्छेदः ।

आदिमध्यान्तमुक्तः, अहम्, न, बद्धः, अहम्, कदाचन ।
स्वभावनिर्मलः शुद्धः, इति, मे, निश्चिता, मतिः ॥

पदार्थः ।

अहम्=मैं	स्वभावनिर्मलः=स्वभावसे ही निर्मल हूँ
आदिमध्यान्तमुक्तः=आदि, मध्य और अन्तसे रहित हूँ और	शुद्धः=शुद्ध हूँ
अहम्=मैं	इति=इसप्रकारकी
कदाचन=कभी	मे=मेरी
बद्धः=बद्ध	निश्चिता=निश्चित
न=नहीं हूँ	मतिः=बुद्धि है
अहम्=मैं	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो वस्तु कि अपनी उत्पत्तिसे पहले न हो किन्तु उत्पत्तिसे पीछे हो वह आदिवाली कही जातीहै और जो उत्पत्तिसे पहले और नाशसे उत्तर न हो वही मध्यवाली और अन्तवाली भी कही जातीहै सो आत्मा ऐसा नहीं है किन्तु आदि, मध्य, अन्त तीनोंसे रहित अर्थात् न तिसका कोई आदि है, न मध्य है, न अन्त है, किन्तु एकरस ज्योंका त्यों है सो मेरा स्वरूप है इसीवास्ते मैं कदापि बद्ध नहीं होता हूँ और स्वभावसे ही निर्मल हूँ, शुद्ध हूँ ऐसा मेरा निश्चय है ॥ ४३ ॥

महदादि जगत्सर्वं न किञ्चित्प्रतिभाति मे ।
ब्रह्मैव केवलं सर्वं कथं वर्णाश्रमस्थितिः ॥ ४४ ॥

पदच्छेदः ।

महदादि, जगत्, सर्वम्, न, किञ्चित्, प्रतिभाति, मे ।
ब्रह्म, एव, केवलम्, सर्वम्, कथम्, वर्णाश्रमस्थितिः ॥

पदार्थः ।

महदादि=महत्तत्त्व आदिसे लेकर	ब्रह्म=ब्रह्म ही
सर्वम्=संपूर्ण	एव=निश्चय करके
जगत्=जगत्	केवलम्=केवल
किञ्चित्=किञ्चित् भी	सर्वम्=सर्वरूप है
मे=मुझको	वर्णाश्रम-स्थितिः=वर्णाश्रमकी स्थिति
प्रतिभाति=भान	कथम्=कैसे हो सकतीहै
न=नहीं होता है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं कि, महत्तत्त्व आदिसे लेकर जितने तत्त्वकार सांख्यके मतमें हैं और उन संपूर्ण तत्त्वोंका कार्य्यरूप जितना यह जगत् है सो सब मेरेको किञ्चित् भी प्रतीत नहीं होताहै क्योंकि केवल द्वैतसे रहित आनन्दरूप ब्रह्म ही हमको सर्वत्र ज्योंका त्यों भान होता है जब कि ब्रह्मसे भिन्न दूसरा कोई भी वस्तु हमको भान नहीं होता तो फिर हमारी दृष्टिमें वर्णाश्रमकी स्थिति अर्थात् विभाग भी कैसे सिद्ध होवे ॥ ४४ ॥

जानामि सर्वथा सर्वमहमेको निरन्तरम् ।
निरालम्बमशून्यं च शून्यं व्योमादिपञ्चकम् ॥४५॥

पदच्छेदः ।

जानामि, सर्वथा, सर्वम्, अहम्, एकः, निरन्तरम् ।
निरालम्बम्, अशून्यम्, च, शून्यम्, व्योमादिपञ्चकम् ॥

पदार्थः ।

अहम्=मैं	निरालम्बम्=निरालम्ब हूँ
सर्वम्=सबको	अशून्यम्=शून्यसे रहित हूँ
सर्वथा=सब प्रकारसे	च=और
जानामि=जानता हूँ	शून्यम्=शून्य
अहम्=मैं	व्योमादि-पञ्चकम्=आकाशादि पांच हैं
एकः=एक ही हूँ	
निरन्तरम्=निरन्तर हूँ	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-मैं सर्वथा संपूर्ण जगत् और आकाशादि पांच भूतोंको शून्यरूप जानता हूँ, और मैं अपनेको शून्यतासे रहित शून्यका साक्षी जानता हूँ, और मैं एक ही हूँ, और निरन्तर हूँ, अर्थात् एकरस हूँ, आलम्बसे भी रहित हूँ ॥ ४९ ॥

न षण्ढो न पुमान्न स्त्री न बोधो नैव कल्पना ।
सानन्दो वा निरानन्दमात्मानं मन्यसे कथम्॥४६॥

पदच्छेदः ।

न, षण्ढः, न, पुमान्, न, स्त्री, न, बोधः, नैव, कल्पना । सानन्दः, वा, निरानन्दम्, आत्मानम्, मन्यसे, कथम् ॥

पदार्थः ।

न षण्ढः=आत्मा न नपुंसक है	सानन्दः=आनन्दके सहित
न पुमान्=न पुरुष है	वा=अथवा
न स्त्री=न स्त्री है	निरानन्दम्=आनन्दसे रहित
न बोधः=न ज्ञान है	आत्मानम्=आत्माको
एव=निश्चयकरके	कथम्=किस प्रकार
न कल्पना=कल्पना भी नहीं है	मन्यसे=तुम मानते हो

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं-आत्मा नपुंसक नहीं है, और पुरुष तथा स्त्री भी नहीं है, और वृत्तिज्ञान भी नहीं है, क्योंकि वह ज्ञानस्वरूप है, और कल्पनारूप भी नहीं है किन्तु कल्पनाका भी साक्षी है, फिर आत्मा आनन्दके सहित भी नहीं है किन्तु आनन्दरूप है और आनन्दसे रहित भी नहीं है, तो फिर हे शिष्य ! आत्माको तुम कैसे मानते हो ? यदि तुम पुंनपुंसकादिक रूप करके आत्माको मानते हो तो ऐसा मानना तुम्हारा मिथ्या है ॥ ४६ ॥

ननु-हम स्त्री पुरुषादिक रूपोंसे तो आत्माको भिन्न ही मानते हैं परन्तु तिसको अशुद्ध मानकर उसके शोधनका यत्न करतेहैं । उच्यते-ऐसा कथन भी ठीक नहीं है-

पडंगयोगान्न तु नैव शुद्धं
मनोविनाशान्न तु नैव शुद्धम् ॥
गुरूपदेशान्न तु नैव शुद्धं
स्वयं च तत्त्वं स्वयमेव शुद्धम् ॥ ४७ ॥

पदच्छेदः ।

पडंगयोगात्, न, तु, न, एव, शुद्धम्, मनोविनाशात्, न, तु, नैव, शुद्धम् । गुरूपदेशात्, न, तु, नैव, शुद्धम्, स्वयम्, च, तत्त्वम्, स्वयम्, एव, शुद्धम् ॥

पदार्थः ।

पडंगयोगात्=पडंगयोगसे भी आत्मा	गुरूपदेशात्=गुरूके उपदेशसे भी आत्मा
एव=निश्चयकरके	शुद्धम्=शुद्ध
शुद्धम्=शुद्ध	न तु नैव=नहीं होता २
न तु नैव=नहीं होता २	स्वयम्=आप ही आत्मा
मनोविनाशात्=मनके नाश होनेसे भी आत्मा	तत्त्वम्=सारवस्तु है
शुद्धम्=शुद्ध	च=और
न तु नैव=नहीं होता २	स्वयम्=आप ही
	एव=निश्चयकरके
	शुद्धम्=शुद्ध वस्तु है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं षट् अंगोंके सहित योगाभ्यासके करनेसे भी आत्माकी शुद्धि नहीं होतीहै । ननु-मनके नाश करनेसे आत्माकी शुद्धि होतीहै । उच्यते-नहीं होतीहै२। ननु-गुरुके उपदेशसे आत्माकी शुद्धि होतीहै । उच्यते-नहीं होती

है२। ननु= तो फिर आत्माकी शुद्धि किस उपायके करनेसे होतीहै। उच्यते– आत्मा स्वतः शुद्ध है, जो वस्तु स्वरूपसे ही शुद्धहै, उसको जो अशुद्ध मानतेहैं वे मूर्ख कहेजाते हैं और संसारमें इस प्रकार कोई भी नहीं कहता है की मेरा आत्मा अशुद्ध है किन्तु मूर्खसे मूर्ख भी यही कहताहै कि, मेरा मन बडा अशुद्ध है इसीवास्ते मनके निरोधका ही सब लोग साधन पूछते हैं, आत्माके निरोधका और आत्माकी शुद्धिका साधन न तो कोई पूछताहै और न कहीं लिखा ही है इसवास्ते आत्मा नित्य शुद्धस्वरूप है ॥ ४७ ॥

न हि पञ्चात्मको देहो विदेहो वर्तते न हि।
आत्मैव केवलं सर्वं तुरीयं च त्रयं कथम् ॥ ४८ ॥

पदच्छेदः।

न, हि, पञ्चात्मकः, देहः, विदेहः, वर्त्तते, न, हि।
आत्मा, एव, केवलम्, सर्वम्, तुरीयम्, च, त्रयम्, कथम्॥

पदार्थः।

पञ्चात्मकः=पाञ्चभौतिक	आत्मा=आत्मा ही
देहः=देह भी	एव=निश्चयकरके
हि=निश्चय करके	केवलम्=केवल है
न=नहीं है	सर्वम्=सर्वरूप भी है
विदेहः=देहसे रहित भी	तुरीयम्=तुरीय
हि=निश्चय करके	च=और
न=नहीं	त्रयम्=तीन अवस्था
वर्तते=वर्तता है	कथम्=कैसे है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं–आत्मा पाञ्चभौतिकरूपी देह नहीं है क्योंकि देह जड है, आत्मा चेतन है, और विदेह अर्थात् देहसे रहित भी नहीं है, क्योंकि संपूर्ण देहोंमें पूर्ण होकरके स्थित है, और आत्मा ही केवल सद्रूप है, सर्वरूप भी है आत्मासे भिन्न कोई भी वस्तु नहीं है। जब कि आत्मासे भिन्न कोई भी वस्तु नहीं है तब फिर तीन अवस्था और तुरीय अवस्था कैसे बनती है ॥ ४८ ॥

न बद्धो नैव मुक्तोऽहं न चाहं ब्रह्मणः पृथक् ।
न कर्ता न च भोक्ताहं व्याप्यव्यापकवर्जितः ॥४९॥

पदच्छेदः ।

न, बद्धः, नैव, मुक्तः, अहम्, न, च, अहम्, ब्रह्मणः, पृथक् ।
न कर्ता, न, च, भोक्ता, अहम्, व्याप्यव्यापकवर्जितः ॥

पदार्थः ।

अहम्=मैं
बद्धः=बद्ध
न च=नहीं हूँ और
मुक्तः=मुक्त भी
एव=निश्चयकरके
न=नहीं हूँ
अहम्=मैं
ब्रह्मणः=ब्रह्मसे
पृथक्=भिन्न भी
न=नहीं हूँ
न कर्ता=कर्ता भी नहीं हूँ
अहम्=मैं
भोक्ता=भोक्ता भी
न च=नहीं हूँ और
व्याप्यव्यापकवर्जितः=मैं व्याप्य और व्यापकभावसे भी रहित हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—मै बद्ध नहीं हूँ, फिर मैं मुक्त भी नहीं हूँ क्यों कि स्वयंप्रकाश द्वैतसे रहित आत्मामें बंध और मोक्षका व्यवहार भी नहीं बनताहै, फिर मैं ब्रह्मसे भिन्न भी नहीं हूँ, न मैं कर्ता हूँ, और न मैं भोक्ता हूँ, क्योंकि "असङ्गोऽयं पुरुषः"–श्रुति आत्माको असंग बतलाती है, फिर मैं व्याप्य-व्यापकभावसे भी रहित हूँ क्योंकि एकमें व्याप्यव्यापकभाव तीनों कालमें नहीं बनताहै ॥ ४९ ॥

यथा जलं जले न्यस्तं सलिलं भेदवर्जितम् ॥
प्रकृतिं पुरुषं तद्वदभिन्नं प्रतिभाति मे ॥ ५० ॥

पदच्छेदः ।

यथा जलम्, जले, न्यस्तम्, सलिलम्, भेदवर्जितम् ।
प्रकृतिम्, पुरुषम्, तद्वत्, अभिन्नम्, प्रतिभाति, मे ॥

पदार्थः ।

यथा=जिसप्रकार	तद्वत्=तैसे ही
जलम्=जल	प्रकृतिम्=प्रकृति और
जले=जलमें	पुरुषम्=पुरुष
न्यस्तम्=फेंका हुआ	मे=मेरेको
सलिलम्=जलरूप ही	अभिन्नम्=अभिन्न
भेदवर्जितम्=भेदसे रहित होजाताहै	प्रतिभाति=प्रतीत होताहै

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं कि, जिसप्रकार जलमें फेंकाहुआ जल जलरूप ही होजाता है तिसीप्रकार प्रकृति और पुरुष भी मेरेको अभिन्नरूप करके प्रतीत होतेहैं । तात्पर्य्य यह है कि, लोकमें भी जैसे अग्नि और अग्निकी दाहकशक्तिका भेद किसी प्रकारसे भी सिद्ध नहीं होताहै इसीप्रकार ब्रह्मचेतनकी शक्तिका भी ब्रह्मचेतनके साथ किसीप्रकारसे भी भेद सिद्ध नहीं होताहै. मूर्खलोग भेद मानते हैं, ज्ञानी पुरुष भेद नहीं मानतेहैं ॥ ५० ॥

ननु—आत्मा साकार है या निराकार है । उच्यते—

यदि नाम न मुक्तोऽसि न बद्धोऽसि कदाचन ॥
साकारं च निराकारमात्मानं मन्यसे कथम् ॥ ५१ ॥

पदच्छेदः ।

यदि, नाम, न, मुक्तः, असि, न, बद्धः, असि, कदाचन ।
साकारम्, च, निराकारम्, आत्मानम्, मन्यसे, कथम् ॥

पदार्थः ।

यदि नाम=यदि यह बात प्रसिद्ध है	आत्मानम्=आत्माको
मुक्तः=मुक्त तू	साकारम्=साकार
न असि=नहीं है और	च=और
कदाचन=कदाचित्	निराकारम्=निराकार
बद्धः=बद्ध भी तू	कथम्=किसप्रकार
न असि=नहीं है तो फिर	मन्यसे=तू मानता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–हे मुमुक्षु यदि तू मुक्त नहीं है और बद्ध भी नहीं है, अर्थात् कदाचित् यदि तेरेमें मुक्त और बद्ध व्यवहार नहीं है तो फिर तू आत्माको साकार और निराकार कैसे मानता है अर्थात् साकार निराकार कथन अज्ञानावस्थामेंही बनताहै क्योंकि उस अवस्थामें बद्धसे मोक्षका व्यवहार होताहै, जीवन्मुक्त अवस्थामें तो बद्ध मोक्ष व्यवहार ही नहीं है अत एव साकार निराकार कथनभी नहीं बनताहै ॥ ५१ ॥

जानामि ते परं रूपं प्रत्यक्षं गगनोपमम् ।
यथा परं हि रूपं यन्मरीचिजलसन्निभम् ॥ ५२ ॥

पदच्छेदः ।

जानामि, ते, परम्, रूपम्, प्रत्यक्षम्, गगनोपमम् ।
यथा, परम्, हि, रूपम्; यत्, मरीचिजलसन्निभम् ॥

पदार्थः ।

ते=तुम्हारे
परम्=परम
रूपम्=रूपको
जानामि=मैं जानता हूँ
प्रत्यक्षम्=प्रत्यक्ष है
गगनोपमम्=गगनकी उपमावाला है
यथा=जिसप्रकार
परम्=जगतका
रूपम्=रूप है
यत्=जोकि
मरीचिजलसन्निभम्=मृगतृष्णाको जलकी तरह है वैसा तुम्हारा नहीं है.

भावार्थः ।

तुम्हारे परमरूपको मैं जानताहूँ वह प्रत्यक्ष गगनकी तरह व्यापक है, नित्य है, और जगत्का स्वरूप मृगतृष्णाके जलकी तरह मिथ्या है । इतना ही तुम्हारे और जगत्के स्वरूपका फरक है ॥ ५२ ॥

न गुरुर्नोपदेशश्च न चोपाधिर्न मे क्रिया ।
विदेहं गगनं विद्धि विशुद्धोऽहं स्वभावतः ॥ ५३ ॥

पदच्छेदः ।

न, गुरुः, न, उपदेशः, च, न, च, उपाधिः, न, मे, क्रिया ।
विदेहम्, गगनम्, विद्धि, विशुद्धः, अहम्, स्वभावतः ॥

पदार्थः ।

मे=मेरा
गुरुः=गुरु भी कोई
न=नहीं है
च=और
उपदेशः=उपदेश भी
न=नहीं है और
उपाधिः=उपाधि भी
न च=नहीं है
क्रिया=क्रिया भी कोई
न=नहीं है मुझको
विदेहम्=देहसे रहित
गगनम्=आकाशवत्
विद्धि=तू जान क्योंकि
अहम्=मैं
स्वभावतः=स्वभावसे ही
विशुद्धः=शुद्ध हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मेरा वास्तवमें गुरु भी कोई नहीं है जब कि गुरु ही परमार्थदृष्टिसे नहीं है तब उपदेश कहांसे बन सकता है ? क्योंकि गुरु और शिष्यका व्यवहार भेदको लेकरके ही होता है, सो जिसकी दृष्टिमें भेद ही नहीं रहा है उसकी दृष्टिमें गुरु और शिष्यका व्यवहार भी नहीं रहता है फिर भेद-भावनासे रहितकी दृष्टिमें जबकि, उपाधि नहीं है तब उपाधिकृत क्रिया भी नहीं रहती है । इसीवास्ते कहते हैं हे शिष्य ! हमको देहसे रहित गगनके तुल्य तूं व्यापक जान क्योंकि हम स्वभावसेही शुद्ध हैं ॥ ५३ ॥

ननु—तुम तो स्वभावसे ही शुद्ध हो मैं कौन हूँ । उच्यते:—

विशुद्धोऽस्यशरीरोऽसि न ते चित्तं परात्परम् ।
अहं चात्मा परं तत्त्वमिति वक्तुं न लज्जसे ॥ ५४ ॥

पदच्छेदः ।

विशुद्धः, असि, अशरीरः, असि, न, ते, चित्तम्, परात्परम् ।
अहम्, च, आत्मा, परम्, तत्त्वम्, इति, वक्तुम्, न, लज्जसे ॥

पदार्थः ।

विशुद्धः=विशेषकरके शुद्ध
असि=तू है फिर तू
अशरीरः=शरीरसे रहित
असि=है
ते=तुम्हारा
चित्तम्=चित्त भी
न=नहीं है
अहम्=मैं
परात्परम्=पर जो माया उससे भी सूक्ष्म हूँ
च=और मैं
आत्मा=आत्मा हूँ
परम्=परम
तत्त्वम्=तत्त्व हूँ
इति=इसप्रकार
वक्तुम्=कथन करते
न लज्जसे=तू लज्जा नहीं करता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–तू भी शुद्ध है और शरीरसे रहित है । तेरा चित्तके साथ कोई भी सम्बंध नहीं है, क्योंकि तू प्रकृतिसे भी अतिसूक्ष्म है, तो फिर यह जो कथन है कि, मैं आत्मा हूँ, परमतत्त्व हूँ, यह भी वास्तवसे नहीं बनताहै इसवास्ते ऐसे कथन करनेसे भी तू क्या लज्जित नहीं होता ? क्योंकि अद्वैतमें ऐसा कथन नहीं बनताहै ॥ ५४ ॥

कथं रोदिषि रे चित्त ह्यात्मैवात्मात्मना भव ।
पिब वत्स कलातीतमद्वैतं परमामृतम् ॥ ५५ ॥

पदच्छेदः ।

कथम्, रोदिषि रे चित्त, हि, आत्मा, एव, आत्मा, आत्मना, भव । पिब, वत्स, कलातीतम्, अद्वैतम्, परमामृतम् ॥

पदार्थः ।

रे चित्त=हे चित्त !
कथम्=क्यों तू
रोदिषि=रुदन करताहै
हि एव=निश्चय करके
आत्मा=तू आत्मारूप है
आत्मना=अनेकरके
आत्मा=आत्मा
भव=तू होजा
वत्स=हे वत्स !
कलातीतम्=कलासे रहित
अद्वैतम्=अद्वैतरूपी
परमामृतम्=परम अमृतको
पिब=तू पान कर

भावार्थः ।

हे चित्त ! तू किसवास्ते रुदन करताहै ? तेरा रुदन करना व्यर्थ है क्योंकि तू आत्मास्वरूप है, अनात्मा नहीं है। यदि तूने भ्रमकरके अपनेको अनात्मा मान रक्खा हो तो फिर तू विचारके द्वारा भ्रमको दूर करके अपने आत्माकरके अर्थात् अपने आत्माके ज्ञानकरके फिर आत्मा होजा अर्थात् अपने स्वरूपमें स्थित होजा। और कल्पनासे रहित परम अद्वैतरूपी अमृतको हे वत्स ! (प्रिय) तू पान कर ॥ ५५ ॥

नैव वोधो न चाबोधो न बोधाबोध एव च ॥
यस्येदृशः सदा बोधः स वोधो नान्यथा भवेत्॥५६॥

पदच्छेदः ।

न, एव, बोधः, न, च, अबोधः, न, बोधाबोधः एव, च।
यस्य, ईदृशः, सदा, बोधः, सः, बोधः, न, अन्यथा, भवेत्॥

पदार्थः ।

एव=निश्चयकरके	न च=नहीं है और
वोधः=आत्मज्ञान	यस्य=जिस पुरुषको
न=नहीं है	ईदृशः=इसप्रकारका
अवोधः=अज्ञान भी	सदा=सर्वकाल
न च=नहीं है और	वोधः=ज्ञान है
बोधाबोधः=ज्ञान अज्ञान उभयरूप भी	सः वोधः=सो ज्ञानस्वरूप है
	अन्यथा=अन्यथा वह
एव=निश्चय करके	न भवेत्=नहीं होताहै

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–कि, आत्मा अन्तःकरणकी वृत्ति ज्ञानरूप नहीं है, और अज्ञानरूप भी नहीं है, और ज्ञान अज्ञान उभयरूप भी नहीं है किन्तु केवल ज्ञानस्वरूप ही है। जिस पुरुषको इसप्रकारका सर्व काल आत्माका ज्ञान है सो पुरुष ज्ञानस्वरूप ही है, वह अन्यथा कदापि नहीं होताहै ॥ ५६ ॥

ज्ञानं न तर्को न समाधियोगो
न देशकालौ न गुरूपदेशः ।
स्वभावसंवित्तिरहं च तत्त्व-
माकाशकल्पं सहजं ध्रुवं च ॥ ५७ ॥

पदच्छेदः ।

ज्ञानम्, न, तर्कः, न, समाधियोगः, न, देशकालौ, न, गुरूपदेशः । स्वभावसंवित्तिः, अहम्, च, तत्त्वम्, आकाशकल्पम्, सहजम्, ध्रुवम्, च ॥

पदार्थः ।

ज्ञानम्=जन्यज्ञान भी मैं
न=नहीं हूँ
तर्कः=तर्करूपभी
न=मैं नहीं हूँ
समाधियोगः=समाधियोगरूप भी
न=मैं नहीं हूँ
देशकालौ=देशकालभी
न=मैं नहीं हूँ
गुरूपदेशः=गुरुका उपदेश रूपभी
न=मैं नहीं हूँ किन्तु
स्वभावसंवित्तिः=स्वभावसे ही ज्ञानस्वरूप
च=और
तत्त्वम्=यथार्थवस्तु
अहम्=मैं हूँ
आकाशकल्पम्=आकाशके सदृश व्यापक
च=और
सहजम्=स्वभावसे ही
ध्रुवम्=नित्य भी मैं हूँ

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी अपने अनुभवको कहतेहैं—हम ज्ञान नहीं हैं अर्थात् जोकि इन्द्रिय विषयके सम्बन्धसे अन्तःकरणकी वृत्तिरूप जन्यज्ञान है सो मैं नहीं हूँ । और शास्त्रविरुद्ध अथवा शास्त्र संमत रूप जो कि तर्क है सो भी मैं नहीं हूँ । और चित्तका निरोधरूपी जो योग और समाधि है सो भी मैं नहीं हूँ । और देशकालरूप भी मैं नहीं हूँ । और उपदेशको करनेवाला गुरु का उपदेशरूप भी

मैं नहीं हूँ, किन्तु स्वभावसे ही मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, और यथार्थ तत्त्ववस्तु आका-शवत् व्यापक भी मैं हूँ । और स्वभावसे ही मैं नित्य भी हूँ मेरेसे भिन्न और सब अनित्य है ॥ ५७ ॥

न जातोऽहं मृतो वापि न मे कर्म शुभाशुभम् ।
विशुद्धं निर्गुणं ब्रह्म बन्धो मुक्तिः कथं मम ॥५८॥

पदच्छेदः ।

न, जातः, अहम्, मृतः, वा, अपि, न, मे, कर्म, शुभाशुभम् ।
विशुद्धम्, निर्गुणम्, ब्रह्म, बन्धः, मुक्तिः, कथम्, मम ॥

पदार्थः ।

अहम्=मैं कभी	विशुद्धम्=शुद्धस्वरूप हूँ
न जातः=उत्पन्न नहीं हुआ हूँ	निर्गुणम्=निर्गुण हूँ
अहम्=मैं कभी	ब्रह्म=ब्रह्म हूँ
न मृतः=मरा नहीं हूँ	मम=मेरा
मे=मुझको	बन्धः=बन्ध
शुभाऽशुभम्=शुभ और अशुभ	मुक्तिः=मुक्ति
कर्म न=कर्म भी नहीं है क्योंकि मैं	कथम्=कैसे, क्योंकि मैं मुक्तरूप हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जो जन्मता है वह अवश्यही मरताहै—जोकि जन्मता ही नहीं है वह मरता भी नहीं है, सो जन्ममरण साकार और जड शरीरादिकोंकेही होतेहैं, निराकार निरवयव चेतनके नहीं होतेहैं । सो मैं निराकार चेतन व्यापकरूप हूँ इसवास्ते मेरे जन्मादिक भी नहीं हैं और शुभ अशुभ कर्म भी सब शरीरादिकोंके धर्म हैं मेरे धर्म नहीं हैं क्योंकि मैं शुद्धस्वरूप निर्गुण ब्रह्म हूँ फिर मेरा बन्ध और मुक्ति कैसे होसक्तीहै ? क्योंकि मैं तो नित्य मुक्तरूप हूँ ॥ ५८ ॥

यदि सर्वगतो देवः स्थिरः पूर्णो निरन्तरः ।
अन्तरं हि न पश्यामि स बाह्याभ्यन्तरः कथम् ॥५९॥

पदच्छेदः ।

यदि, सर्वगतः, देवः, स्थिरः, पूर्णः, निरन्तरः ।
अन्तरम्, हि, न, पश्यामि, सः, बाह्याभ्यन्तरः, कथम् ॥

पदार्थः ।

यदि=जबकि
देवः=प्रकाशमान आत्मा
सर्वगतः=सर्वगत है
स्थिरः=स्थिर भी है
पूर्णः=पूर्ण भी है
निरन्तरः=एकरस भी है
अन्तरम्=शरीरके भीतरह ही तिसको
न पश्यामि=मैं नहीं देखताहूँ क्योंकि
सः=सो देव
बाह्याभ्यन्तरः=बाहर और भीतर सर्वत्र है
कथम्=कैसे सर्वत्र न देखूँ ।

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं–वह प्रकाशमान आत्मा सर्वगत है । अर्थात् सर्वत्र एक रस प्राप्त है, कहीं भी न्यून अधिक नहीं है, और स्थिर भी है, अर्थात् अचल भी है, किसीतरहसे भी वह चलायमान नहीं होता है, पूर्ण है, एकरसभी है, और शरीरके भीतर ही मैं तिसको नहीं देखताहूँ क्योंकि वह केवल शरीरके भीतर ही नहीं है किन्तु बाहर भीतर सर्वत्र है इसवास्ते बाहर भीतर हम तिसको देखते हैं ॥ ५९ ॥

स्फुरत्येव जगत्कृत्स्नमखण्डितनिरन्तरम् ॥
अहो मायामहामोहौ द्वैताद्वैतविकल्पना ॥६० ॥

पदच्छेदः ।

स्फुरति, एव, जगत्, कृत्स्नम्, अखण्डितनिरन्तरम् ।
अहो, मायामहामोहौ, द्वैताद्वैतविकल्पना ॥

पदार्थः ।

कृत्स्नम्=संपूर्ण
जगत्=जगत्
अखण्डितनिरन्तरम्=अखण्डित निरन्तरही
एव=निश्चय करके
स्फुरति=स्फुरण होताहै
अहो=बडा खेद है
मायामहामोहौ=माया और महामोह
द्वैताद्वैतविकल्पना=द्वैत और अद्वैतकी कल्पना भी स्फुरण होतीहै ।

भावार्थः ।

निराकार व्यापक चेतनमें संपूर्ण जगत् अखण्डित अर्थात् प्रवाहरूपसे निरन्तर ही स्फुरण होताहै, और माया तथा महामोह भी उसीमें स्फुरण होतेहैं, और द्वैत अद्वैतकी कल्पना भी उसीमें स्फुरण होतीहै, वास्तवसे उसमें यह सब कुछ भी नहीं है ॥ ६० ॥

साकारं च निराकारं नेति नेतीति सर्वदा ॥
भेदाभेदविनिर्मुक्तो वर्तते केवलः शिवः ॥ ६१ ॥

पदच्छेदः ।

साकारम्, च, निराकारम्, न, इति, न, इति, इति, सर्वदा । भेदाभेदविनिर्मुक्तः, वर्तते, केवलः, शिवः ॥

पदार्थः ।

साकारम्=स्थूल
च=और
निराकारम्=सूक्ष्म जितना है
इति न=यह सब नहीं है
इति न=यह सब नहीं है
इति=इसप्रकार श्रुति कहती है
सर्वदा=सर्व काल वह
भेदाभेदविनिर्मुक्तः=भेद और अभेदसे रहित
केवलः=केवल
शिवः=कल्याण रूप ही
वर्तते=वर्तता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जितना कि स्थूल और सूक्ष्मरूप जगत् है इस संपूर्ण जगत्का श्रुति निषेध करती है कि, वास्तवसे यह सब ब्रह्ममें सर्वकालमें नहीं है यह ब्रह्म केवल है अर्थात् द्वैतसे रहित है और कल्याणस्वरूप भी है ॥ ६१ ॥

न ते च माता च पिता च बन्धु-
र्न ते च पत्नी न सुतश्च मित्रम् ॥
न पक्षपातो न विपक्षपातः
कथं हि संततिरियं हि चित्ते ॥ ६२ ॥

पदच्छेदः ।

न, ते, च, माता, च, पिता, च, बन्धुः, न, ते, च, पत्नी, न, सुतः, च, मित्रम् । न, पक्षपातः, न, विपक्षपातः, कथम्, हि, संततिः, इयम्, हि, चित्ते ॥

पदार्थः ।

ते=तुम्हारी
माता=माता
न=नहीं है
च=और तुम्हारा
पिता=पिता भी नहीं है
च=और तुम्हारा
बन्धुः=संबन्धी भी
न=नहीं है
च=और
ते=तुम्हारी
पत्नी=स्त्री भी
न=नहीं है
च=और तुम्हारा
सुतः=पुत्र भी
न=नहीं है
च=और तुम्हारा
मित्रम्=मित्र भी
न=नहीं है
पक्षपातः=पक्षपाती भी तुम्हारा कोई
न=नहीं है
विपक्षपातः=विपक्षपाती भी
न=तुम्हारा नहीं है
हि=निश्चय करके
चित्ते=चित्तमें
इयम्=यह
संततिः=संताप
कथम्=कैसे करते हो ।

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हे जीव! न तो वास्तवसे तुम्हारी कोई माता ही है, और न कोई तुम्हारा पिता ही है, और न कोई तुम्हारा संबन्धी ही है, न तो तुम्हारी स्त्री ही है, न कोई तुम्हारा पुत्र और मित्र ही है। यह तो सब अपने २ स्वार्थके ही हैं, और तुम्हारा पक्षपाती या विपक्षी भी कोई नहीं है, फिर तुम चित्तमें संतापको क्यों करते हो? यह तो सब स्वप्नसृष्टिकी तरह मिथ्या है ॥ ६२ ॥

दिवानक्तं न ते चित्त उदयास्तमयौ न हि।
विदेहस्य शरीरत्वं कल्पयन्ति कथं बुधाः ॥ ६३ ॥

पदच्छेदः।

दिवानक्तम्, न, ते, चित्ते, उदयास्तमयौ, न हि।
विदेहस्य, शरीरत्व, कल्पयन्ति, कथम्, बुधाः ॥

पदार्थः।

ते=हे शिष्य! तुम्हारे	**विदेहस्य**=देहसे रहितका
चित्ते=चेतनमें	**शरीरत्वम्**=शरीर
दिवानक्तम्=दिन और रात्रि भी	**बुधाः**=बुद्धिमान्
न=वास्तवसे नहीं हैं और	**कथम्**=कैसे
उदयास्तमयौ=उदय और अस्त भी	**कल्पयन्ति**=कल्पना करते हैं
न हि—तुम्हारा नहीं है	

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हे जीव! तुम्हारे चेतनस्वरूपमें दिन और रात्रि नहीं है, और उदय अस्तभाव भी तिसमें नहीं है क्योंकि वह सदैव एकरस ज्योंका त्यों ही रहताहै और तुम्हारा चेतन आत्मा भी वास्तवसे देहसे रहित है इसीवास्ते वह शरीरवाला भी कदापि नहीं हो सकता है तब फिर विद्वान् लोग उसके शरीरकी कल्पना कैसे करते हैं? किन्तु कदापि नहीं करते हैं ॥ ६३ ॥

नाविभक्तं विभक्तं च न हि दुःखसुखादि च।
न हि सर्वमसर्वं च विद्धि चात्मानमव्ययम् ॥ ६४ ॥

पदच्छेदः ।

न, अविभक्तम्, विभक्तम्, च, न, हि, दुःखसुखादि, च ।
न, हि, सर्वम्, असर्वम्, च, विद्धि, च, आत्मानम्, अव्ययम् ॥

पदार्थः ।

अविभक्तम्=विभागसे रहित और
विभक्तम्=विभागके सहित आत्मा
न=नहीं है
च=और
दुःखसुखादि=दुःखसुखादिक भी आत्माके
न हि=धर्म नहीं हैं
च=और
सर्वम्=सर्वरूपता
असर्वम्=असर्वरूपता भी
नाहि=नहीं हैं
च=और
आत्मानम्=आत्माको
अव्ययम्=नाशसे रहित
विद्धि=तू जान

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं आत्मामें विभागपना और अविभागपना भी नहीं वनताहै, क्योंकि यदि निराकार दो आत्मा होवें तब तो विभागादिक भी वने विना उपाधिके निराकार निरवयवका विभाग कभी नहीं होसकताहै और उपाधि सब मिथ्या है इस वास्ते वास्तवसे विभागादिक नहीं वनते हैं । और स्वयंप्रकाश सुखरूप आत्मामें जन्म दुःखसुखादिक भी नहीं वनतेहैं । इसी तरह सर्वमिथ्या प्रपंचरूपता अरूपता भी तिसमें नहीं वनती है इसवास्ते तिस आत्माको तू अव्यय जान ॥ ६४ ॥

नाहं कर्ता न भोक्ता च न मे कर्म पुराधुना ॥
न मे देहो विदेहो वा निर्ममेति ममेति किम् ॥ ६५ ॥

पदच्छेदः ।

न, अहम्, कर्ता, न, भोक्ता, च, न, मे, कर्म, पुराधुना ।
न, मे, देहः, विदेहः, वा, निर्मम, इति, मम, इति किम् ॥

पदार्थः ।

अहम्=मैं	मे=मेरा
कर्ता=कर्मोंका कर्ता	देहः=देह भी
न=नहीं हूँ	न=नहीं है
च=और उनके फलोंका	वा=अथवा
भोक्ता=भोक्ता भी	विदेहः=मैं देहसे रहित भी नहीं हूँ
न=नही हूँ	निर्ममेति=ममतासे रहित और
मे कर्म=मेरे कर्म	ममेति=ममताके सहित
पुराऽधुना=पूर्व और अब	किम्=कैसे मैं हो सकता हूँ
न=नहीं है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-न तो मैं कर्मोंका कर्ता हूँ, और न मैं उनके फलोंका भोक्ता ही हूँ। फिर न तो मेरे पूर्वले जन्मोंके ही कर्म हैं, और न इसी जन्मके कर्म हैं। जिस कारण पूर्वोत्तर जन्मके मेरा कर्म ही कोई नहीं है इसी वास्ते मेरा शरीर भी नहीं है, और मैं विदेह अर्थात् देहसे रहित भी नहीं हूँ क्योंकि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही मेरा शरीर है किन्तु मैं जीवन्मुक्त हूँ इसीवास्ते ममतासे रहित और ममताके सहित भी मैं नहीं हूँ किन्तु अपने आत्मानन्दमें मग्न हूँ ॥ ६९ ॥

न मे रागादिको दोषो दुःखं देहादिकं न मे ॥
आत्मानं विद्धि मामेकं विशालं गगनोपमम् ॥ ६६ ॥

पदच्छेदः ।

न, मे, रागादिकः, दोषः, दुःखम्, देहादिकम्, न, मे ।
आत्मानम्, विद्धि, माम्, एकम्, विशालम्, गगनोपमम् ॥

पदार्थः ।

रागादिकः=रागादिक	माम्=मुझको
दोषः=दोष भी	आत्मानम्=आत्मारूप और
मे न=मेरे नहीं हैं	एकम्=एक
दुःखम्=दुखरूप	विशालम्=विस्तारवाला
देहादिकम्=देहादिक भी	गगनोपमम्=आकाशके तुल्य
मे न=मेरे नहीं हैं	विद्धि=तू जान

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—राग और द्वेषादिक दोष भी मेरेमें नहीं हैं, और दुःखरूप देहादिक भी मेरे नहीं हैं, किन्तु मुझको एक और विशाल (अति-विस्तृत) आकाशके सदृश हे शिष्य ! तू जान ॥ ६६ ॥

सखे मनः किं बहुजल्पितेन
सखे मनः सर्वमिदं वितर्क्यम् ॥
यत्सारभूतं कथितं मया ते
त्वमेव तत्त्वं गगनोपमोऽसि ॥ ६७ ॥

पदच्छेदः ।

सखे, मनः, किम्, बहुजल्पितेन, सखे, मनः, सर्वम्, इदम्, वितर्क्यम् । यत्, सारभूतम्, कथितम्, मया, ते, त्वम्, एव, तत्त्वम्, गगनोपमः, असि ॥

पदार्थः ।

सखे मनः=हे सखे मन !
बहुजल्पितेन=बहुत कथन करनेसे
किम्=क्या प्रयोजन है
सखे मनः=हे सखे मन !
इदम्=यह जगत्
सर्वम्=सम्पूर्ण
वितर्क्यम्=तर्क करनेके योग्य है
यत्=जोकि
सारभूतम्=सारभूत
मया=मैंने
कथितम्=कथन किया
ते=तुम्हारे प्रति
त्वम्=तू ही
एव=निश्चय करके
तत्=सो है
तत्त्वम्=सो तुम
गगनोपमः=आकाशके तुल्य
असि=है

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी अपने मनके प्रति कहते हैं-हे सखे मन ! तुम्हारे प्रति बहुत कथन करनेका कुछ भी प्रयोजन नहीं है किन्तु जितना कि यह दृश्यमान जगत्

है सो तब तर्क करनेके योग्य है और जोकि हमने तुम्हारे प्रति पूर्व सारभूत सिद्धान्त कथन किया है कि ब्रह्मचेतन तुम ही हो सो तुम आकाशके तुल्य निर्लेप और असंग भी हो ॥ ६७ ॥

येन केनापि भावेन यत्र कुत्र मृता अपि।
योगिनस्तत्र लीयन्ते घटाकाशमिवाम्बरे ॥ ६८ ॥

पदच्छेदः।

येन, केन, अपि, भावेन, यत्र, कुत्र, मृताः, अपि।
योगिनः, तत्र, लीयन्ते, घटाकाशम्, इव, अम्बरे ॥

पदार्थः।

येन केन=जिस कि
भावेन=भावसे
अपि=निश्चयकरके
यत्र कुत्र=जहां कहीं
मृताः=मरणको प्राप्त
अपि=भी
योगिनः=ये ज्ञानवान्
तत्र=उसी ब्रह्ममें ही
लीयन्ते=लीन हो जाते हैं
घटाकाशम्=घटाकाशके
इव=समान
अम्बरे=महाकाशमें लीन होजाता है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—ज्ञानवान् पुरुष जिस किसी निमित्तसे जहां कहीं प्राणोंका त्याग भी करदेता है, अर्थात् उत्तम मध्यमादि भूमियोंमें शरीरको भी छोड़ देता है तब भी वह पूर्ण ब्रह्ममें ही लीन हो जाता है जैसे घटके फूटजाने पर घटाकाश महाकाशमें लीन हो जाता है ॥ ६८ ॥

तीर्थे चान्त्यजगेहे वा नष्टस्मृतिरपि त्यजन्।
समकाले तनु मुक्तः कैवल्यव्यापको भवेत् ॥ ६९ ॥

पदच्छेदः।

तीर्थे, च, अन्त्यजगेहे, वा, नष्टस्मृतिः, अपि, त्यजन्। समकाले, तनुम्, मुक्तः, कैवल्यव्यापकः, भवेत्॥

पदार्थः ।

तीर्थे=तीर्थमें	समकाले=समकालमें
च=और	तनुम्=शरीरको
अन्त्यजगेहे=चाण्डालके घरमें	त्यजन्=त्यागता हुआ
वा=अथवा	मुक्तः=मुक्त हुआ
नष्टस्मृतिः=बेहोश हुआ भी	कैवल्यव्यापकः=व्यापक ब्रह्मरूप
अपि=निश्चयकरके	भवेत्=हो जाता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—ज्ञानवान् जीवन्मुक्त सचेत हुआ २ अथवा अचेत हुआ २ किसी तीर्थमें या चाण्डालके घरमें समकालमें अर्थात् प्रारब्धकर्मके समाप्त होजानेपर शरीरको त्यागकर मुक्त हुआ भी मुक्तरूप व्यापक चेतनब्रह्ममें ही मिलजाता है, लोकान्तरको या देहान्तरको नहीं प्राप्त होजाता है । इसी अर्थको श्रुति भी कहती है "न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति" तिस ज्ञानवान्के प्राण लोकान्तरमें या देहान्तरमें गमन नहीं करते हैं किन्तु "अत्रैव समवलीयन्ते" इसी लोकमें अपने कारणमें लीन होजाते हैं और विद्वान्का आत्मा ब्रह्मचेतनमें लीन हो जाता है अर्थात् ब्रह्मके साथ तिसका अभेद होजाता है फिर तिसका जन्म नहीं होता है ॥ ६९ ॥

धर्मार्थकाममोक्षांश्च द्विपदादिचराचरम् ॥
मन्यन्ते योगिनः सर्वं मरीचिजलसन्निभम् ॥ ७० ॥

पदच्छेदः ।

धर्मार्थकाममोक्षान्, च, द्विपदादिचराचरम् ।
मन्यन्ते, योगिनः, सर्वम्, मरीचिजलसन्निभम् ॥

पदार्थः ।

धर्मार्थकाममोक्षान्=धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष	सर्वम्=सबको
च=और	योगिनः=ज्ञानी लोग
द्विपदादिचराचरम्=द्विपद आदि जितने चर अचर हैं	मरीचिजलसन्निभम्=मृगतृष्णाके जलके सदृश
	मन्यन्ते=मानते हैं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थोंको और संसारमें जितने दोपांव तथा चार पाँववाला इत्यादिक जंगम जीव हैं और जितने कि वृक्षादिक स्थावर हैं इन सबको ज्ञानीलोग मृगतृष्णाके जलके तुल्य मानतेहैं अर्थात् मिथ्या मानते हैं इसीवास्ते इनमेंसे किसीसे भी वह गतिको नहीं चाहते हैं ॥ ७० ॥

अतीतानागतं कर्म वर्तमानं तथैव च ॥
न करोमि न भुञ्जामि इति मे निश्चला मतिः ॥७१॥

पदच्छेदः।

अतीतानागतम्, कर्म, वर्त्तमानम्, तथा, एव, च।
न, करोमि, न, भुञ्जामि, इति, मे, निश्चला, मतिः ॥

पदार्थः।

अतीतानागतम्=भूत और भविष्यत् कर्मोंको और	न करोमि=नहीं कर्ता हूँ और
तथा=तैसे ही	न भुञ्जामि=इनके फलको भी मैं नहीं भोगता हूँ
एव=निश्चयकरके	इति=इस प्रकारकी
वर्तमानम्=वर्तमान	मे=मेरी
कर्म=कर्मको	निश्चला=स्थिर
अहम्=मैं	मतिः=बुद्धि है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—भूत, भविष्यत् और वर्तमान ये तीन प्रकारके कर्म हैं उनमें जो पूर्वले जन्मोंमें कर्म किये गयेहैं वह भूत कर्म कहाते हैं और जो भविष्यत् जन्मोंमें किये जायँगे वह भविष्यत् कर्म कहेजाते हैं, जो वर्तमान जन्ममें किये जातेहैं वह वर्तमान कर्म कहेजातेहैं। इन को मैं न कर्ता हूँ और न इनके फलका भोक्ताहूँ। ऐसी मेरी स्थिर बुद्धि है। तात्पर्य्य यह है कि जिसका कर्मादिकोंमें अभ्यास है वही अपने को कर्ता मानकर दुःखको प्राप्त

होताहै, और जिसका अध्यास निवृत्त होगया है वह अपनेको न तो कर्ता माननाहे और न दुःखको प्राप्त होताहै, इसीवास्ते वह जीवन्मुक्त भी कहा- जाताहे । इसीमें दत्तात्रेयजीका तात्पर्य है ॥ ७१ ॥

शून्यागारे समरसपूत-
स्तिष्ठन्नेकः सुखमवधूतः ।
चरति हि नग्नस्त्यक्त्वा गर्वं
विन्दति केवलमात्मनि सर्वम् ॥ ७२ ॥

पदच्छेदः ।

शून्यागारे, समरसपूतः, तिष्ठन्, एकः, सुखम्, अवधूतः । चरति, हि, नग्नः, त्यक्त्वा, गर्वम्, विन्दति, केवलम्, आत्मनि, सर्वम् ॥

पदार्थः ।

शून्यागारे=शून्य मन्दिरमें	त्यक्त्वा=त्याग करके
समरसपूतः=समतारूपी रसकरके पवित्र हुआ	नग्नः=नग्न
	हि=निश्चयकरके
एकः=अकेला	चरति=विचरता भी है
अवधूतः=अवधूत	केवलम्=केवल
सुखम्=सुखपूर्वक	आत्मनि=आत्मा में ही
तिष्ठन्=स्थित होता	सर्वम्=सबको
गर्वम्=अहंकारको	विन्दति=जानता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जीवन्मुक्त अवधूत समदृष्टिवाला हुआ २ शून्य मन्दिरमें पवित्र होकर स्थित होताहै । अर्थात् निर्जन देशमेंही रहताहै, और सर्व पदार्थोंमें अहंकारका त्याग करके ही विचरतेहैं । इसीवास्ते वह सुखी अपने आत्मामें ही सर्व प्रपंचको कल्पित देखता है ॥ ७२ ॥

त्रितयतुरीयं नहि नहि यत्र
विन्दति केवलमात्मनि तत्र ।
धर्माधर्मौ नहि नहि यत्र
बद्धो मुक्तः कथमिह तत्र ॥ ७३ ॥

पदच्छेदः ।

त्रितयतुरीयम्, नहि, नहि, यत्र, विंदति, केवलम्, आत्मनि, तत्र । धर्माधर्मौ, नहि, नहि, यत्र, बद्धः, मुक्तः, कथम्, इह, तत्र ॥

पदार्थः ।

यत्र=जिस जीवन्मुक्ति अवस्थामें	यत्र=जिस जीवन्मुक्ति अवस्थामें
त्रितय-तुरीयम् = जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय यह चारों	धर्माधर्मौ=धर्माधर्म भी
नहि नहि=नही हैं नही हैं	नहि नहि=नहीं हैं नहीं हैं
तत्र=तिसी जीवन्मुक्ति अवस्थामें	तत्र=तिस अवस्थामें
आत्मनि=आत्मामें ही	बद्धः=यह बद्ध है
केवलम्=ब्रह्मानन्दको ही	मुक्तः=यह मुक्त है
विन्दति=लभताहै फिर	इह=यहां
	कथम्=यह व्यवहार कैसे होता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जिस जीवन्मुक्ति अवस्थामें जीवन्मुक्तकी दृष्टिमें जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय यह चारों अवस्था नहीं हैं उसी अवस्थामें जीवन्मुक्त अपने आत्मामें ब्रह्मानन्दको प्राप्त होताहै फिर जिस अवस्थामें धर्म अधर्म भी नहीं हैं उस अवस्थामें यह बद्ध है और यह मुक्त है यह व्यवहार कैसे हो सकता है ? ॥ ७३ ॥

विन्दतिविन्दति नहिनहि मंत्रं छंदो लक्षणं नहिनहितंत्रम्
समरसमग्नो भावितपूतः प्रलपितमेतत्परमवधूतः ॥७४॥

पदच्छेदः ।

विन्दति, विन्दन्ति, नहि, नहि, मन्त्रम्, छन्दः, लक्षणम्, नहि, नहि, तन्त्रम् । समरसमग्नः, भावितपूतः, प्रलपितम्, एतत्, परम्, अवधूतः ॥

पदार्थः ।

समरस मग्नः = आत्मरसमें जोकि मग्न है	नहि नहि=नहीं लभता २
भावितपूतः=चित्तसे शुद्ध है ऐसा जो कि	छन्दः=छन्द
अवधूतः=अवधूत है वह	लक्षणम्=रूप
मन्त्रम्=मन्त्रको	तन्त्रम्=तन्त्रको
विन्दति=लभता है	नहि नहि=नहीं लभता २
विन्दति=लभता है	एतत्=इस
	परम्=परब्रह्मको ही
	प्रलपितम्=कथन करताहै

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जीवन्मुक्त जोकि अवधूत पदवीको प्राप्त होगयाहै सो उस पदवीको प्राप्त होकर किसी मंत्रविशेषको नहीं प्राप्त होताहै और न किसी छन्दरूपी तन्त्रकोही लभता है किन्तु वह परब्रह्मकोही लभता है अर्थात् अपने आत्मासे भिन्नको ग्रह वह नहीं जानता है किन्तु अपने आत्माकाही चिन्तन करता है कैसा वह अवधूत है ? अन्तःकरणसे पवित्र है, और एकरस आत्मानन्दमेंही मग्न है ॥ ७४ ॥

सर्वशून्यमशून्यं च सत्यासत्यं न विद्यते ।
स्वभावभावतः प्रोक्तं शास्त्रसंवित्तिपूर्वकम् ॥ ७५ ॥

इति श्रीदत्तात्रेयविरचितायामवधूतगीतायामात्मसंवित्त्युपदेशो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

सर्वशून्यम्, अशून्यम्, च, सत्यासत्यम्, न, विद्यते ।
स्वभावभावतः, प्रोक्तम्, शास्त्रसंवित्तिपूर्वकम् ॥

पदार्थः ।

सर्वशून्यम् संपूर्ण जगत् शून्यरूप है
च=और
अशून्यम्=आप शून्यसे रहित है
सत्यास- } =सत्य और
: त्यम् } असत्य भी
न विद्यते=तिसमें विद्यमान नहीं है
स्वभाव- } =स्वभावसे ही
भावतः } भावरूप
प्रोक्तम्=कहा है
शास्त्रसंवित्ति- } =शास्त्रके ज्ञानपूर्वक
पूर्वकम् } कहा है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–उस आत्मा ब्रह्ममें सम्पूर्ण जगत् शून्यकी तरह है और आप वह शून्यसे रहित है किन्तु शून्यका भी साक्षी है । उस चेतन आत्मामें सत्य असत्य ये दोनों भी विद्यमान नहीं हैं । और शास्त्रीय ज्ञानपूर्वक स्वभावसे ही तिसको विद्वानोंने भावरूप करके कथन किया है ॥ ७९ ॥

इति श्रीमदवधूतगीतायां स्वामिहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्दविरचित-
परमानन्दीभाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अवधूत उवाच ।

वालस्य वा विषयभोगरतस्य वापि
मूर्खस्य सेवकजनस्य गृहस्थितस्य ॥
एतद्गुरोः किमपि नैव न चिन्तनीयं
रत्नं कथं त्यजति कोऽप्यशुचौ प्रविष्टम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

वालस्य, वा, विषयभोगरतस्य, वा, अपि मूर्खस्य, सेवकजनस्य, गृहस्थितस्य । एतत्, गुरोः, किम्, अपि, नैव, न, चिन्तनीयम्, रत्नम्, कथम्, त्यजति, कः, अपि, अशुचौ, प्रविष्टम् ॥

पदार्थः ।

वालस्य=बालकको
वा=अथवा
विषयभोगरतस्य=विषयभोगमें प्रीतिवालेको
अपि=निश्चयकरके
मूर्खस्य=मूर्खको
सेवकजनस्य=सेवकजनको
गृहस्थितस्य=गृहमें स्थितको
एतत्=इन
गुरोः=गुरुओंसे
किम्=कुछ भी
अपि=निश्चयकरके
नैव लभ्यते=लाभ नहीं होता है
न चिन्तनीयं=ऐसा चिन्तन नहींकरना
अशुचौ=अपवित्र कीचआदिमें
प्रविष्टम्=गिरेहुए
रत्नम्=रत्नको
कथम्=कैसे
कोऽपि=कोई भी
त्यजति=त्याग कर देताहै ?

भावार्थः ।

श्रीस्वामी दत्तात्रेयजी कहतेहैं—बालकगुरुसे, विषयीगुरुसे, मूर्खगुरुसे, सेवकगुरुसे, गृहस्थीगुरुसे अर्थात् इसतरहके जो गुरु हैं उनसे कुछ भी लाभ नहीं होताहै ऐसा चिन्तन मत करो किन्तु उनमें भी कोई न कोई गुण अवश्य होवेगा उसी गुणका ग्रहण करके उनका त्याग करदेओ क्योंकि अपवित्र कीच आदिमें जो हीरा पडा होताहै उस हीरेका कौन पुरुष त्याग करदेताहै अर्थात् हीरेका ग्रहण करके जैसे कीचका सब कोई त्याग करदेताहै तैसेही जिस किसीसे भी गुण मिलजावे उसीसे गुणको ग्रहण करलेओ ॥ १ ॥

नैवात्र काव्यगुण एव तु चिन्तनीयो
ग्राह्यः परं गुणवता खलु सार एव ।

सिन्दूरचित्ररहिता भुवि रूपशून्या
पारं न किं नयति नौरिह गन्तुकामान्॥२॥

पदच्छेदः ।

न एव, अत्र, काव्यगुणः, एव, तु, चिन्तनीयः, ग्राह्यः, परम्, गुणवता, खलु, सारः, एव। सिन्दूरचित्ररहिता, भुवि, रूपशून्या, पारम्, न, किम्, नयति, नौः, इह, गन्तुकामान् ॥

पदार्थः ।

अत्र=गुरुमें	भुवि=पृथिवीतलमें
काव्यगुणः=काव्यके गुण	सिन्दूरचित्ररहिता=सिन्दूरकी चित्रकारीसे रहित और
एव तु=निश्चयकरके	रूपशून्या=रूपसे शून्य
नैव=नहीं	नौः=नौका
चिन्तनीयः=चिन्तन करने चाहिये	पारम्=पारको
खलु=निश्चय करके	गन्तुकामान्=जानेकी कामनावालोंको
गुणवता=गुणवान्से	इह=इस संसारमें
परम्=परम	किम्=क्या
सारः=सारवस्तुका	न नयति=पारको नहीं प्राप्त करतीहै?
एव=ही	
ग्राह्यः=ग्रहण करना योग्य है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं कि, किसी भी गुरुमें काव्यादिके गुणोंका चिन्तन नहीं करना कि, गुरुने काव्य, कोशआदिकोंको पढा है वा नहीं पढ़ा है, किन्तु गुणोंवाले गुरुमें जो सारवस्तु हो उसीका ग्रहण करलेना और सब असार वस्तुका त्याग कर देना उचित है. इसीमें एक दृष्टान्त कहते हैं—इसलोकमें जैसे सिन्दूरके चित्रोंवाली नौका नदीसे पार कर देती है तैसे ही सिन्दूरके चित्रोंसे रहित भी नौका नदीसे पार करदेती है । इसी प्रकार सारभूत गुणकी आकांक्षा करे चाहो उत्तम

जातिवालेसे मिले चाहो कनिष्ठ जातिवालेसे मिले वह गुण ही संसारसे पार करदेताहै दत्तात्रेयजीका यह तात्पर्य है कि, लकीरके फकीर मत बनो । कानमें फूँक लगवाकर किसी केभी पशु मत बनो, किन्तु गुणग्राही बनो और उत्तम गुणोंको धारण करो, क्योंकि विना ज्ञान वैराग्यादि गुणोंके धारण करनेसे पुरुष बंधनसे नहीं छूटताहै ॥ २ ॥

प्रयत्नेन विना येन निश्चलेन चलाचलम् ॥
ग्रस्तं स्वभावतः शान्तं चैतन्यं गगनोपमम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

प्रयत्नेन, विना, येन, निश्चलेन, चलाचलम् । ग्रस्तम्, स्वभावतः, शान्तम्, चैतन्यम्, गगनोपमम् ॥

पदार्थः ।

येन=जिस	ग्रस्तम्=ग्रसा है
निश्चलेन=निश्चलकरके	स्वभावतः=स्वभावसे ही
प्रयत्नेन=प्रयत्नसे	शान्तम्=शान्तरूप है
विना=विना ही	चैतन्यम्=चैतन्यस्वरूप है
चलाचलम्=चल अचल सब वह चेतन	गगनोपमम्=आकाशकी, उपमावाला है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जिस निश्चल आत्मा चेतनकरके विना प्रयत्नही संपूर्ण चल और अचलरूप जगत् ग्रसा है, वह स्वभावसे ही शान्त है, आकाशकी तरह स्थिर और व्यापक है सो चेतन मैं ही हूँ ॥ ३ ॥

अयत्नाच्चालयद्यस्तु एकमेव चराचरम् ।
सर्वगं तत्कथं भिन्नमद्वैतं वर्तते मम ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अयत्नात्, चालयत्, यः, तु, एकम्, एव, चराचरम् । सर्वगम्, तत्, कथम्, भिन्नम्, अद्वैतम्, वर्तते, मम ॥

पदार्थः ।

तु=पुनः फिर	सर्वगम्=वह सर्वगत है
यः=जो	अद्वैतम्=अद्वैत है
एकम्=एकही	मम=मुझसे
एव=निश्चय करके	भिन्नम्=भिन्न
अयत्नात्=विनाही यत्नसे	तत्=सो
चराचरम्=चर अचरको	कथम्=कैसे
चालयत्=चलायमान करता है	वर्तते= वर्तता है ?

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–कि जो एक ही व्यापक चेतन विना प्रयत्नके ही संपूर्ण चर अचर जगत्को चलायमान करता है वह सर्वगत भी है, सो मेरेसे भिन्न अद्वैतरूप हो करके कैसे वर्तता है ? अर्थात् नहीं वर्तता है । तात्पर्य यह है कि, यदि भिन्न होकर अद्वैतरूपसे वर्ते तब तो द्वैतकी प्राप्ति हो जावैगी । इसवास्ते वह भिन्न होकर अद्वैतरूपसे नहीं वर्तता है, किन्तु अभिन्न होकरके ही वह अद्वैतरूपसे वर्तता है ॥ ४ ॥

अहमेव परं यस्मात्सारासारतरं शिवम् ।
गमागमविनिर्मुक्तं निर्विकल्पं निराकुलम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अहम्, एव, परम्, यस्मात्, सारासारतरम्, शिवम् ।
गमागमविनिर्मुक्तम्, निर्विकल्पम्, निराकुलम् ॥

पदार्थः ।

अहम्=मैही	शिवम्=कल्याणस्वरूप हूँ
एव=निश्चयकरके	गमागमविनिर्मुक्तम्=और गमनागमनसे भी रहित हूँ और
यस्मात्=जिस प्रकृतिसे	निर्विकल्पम्=निर्विकल्प हूँ
परम्=सूक्ष्म हूँ और	निराकुलम्=कुलसे रहित हूँ
सारासारतरम्=सार असारसे भी रहित हूँ	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—मैं ही प्रकृतिसे सूक्ष्म हूँ, सार असारसे रहित हूँ; कल्याणरूप हूँ, गमनागमनसे रहित हूँ, और विकल्पसे भी रहित हूँ. अर्थात् मेरेमें द्वैत, अद्वैतका विकल्प भी नहीं बनता है, और कुलसे भी रहित हूँ ॥५॥

सर्वावयवनिर्मुक्तं तदहं त्रिदशार्चितम् ।
संपूर्णत्वान्न गृह्णामि विभागं त्रिदशादिकम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

सर्वावयवनिर्मुक्तम्, तत्, अहम्, त्रिदशार्चितम् ।
संपूर्णत्वात्, न गृह्णामि, विभागम्, त्रिदशादिकम् ॥

पदार्थः ।

तत् अहम्=सो मैं	सम्पूर्णत्वात्=सम्यक् पूर्ण होनेसे
सर्वावयव-निर्मुक्तम्=संपूर्ण अवयवोंसे रहित हूँ और	त्रिदशादिकम्=देवतादिकोंके
त्रिदशार्चितम्=देवताओंसे भी पूजित हूँ	विभागम्=विभागको
	न गृह्णामि=मैं ग्रहण नहीं करता हूँ

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं कि, सो सच्चिदानन्दरूप मैं निरवयव हूँ, अर्थात् अवयव रहित हूँ और सब देवताभी मेरा पूजन करतेहैं । सबमें पूर्ण होनेसे देवता आदिकोंमें भी मैं ही हूँ. इसी वास्ते देवताओंके साथ भी मेरा विभाग अर्थात् भेद नहीं है किन्तु अभेद ही है ॥ ६ ॥

प्रमादेन न सन्देहः किं करिष्यामि वृत्तिमान् ।
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते बुद्बुदाश्च यथा जले ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

प्रमादेन, न, सन्देहः, किम्, करिष्यामि, वृत्तिमान् ।
उत्पद्यन्ते, विलीयन्ते, बुद्बुदाः, च, यथा, जले ॥

पदार्थः ।

प्रमादेन=प्रमादकरके
वृत्तिमान्=अन्तःकरणकी वृत्तियोंवाला
किम्=क्या
करिष्यामि=मैं करता हूँ ? किन्तु नहीं
यथा=जिसप्रकार
जले=जलमें
बुद्बुदाः=बुल्बुले
उत्पद्यन्ते=उत्पन्न होतेहैं
च=और
विलीयन्ते=लय होजाते हैं इसी प्रकार अन्तःकरणकी वृत्तियां भी उत्पन्न होती हैं । लय होती हैं
न सन्देहः=इसमें संदेह नहीं है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—अन्तःकरणकी वृत्तियोंको मैं प्रमादकरके उत्पन्न नहीं करता हूँ, किन्तु जैसे जलमें बुल्बुले आपसे आप उत्पन्न होते हैं, और फिर उसीमें लय होजाते हैं, इसीप्रकार अन्तःकरणकी वृत्तियाँ भी आपसे आप उत्पन्न होती हैं, और फिर उसीमें लय भी होजाती हैं, इसमें किसी तरहका सन्देह नहीं है, मैं तो इनका साक्षी हूँ ॥ ७ ॥

महदादीनि भूतानि समाप्यैवं सदैव हि ।
मृदुद्रव्येषु तीक्ष्णेषु गुडेषु कटुकेषु च ॥ ८ ॥
कटुत्वं चैव शैत्यत्वं मृदुत्वं च यथा जले ।
प्रकृतिः पुरुषस्तद्वदभिन्नं प्रतिभाति मे ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

महदादीनि, भूतानि, समाप्य, एवम्, सदा, एव हि । मृदुद्रव्येषु, तीक्ष्णेषु, गुडेषु, कटुकेषु, च ॥ कटुत्वम्, च, एव, शैत्यत्वम्, मृदत्वम्, च, यथा, जले । प्रकृतिः पुरुषः, तद्वत, अभिन्नम्, प्रतिभाति, मे ॥

पदार्थः ।

महदादीनि=महत्तत्त्व आदि	शैत्यत्वम्=शीतता
भूतानि=भूतोंको	च=और
सदैव=सर्वकाल	मृदुत्वम्=कोमलता
हि=निश्चयकरके	यथा=जिस प्रकार
एवम्=इसप्रकार	जले=जलमें भिन्न प्रतीत होतेहैं
समाप्य=समाप्त करै	तद्वत्=तैसे ही
मृदुद्रव्येषु=मृदुद्रव्योंमें	प्रकृतिः=प्रकृति और
च=और	पुरुषः=पुरुष
तीक्ष्णेषु=तीक्ष्ण द्रव्योंमें	मे=मुझको
गुडेषु=गुडमें	अभिन्नम्=अभेदही
कटुकेषु=कटुद्रव्योंमें	प्रतिभाति=भान होताहै
कटुत्वम्=कटुरस	
चैव=और निश्चयकरके	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहै—जैसे मृदु अर्थात् कोमल द्रव्योंमें कोमलता उनसे भिन्न करके भान नहीं होती है, और मिरचा आदिक तीक्ष्णद्रव्योंमें तीक्ष्णता, और मधुर गुडादिक द्रव्योंमें माधुर्यता, और नीमादिक कटुद्रव्योंमें कटुता, उनसे भिन्न करके भान नहीं होती है इसीप्रकार जैसे जलमें शीतता और कोमलता जलसे भिन्न करके प्रतीत नहीं होती है, अर्थात् अपने २ द्रव्यके गुण अपने २ द्रव्यमें ही लीन हो जातेहैं, इसी प्रकार महत्तत्त्वसे आदि लेकर स्थूलभूतों पर्यन्त इनको भी अपने कारणोंमें लय करके बाकी जो संपूर्ण तत्त्वोंका कारणीभूत प्रकृति है, उसका भी पुरुषके साथ हमको भेद किसी प्रकारसे भी प्रतीत नहीं होताहै, क्योंकि प्रकृतिको चेतनकी शक्ति मानाहै, शक्तिका शक्तिवालेसे भेद किसीप्रकारसे भी नहीं होसकताहै । जैसे अग्निकी शक्ति अग्निसे भिन्न होकर प्रतीत नहीं होतीहै किन्तु कार्यद्वारा अनुमान की जातीहै।इसीप्रकार चेतनकी शक्तिभी चेतनसे भिन्न नहीं भान होतीहै, किन्तु चेतनसे तिसका भेद नही है अर्थात् चेतनरूपही है ८-९

सर्वाख्यारहितं यद्यत्सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं परम् ।
मनोबुद्धीन्द्रियातीतमकलङ्कं जगत्पतिम् ॥ १० ॥

ईदृशं सहजं यत्र अहं तत्र कथं भवेत् ।
त्वमेव हि कथं तत्र कथं तत्र चराचरम् ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

सर्वाख्यारहितम्, यद्रत, सूक्ष्मात्, सूक्ष्मतरम्, परम् ।
मनोबुद्धीन्द्रियातीतम्, अकलङ्कम्, जगत्पतिम् ॥
ईदृशम्, सहजम्, यत्र, अहम्, तत्र, कथम्, भवेत् ।
त्वम्, एव, हि, कथम्, तत्र, कथम्, तत्र, चराचरम् ॥

पदार्थः ।

यद्रत्=जिसवास्ते	सहजम्=स्वभावसे
सर्वाख्या-रहितम् } आत्मा संपूर्ण संज्ञासे रहित है इसीवास्ते	यत्र=जिसमें विद्यमान है
	तत्र=तिसमें
सूक्ष्मात्=सूक्ष्मसे भी	अहम्=मैं
सूक्ष्मतरम्=अतिसूक्ष्म है	कथम्=किस प्रकार
परम्=उत्कृष्ट है	भवेत्=कहना बनता है और
मनोबुद्धीन्द्रियातीतम् } मन बुद्धि और इन्द्रियोंका अविषय है फिर	त्वम् एव हि=तू निश्चयकरके
	कथम्=कैसे बनता है और
अकलंकम्=कलंकसे रहित है	तत्र=तिसमें फिर
जगत्पतिम्=जगत्का पति है	चराचरम्=चर अचर
ईदृशम्=इस प्रकारके गुण	कथम्=कैसे बनता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वह ब्रह्मचेतन जिसवास्ते संपूर्ण नामादिक संज्ञासे रहित है, इसीवास्ते वह सबसे सूक्ष्म जोकि प्रकृति है, उससे भी अतिसूक्ष्म और श्रेष्ठ है, और मन बुद्धि तथा इन्द्रियोंका भी वह विषय नहीं है फिर वह कलंकसे अर्थात् उपाधिसे भी रहित है, संपूर्ण जगत्का स्वामी है । इसप्रकारका जिसका स्वभावसे ही स्वरूप है तिस चेतन आत्मामें "अहम्" मैं और "त्वम्" तू यह कथन किसप्रकारसे बनता है ? अर्थात् अहम्, त्वम्, आदि

भेदोंका कथन तिसमें नहीं बनता है। और यह चराचररूप जगत् भी तिसमें कैसे बनता है किन्तु किसीप्रकारसे भी नहीं बनता है ॥ १० ॥ ११ ॥

गगनोपमं तु यत्प्रोक्तं तदेव गगनोपमम् ।
चैतन्यं दोषहीनं च सर्वज्ञं पूर्णमेव च ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

गगनोपमम्, तु, यत्, प्रोक्तम्, तत्, एव, गगनोपमम् ।
चैतन्यम्, दोषहीनम्, च, सर्वज्ञम्, पूर्णम्, एव, च ॥

पदार्थः ।

तु यत्=पुनः जोकि	दोषहीनम्=दोषोंसे हीन है
गगनोपमम्=आकाशकी उपमावाला	च=और
प्रोक्तम्=कथनकियाहै	सर्वज्ञम्=सर्वज्ञ भी है
तत् एव=सोई निश्चयकरके	च एव=और निश्चय करके
गगनोपमम्-गगनकीउपमावालाहै और	पूर्णम्=पूर्ण भी है
चैतन्यम्=वह चेतन है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--जोकि गगनकी उपमावाला कहाहै वही गगनकी उपमावाला है, उससे भिन्न दूसरा गगन कोई भी गगनकी उपमावाला नहीं है, सो चेतनसे भिन्न दूसरा चेतन भी चेतनकी उपमावाला नहीं है । सो चेतन है, दोषसे रहित है, वही सर्वज्ञ और पूर्णभी है ॥ १२ ॥

पृथिव्यां चरितं नैव मारुतेन च वाहितम् ।
वारिणा पिहितं नैव तेजोमध्ये व्यवस्थितम् ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

पृथिव्याम्, चरितम्, न, एव, मारुतेन, च, वाहितम् ॥
वारिणा, पिहितम्, नैव, तेजोमध्ये, व्यवस्थितम् ॥

पदार्थः ।

पृथिव्याम्=पृथिवीमें वह चेतन
चारितम्=गमन
एव=निश्चयकरके
न=नहीं करताहै
मारुतेन=मारुत जो है सो
वाहितम्=वाहन तिसको
न च=नहीं करता है
वारिणा=जलकरके
पिहितम्=आच्छादित वह
नैव=नहीं है और
तेजोमध्ये=तेजके मध्यमें
व्यवस्थितम्=स्थितभी है, और तेज तिसको जला भी नहीं सक्ताहै

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—वह चेतन आत्मा पृथिवीमें चलता नहीं वायु उसको ले नहीं जासकता, न पानी ही उसको ढाँक सकता है। वह तेजके वीचमें स्थित रहता है ॥ १३ ॥

आकाशं तेन संव्याप्तं न तद्व्याप्तं च केनचित् ॥
स बाह्याभ्यन्तरं तिष्ठत्यवच्छिन्नं निरन्तरम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ।

आकाशम्, तेन, संव्याप्तम्, न, तत्, व्याप्तम्, च, केनचित्। स बाह्याभ्यन्तरम्, तिष्ठति, अवच्छिन्नम्, निरन्तरम् ॥

पदार्थः ।

तेन=तिस चेतनकरके
आकाशम्=आकाश
संव्याप्तम्=सम्यक् व्याप्त है
च तत्=और सो चेतन
केनचित्=किसीकरके भी
न व्याप्तम्=नहीं व्याप्त है
सः=सो व्यापक चेतन
अवच्छिन्नम्=व्यवधानसे रहित
निरन्तरम्=एकरस
बाह्याभ्यन्तरम्=सबके वाहर और भीतर
तिष्ठति=स्थित है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—उस चेतनसे आकाश अच्छे प्रकारसे व्याप्त है और वह किसीसे व्याप्त नहीं है। वह सर्वव्यापक बाहर भीतर सर्वत्र व्यवधानसे रहित सदा स्थित रहताहै, आकाशका कोई अन्त नहीं पासकता यह इतना माळूम

पडताहै कि, इसकी कोई सीमा नहीं है, कि, कहांतक यह है । इसका अनुमान भी नहीं होसकता ऐसा आकाश भी उस परमात्मासे व्याप्त है अर्थात् सर्वत्र आत्मा हीं है ॥ १४ ॥

सूक्ष्मत्वात्तदहश्यत्वान्निर्गुणत्वाच्च योगिभिः ॥
आलम्बनादि यत्प्रोक्तं क्रमादालम्बनं भवेत् ॥ १५ ॥

पदच्छेदः ।

सूक्ष्मत्वात्, तत्, अदृश्यत्वात्, निर्गुणत्वात, च, योगिभिः।
आलम्बनादि, यत्, प्रोक्तम्, क्रमात्, आलम्बनम्, भवेत्॥

पदार्थः ।

योगिभिः=योगियोंने	क्रमात्=क्रमसे
यत्=जो चेतनका	भवेत्=होताहै
आलम्बनादि=आलम्बनादि	तत् सूक्ष्मत्वात्=तिस सूक्ष्म होनेसे
प्रोक्तम्=कहाहै सो	अदृश्यत्वात्=अदृश्य होनेसे
आलम्बनम्=आलम्बन	निर्गुणत्वात्=निर्गुण होनेसे

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—योगियोंने अर्थात् जीवन्मुक्त ज्ञानवानोंने जिस चेतनब्रह्मका आश्रयण करना कहाहै सो एकवारगी नहीं होताहै किन्तु क्रमसेही होता है । प्रथम स्थूलपदार्थमें मनका निरोध कियाजाताहै फिर धीरे २ उससे सूक्ष्ममें फिर उससे सूक्ष्ममें इसरीतिसे धीरे २ तिसका साक्षात्कार होकर ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति भी होजातीहैं क्योंकि वह चेतन अतिसूक्ष्म है अदृश्य है निर्गुण है इसवास्ते इसका आलंबन एकवारगी नहीं होताहै, किन्तु क्रमसे और युक्तिसे होताहै ॥ १५ ॥

योगियोंने जो आलम्बनका क्रम कहाहै सो क्रम अत्र इस श्लोकमें दिखातेहैं:—

सतताऽभ्यासयुक्तस्तु निरालम्बो यदा भवेत् ।
तल्लयाल्लीयते नान्तर्गुणदोषविवर्जितः ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ।

सतताभ्यासयुक्तः, तु, निरालम्बः, यदा, भवेत् ।
तल्लयात्, लीयते, न, अन्तः, गुणदोषविवर्जितः ॥

पदार्थः ।

यदा तु=जिसकालमें पुनः	गुणदोष- विवर्जितः =गुण और दोषोंसे रहित होताहै तिसी कालमें
सतताभ्या- सयुक्तः =निरन्तर अभ्यास करके युक्त हुआ २	तल्लयात्=चित्तके लय करनेसे
निरालम्बः=निरालम्ब	लीयते=लय होजाताहै
भवेत्=होताहै और	न=विना इसके नहीं होता
अन्तः=भीतरसे	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जो पुरुष प्रथम निरालम्ब होकर अर्थात् किसी भी देवता आदिकको आश्रयण न करके केवल चेतनको आश्रयण करके निरन्तर ही अभ्यास करके युक्त होताहै और अविद्याकृत गुणों और दोषोंसे रहित होजाता है तब इसका चित्त लय होजाताहै चित्तके लय होजानेसे स्वयं भी ब्रह्ममें. ही लीन हो जाताहै ॥ १६ ॥

विषविश्वस्य रौद्रस्य मोहमूर्च्छाप्रदस्य च ।
एकमेव विनाशाय ह्यमोघं सहजामृतम् ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ।

विषविश्वस्य, रौद्रस्य, मोहमूर्च्छाप्रदस्य, च । एकम्, एव, विनाशाय, हि, अमोघम्, सहजामृतम् ॥

पदार्थः ।

विषविश्वस्य=विषरूपी विषयके	सहजा- मृतम् =सहज ही अमृत है फिर कैसा वह विषय है
विनाशाय=नाशके लिये	रौद्रस्य=बडा भयानक
एव हि=निश्चयकरके	च=और
एकम्=एक ही	मोहमूर्च्छा- प्रदस्य =मोह तथा मूर्च्छाको देनेवाला है
अमोघम्=अमोघ और	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहै—जगत्‌रूपी एक बडाभारी विष है. यह विष भयानक और मोहमूर्च्छाके देनेवाला भी है । इसके नाशके लिये एक ही अमोघ अर्थात् यथार्थ और सहज ही अमृत है, सो आत्मज्ञानरूपी एक अमृतहै क्योंकि विना आत्मज्ञानके यह विष दूर नहीं होता है ॥ १७ ॥

अव उसी अमृतको दिखातेहैं:—

भावगम्यं निराकारं साकारं दृष्टिगोचरम् ।
भावाभावविनिर्मुक्तमन्तरालं तदुच्यते ॥ १८ ॥

पदच्छेदः ।

भावगम्यम्, निराकारम्, साकारम्, दृष्टिगोचरम् ।
भावाभावविनिर्मुक्तम्, अन्तरालम्, तत्, उच्यते ॥

पदार्थः ।

निराकारम्=निराकार जो चेतन है सो
भावगम्यम्=चित्तसे ही जानाजाता है और जो कि
साकारम्=साकार है वह
दृष्टिगोचरम्=दृष्टिका विषय है
भावाभावविनिर्मुक्तम्=भाव अभावसे जो रहित है
तत्=सो
अन्तरालम्=अन्तराल ही
उच्यते=कहाजाता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं— जोकि निराकार व्यापक चेतन है सो केवल चित्तकरके ही जानाजाता है क्योंकि वह इन्द्रियोंका विषय नहीं है, और जोकि साकार है वह दृष्टिका विषय है, इतना ही निराकार साकारका फरक है, फिर जोकि भाव पदार्थसे और अभावरूपसे भी रहित है सो अन्तराल ही कहा जाताहै ॥ १८ ॥

बाह्यभावं भवेद्विश्वमन्तः प्रकृतिरुच्यते ।
अन्तरादन्तरं ज्ञेयं नारिकेलफलाम्बुवत् ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ।

बाह्यभावम्, भवेत्, विश्वम्, अन्तः, प्रकृतिः, उच्यते ।
अन्तरात्, अन्तरम्, ज्ञेयम्, नारिकेलफलाम्बुवत् ॥

पदार्थः ।

बाह्यभावम्=बाहर जितना कि भाव पदार्थ है	अन्तरात्=अन्तर प्रकृतिसे भी
विश्वम्=सो जगत्	अन्तरम्=भीतर
भवेत्=होताहै और	ज्ञेयम्=वह ब्रह्म जाननेके योग्य है
अन्तः=बाह्यभावके भीतर	नारिकेलफलाम्बुवत्=जैसे नारिकेलफलके अन्दर जल होता है
प्रकृतिः=प्रकृति	
उच्यते=कही जाती है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—बाहर जो कुछ दिखाताहै यह सब स्थूलभाव पदार्थ विश्व कहाजाता है और इसके भीतर इसका कारण जो है उसका नाम प्रकृति है उस सूक्ष्मप्रकृतिके भीतर और प्रकृतिसे भी सूक्ष्म वह चेतन ब्रह्म व्यापक जाननेके योग्य है इसीमें दृष्टान्तको कहतेहैं । जैसे नारियलके फलका ऊपरका बकला बडा कडा होता है और तिसके भीतरकी गिरी बकलेसे सूक्ष्म होती है उस गिरीसे भीतर सूक्ष्म उसके भीतर जल रहता है । इसीप्रकार दार्ष्टान्तमें भी घटालेना ॥ १९ ॥

भ्रान्तिज्ञानं स्थितं बाह्ये सम्यग्ज्ञानं च मध्यगम् ॥
मध्यान्मध्यतरं ज्ञेयं नारिकेलफलाम्बुवत् ॥ २० ॥

पदच्छेदः ।

भ्रान्तिज्ञानम्, स्थितम्, बाह्ये, सम्यग्ज्ञानम्, च, मध्यगम् । मध्यात्, मध्यतरम्, ज्ञेयम्, नारिकेलफलाम्बुवत् ॥

पदार्थः ।

भ्रान्तिज्ञानम्=भ्रान्तिज्ञान	मध्यात्=मध्यसे भी
बाह्ये=बाहरके पदार्थोंमें	मध्यतरम्=अतिमध्य
स्थितम्=स्थित है	ज्ञेयम्=जाननेके योग्य है
च=और	नारिकेलफलाम्बुवत्=नारियलके फलके जलकी तरह
सम्यग्ज्ञानम्=यथार्थ ज्ञान	
मध्यगम्=अन्तर है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—बाहरके प्रपंचमें तो भ्रान्तिज्ञान होताहै और उसके अन्तर अर्थात् मध्यमें स्थितका जो ज्ञान है सो समीचीन ज्ञान है जैसे नारियलके फलके भीतर जल रहता है इसी प्रकार उसके भीतर सूक्ष्म आत्मा जाननेके योग्य है उसीके ज्ञानसे जीवन्मुक्त होताहै ॥ २० ॥

पौर्णमास्यां यथा चन्द्र एक एवातिनिर्मलः ॥
तेन तत्सदृशं पश्येद्द्विधा दृष्टिविपर्ययः ॥ २१ ॥

पदच्छेदः ।

पौर्णमास्याम्, यथा, चन्द्रः, एकः, एव, अतिनिर्मलः ।
तेन, तत्सदृशं, पश्येत, द्विधा, दृष्टिविपर्ययः ॥

पदार्थः ।

पौर्णमास्याम्=पौर्णमासीमें	तेन=तिसीकारणसे
यथा=जिसप्रकार	तत्सदृशम्=तिस चन्द्रमाके तुल्य ही
एकः=एक ही	पश्येत्=आत्माको भी निर्मल देखे
चन्द्रः=चन्द्रमा	द्विधा=दो प्रकारका
एव=निश्चयकरके	दृष्टिविपर्ययः=दृष्टिविपर्यय ज्ञान है
अतिनिर्मलः=अतिनिर्मल होताहै	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जैसे पूर्णमासीका जो चन्द्रमा है सो एक ही अतिनिर्मल दिखाई पडताहै इसीप्रकार आत्मा भी अति निर्मल और एक है। चन्द्रमाकी तरह एक ही आत्माको शुद्ध देखे । जैसे नेत्रमें रोग होनेसे दो चन्द्रमा देख पडते हैं सो विपर्यय ज्ञान है अर्थात् भ्रमज्ञान है क्योंकि वास्तवसे चन्द्रमा दो नहीं हैं किन्तु एक ही है इसीप्रकार संपूर्ण ब्रह्माण्डभरमें आत्मा भी एक ही है आत्मामें जो द्वैतकी कल्पना है, सो भ्रमज्ञान है ॥ २१ ॥

अनेनैव प्रकारेण बुद्धिभेदो न सर्वगः ।
दाता च धीरतामेति गीयते नामकोटिभिः ॥ २२ ॥

पदच्छेदः।

अनेन, एव, प्रकारेण, बुद्धिभेदः, न, सर्वगः।
दाता, च, धीरताम्, एति, गीयते, नामकोटिभिः॥

पदार्थः।

अनेन=इसी पूर्वोक्त	च=और
प्रकारेण=प्रकारसे	दाता=देनेवाला
एव=निश्चयकरके	धीरताम्=धीरताको
बुद्धिभेदः=ज्ञानका भेद	एति=प्राप्त होताहै
सर्वगः=सर्वगतमें	नामकोटिभिः=कोटि नामों करके
न=नहीं होताहै	गीयते=गाया जाताहै

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-इसी पूर्वोक्त प्रकार करके सर्वगत चेतनमें किसीप्रकारसे भी भेदकी कल्पना नहीं बन सकती है जो विद्वान् जिज्ञासुओंके प्रति उस ब्रह्मचेतनके अभेद ज्ञानका दान करताहै वह धैर्यताको प्राप्त होताहै और करोडों नामों करके गायन किया जाताहै अर्थात् जिज्ञासुजन तिसको करोडों नामों करके स्तुति करतेहैं॥ २२॥

गुरुप्रज्ञाप्रसादेन मूर्खो वा यदि पण्डितः।
यस्तु सम्बुध्यते तत्त्वं विरक्तो भवसागरात्॥ २३॥

पदच्छेदः।

गुरुप्रज्ञाप्रसादेन, मूर्खः, वा, यदि, पंडितः।
यः, तु, सम्बुध्यते, तत्त्वम्, विरक्तः, भवसागरात्॥

पदार्थः।

गुरुप्रज्ञाप्रसादेन=गुरुकी बुद्धिकी प्रसन्नताकरके	तु यः=पुनः जो
मूर्खः=मूर्ख हो	तत्त्वम्=आत्मतत्त्वको
वा=अथवा	सम्बुध्यते=जानलेता है वह पुरुष
यदि=यदि	भवसागरात्=संसाररूपी समुद्रसे
पण्डितः=पण्डित हो	विरक्तः=विरक्त
	(भवति)=विरक्त होजाता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—मूर्ख हो अथवा पण्डित हो, गुरुकी कृपासे जो आत्मतत्त्ववस्तुको यथार्थ रूपसे जानलेता है वह शीघ्र ही संसाररूपी समुद्रसे विरक्त अर्थात् उपराम युक्त होकर जन्म मरणसे छूटजाता है, फिर संसारचक्रमें नहीं आता है ॥ २३ ॥

रागद्वेषविनिर्मुक्तः सर्वभूतहिते रतः ।
दृढबोधश्च धीरश्च स गच्छेत्परमं पदम् ॥ २४ ॥

पदच्छेदः ।

रागद्वेषविनिर्मुक्तः, सर्वभूतहिते, रतः । दृढबोधः, च, धीरः, च, सः, गच्छेत्, परमम्, पदम् ॥

पदार्थः ।

रागद्वेषविनिर्मुक्तः=जो राग द्वेषसे रहित है	दृढबोधः=जिसको दृढ बोध है
च=और	धीरः=धीर है
सर्वभूतहिते रतः=संपूर्ण भूतोंके हितमें प्रीतिवाला है	सः=विद्वान्
च=और	परमम्=परम
	पदम्=पदको
	गच्छेत्=गमन करताहै ।

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं—सोई विद्वान् अर्थात् ज्ञानवान् परमपदको प्राप्त होता है जोकि रागद्वेपादिकोंसे रहित है और संपूर्ण भूतोंके हितकी ही इच्छा करताहै किसीके भी अहितकी जो इच्छा नहीं करताहै फिर जिसको आत्माका भी दृढ बोध है अर्थात् यथार्थ ज्ञान है और धैर्यतावाला भी है वही परमपदको प्राप्त होता है दूसरा नहीं ॥ २४ ॥

घटे भिन्ने घटाकाश आकाशे लीयते यथा ।
देहाभावे तथा योगी स्वरूपे परमात्मनि ॥ २५ ॥

पदच्छेदः ।

घटे, भिन्ने, घटाकाशः, आकाशे, लीयते, यथा ।
देहाभावे, तथा, योगी, स्वरूपे, परमात्मनि ॥

पदार्थः ।

घटे भिन्ने=घटके नाश होनेपर
यथा=जैसे
घटाकाशः=घटाकाश
आकाशे=महाकाशमें
लीयते=लय होजाताहै
तथा=तैसे ही
देहाभावे=देहके नाश होनेपर
योगी=जीवन्मुक्त
परमात्मनि=परमात्माके
स्वरूपे=स्वरूपमें लीन होजाताहै

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जबतक घटरूपी उपाधि बनी है तबतक घटाकाशका भी महाकाशके साथ भेद प्रतीत होताहै । उपाधिके नाश होजानेपर जैसे घटाकाशका महाकाशके साथ अभेद होजाता है तैसेही लिंगशरीररूपी उपाधिके नाश होजानेपर ज्ञानवान्का आत्मा भी परमात्मामें ही लीन होजाताहै अर्थात् दोनोंका अभेद होजाता है ॥ २५ ॥

उक्तेयं कर्मयुक्तानां मतिर्यान्तेऽपि सा गतिः ।
न चोक्ता योगयुक्तानां मतिर्यान्तेऽपि सा गतिः॥२६॥

पदच्छेदः ।

उक्ता, इयम्, कर्मयुक्तानाम्, मतिः, या, अन्ते, अपि, सा, गतिः । न, च, उक्ता, योगयुक्तानाम्, मतिः, या अन्ते, अपि, सा, गतिः ॥

पदार्थः ।

कर्मयुक्तानाम्=कर्मियोंके लिये	योगयुक्तानाम्=जीवन्मुक्त ज्ञानियोंके लिये
इयम्=यह	न च उक्ता=नहीं कहाहै
उक्ता=कहाहै कि,	या=जैसी
या=जसी	अन्ते=अन्तमें
अन्ते=अन्तमें	अपि=निश्चय करके
मतिः=बुद्धि होती है	मतिः=मति होती है
अपि=निश्चयकरके	सा गतिः=सोई गति होती है
सा गतिः=वैसी गति होती है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जिस वार्तामें जिसका रात्रिदिन अधिक अभ्यास होता है उसीके दृढ संस्कार तिसके भीतर होते हैं और अन्तसमयमें अर्थात् मरण-कालमें भी वही संस्कार उद्भूत होकर उसको उसी गतिको प्राप्त कर देतेहैं तात्पर्य यह है कि, जिसका कि जिसवस्तुमें अति प्रेम होताहै, स्त्रीमें या पुत्रमें या धनमें या पशुपक्षी आदिकोंमें अन्तसमयमें भी उसका मन उसी तरफ चला जाताहै और वह मरकरके उसी योनिमें जन्मताहै सो यह अन्तवाली मतिकी गति कर्मियोंके लिये कहा है, जीवन्मुक्त ज्ञानवालोंके लिये यह अन्तवाली मतिकी गति नहीं कहीहै क्योंकि योगी लोग तो सदैव ब्रह्मके ही चिन्तनमें रहते हैं इसीवास्ते अन्तसमयमें भी उनकी मति ब्रह्मचिन्तनको ही करती है और वह मरकरके ब्रह्ममें ही लीन भी होजातेहैं ॥ २६ ॥

या गतिः कर्मयुक्तानां सा च वागिन्द्रियाद्वदेत् ।
योगिनां या गतिः क्वापि ह्यकथ्या भवतार्जिता॥२७

पदच्छेदः ।

या, गतिः, कर्मयुक्तानाम्, सा, च, वागिन्द्रियात्, वदेत् । योगिनाम्, या, गतिः, क्वापि, हि, अकथ्या, भवता, अर्जिता ॥

पदार्थः ।

कर्मयुक्तानाम्=कर्मयोगियोंकी	या गतिः=जो गति
या गतिः=जो गति शास्त्रोंमें कहीहै	हि=निश्चयकरके
सा=सो गति	भवता=तुमने
वागिन्द्रियात्=वाणी इन्द्रिय करके	अर्जिता=संग्रह की है
वदेत्=कही जातीहै	क्वापि=कहीं भी वह
च=और	अकथ्या=कथन करनेके योग्य नहीं है
योगिनाम्=योगियोंकी	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं–कर्मयोगियोंकी जो स्वर्ग और नरककी प्राप्तिरूपी गति है सो तो शास्त्रोंमें कथन की है और वागिन्द्रिय भी उसको कथन करसकती है और आत्मज्ञानियोंकी जो गति आपलोगोंने शास्त्रोंमें देखीहै वह मन वाणी करके भी कथन नहीं की जातीहै ॥ २७ ॥

एवं ज्ञात्वा त्वमुं मार्गं योगिनां नैव कल्पितम् ।
विकल्पवर्जनं तेषां स्वयं सिद्धिः प्रवर्तते ॥ २८ ॥

पदच्छेदः ।

एवम्, ज्ञात्वा, तु, अमुम्, मार्गम्, योगिनाम्, न, एव, कल्पितम्।विकल्पवर्जनम्, तेषाम्, स्वयम्, सिद्धिः,प्रवर्तते॥

पदार्थः ।

एवं=इस प्रकारसे	सिद्धिः=सिद्धि
तेषाम्=उन पूर्वोक्त	प्रवर्तते=प्रवृत्त होतीहै
योगिनाम्=योगियोंके	तु=पुनः फिर वह
विकल्पवर्जनम्=विकल्पसे रहित	एव=निश्चयकरके
अमुम्=इस पूर्वोक्त	न कल्पितम्=कर्मियोंके मार्गकी तरह कल्पित नहीं है
मार्गम्=मार्गको	
ज्ञात्वा=जानकरके	
स्वयम्=आपसे आप	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—ज्ञानयोगियोंका जो मार्ग पूर्व कहाहै सो कर्मियोंके मार्गकी तरह कल्पनासे रहित है अर्थात् जैसे कर्मियोंका मार्ग मिथ्या और पुनरावृत्तिवाला है तैसे नहीं है । जो विद्वान् इसप्रकार जानकरके ज्ञानयोगियोंके मार्गमें प्रवृत्त होताहै उसमें आपसे आप सिद्धि प्रवृत्त होतीहै और वह फिर संसारबंधनसे मुक्त भी होजाता है ॥ २८ ॥

तीर्थे वान्त्यजगेहे वा यत्र कुत्र मृतोऽपि वा ।
न योगी पश्यते गर्भं परे ब्रह्मणि लीयते ॥ २९ ॥

पदच्छेदः ।

तीर्थे, वा, अन्त्यजगेहे, वा, यत्र, कुत्र, मृतः, अपि, वा । न, योगी, पश्यते, गर्भम्, परे, ब्रह्मणि, लीयते ॥

पदार्थः ।

योगी=आत्मज्ञानी
तीर्थे=तीर्थमें
वा=अथवा
अन्त्यजगेहे=चाण्डालके गृहमें
वा=अथवा
यत्र कुत्र=जहाँ कहीं
मृतः=मरनेपर
गर्भम्=गर्भको
न पश्यते=नहीं देखताहै
अपि=निश्चयकरके
परे=उत्कृष्ट
ब्रह्मणि=ब्रह्ममें ही
लीयते=लय भावको प्राप्त होता है ।

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जीवन्मुक्त ज्ञानवान् चाहो किसी तीर्थपर शरीरका त्याग करदे अथवा चांडालके घरमें शरीरका त्याग करदे अथवा जहाँ कहाँ अर्थात् जलमें, थलमें, अन्तरिक्षमें, रास्ता वगैरहमें शरीरका त्याग करदे तो भी वह फिर कभी मूर्खकी तरह माताके गर्भमें नहीं आताहै, किन्तु ब्रह्ममें ही लीन होजाताहै ॥ २९ ॥

सहजमजमचिन्त्यं यस्तु पश्येत्स्वरूपं
घटति यदि यथेष्टं लिप्यते नैव दोषैः ।
सकृदपि तदभावात्कर्म किंचिन्न कुर्या-
त्तदपि न च विबद्धः संयमी वा तपस्वी ॥२०॥

पदच्छेदः ।

सहजम्, अजम्, अचिन्त्यम्, यः, तु, पश्येत्, स्वरूपम्, घटति, यदि, यथा, इष्टम्, लिप्यते, न, एव, दोषैः । सकृत्, अपि, तदभावात्, कर्म, किंचित्, न, कुर्यात्, तत्, अपि, न, च, विबद्धः, संयमी, वा, तपस्वी ॥

पदार्थः ।

तु=पुनः फिर
यः=जो विद्वान्
सहजम्=स्वाभाविक
अजम्=जन्मसे रहित
अचिन्त्यम्=मन वाणीके अविषय
स्वरूपम्=स्वरूपको
सकृत्=एकवार भी
अपि=निश्चय करके
पश्येत्=देखे और
यदि=यदि वह
यथेष्टम्=यथेष्ट चेष्टाको
घटति=करताहै तो
दोषैः=दोषोंकरके

नैव=नहीं
लिप्यते=लिप्त होताहै
तदभावात्=दोषोंका अभाव होजानेसे
किंचित्=किञ्चित्
कर्म=कर्मको
न कुर्यात्=नभी करै
तदपि=तब भी
संयमी=संयमी
वा=अथवा
तपस्वी=तपस्वी
विबद्धः=बद्ध
न च=नहीं होताहै

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं–जो विद्वान् स्वभावसे ही अज और अचिन्त्य आत्माके स्वरूपको एकवार भी देखलेताहै वह यथेष्ट चेष्टाको करनेसे भी अर्थात् शास्त्रसंमत अथवा शास्त्रविरुद्ध चेष्टाके करनेसे भी दोषोंकरके कदापि भी लिपायमान नहीं होताहै । जबकि, तिसमें कोई भी दोष नहीं रहताहै तब फिर वह यदि किसी भी कर्मको न करै चाहे वह संयमी हो, अथवा तपस्वी हो, फिर वह किसीप्रकारसे भी बंधायमान नहीं होताहै ॥ ३० ॥

निरामयं निष्प्रतिमं निराकृतिं
निराश्रयं निर्वपुषं निराशिषम् ।
निर्द्वन्द्वनिर्मोहमलुप्तशक्तिकं
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३१ ॥

पदच्छेदः ।

निरामयम्, निष्प्रतिमम्, निराकृतिम्, निराश्रयम्, निर्वपुषम्, निराशिषम् । निर्द्वन्द्वनिर्मोहम्, अलुप्तशक्तिकम्, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः ।

तम्=विद्वान् तिस
आत्मानम्=आत्माको
उपैति=प्राप्त होताहै कैसे आत्माको
ईशम्=जगत्के स्वामीको
शाश्वतम्=नित्यको
निरामयम्=रोगसे रहितको
निष्प्रतिमम्=प्रतिमासे रहितको
निराकृतिम्=निराकृतिको
निराश्रयम्=निराश्रयको
निर्वपुषम्=शरीरसे रहितको
निराशिषम्=इच्छासे रहितको
निर्द्वन्द्वनिर्मोहम्=रागद्वेषसे और मोहसे रहितको
अलुप्तशक्तिकम्=विद्यमान शक्तिवालेको

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—ज्ञानवान् उस आत्माको प्राप्त होता है जो कि संपूर्ण जगत्का स्वामी है, ईश्वर है । फिर वह कैसा है ? नित्य है, नाशसे रहित है, रोगसे रहित है, प्रतिमासे अर्थात् मूर्तिसे रहित है, आकारसेभी रहित है और संसारमें जितनेक स्थूलपदार्थ हैं ये सब सूक्ष्मप्रकृतिके आश्रित है, और प्रकृति चेतन आत्माके आश्रित है, आत्मा निराश्रय है अर्थात् किसीके भी वह आश्रित नहीं है । फिर वह कैसा है ? शरीरसे रहित है, इच्छासे रहित है, रागद्वेषादिक और सुखदुःखादिक द्वन्द्वोंसे भी रहित है, मोहसेभी रहित है, और अलुप्तशक्तिक है अर्थात् उसकी शक्ति भी लुप्त नहीं हुई है ॥ ३१ ॥

वेदो न दीक्षा न च मुण्डनक्रिया
गुरुर्न शिष्यो न च यन्त्रसंपदः ।
मुद्रादिकं चापि न यत्र भासते
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३२ ॥

पदच्छेदः ।

वेदः, न, दीक्षा, न, च, मुण्डनक्रिया, गुरुः, न, शिष्यः, न, च, यन्त्रसंपदः । मुद्रादिकम्, च, अपि, न, यत्र, भासते, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः ।

यत्र=जिसमें
वेदः=वेद और
दीक्षा=दीक्षा भी
न=नहीं भान होतीहै और
मुण्डनक्रिया=मुण्डन क्रिया भी
न च=नहीं भान होती है और
गुरुः=गुरु तथा
शिष्यः=शिष्य भी
न=नहीं भासता है
यंत्रसंपदः=यंत्रोंकी संपदा भी नहीं हैं

च अपि=और निश्चयकरके
मुद्रादिकम्=मुद्रा आदिक भी
यत्र=जिसमें
न भासते=नहीं ही भासते हैं
तम्=तिसी
ईशम्=ईश्वर
आत्मानम्=आत्माको
शाश्वतम्=नित्यको
उपैति=विद्वान् प्राप्त होता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जिस जीवन्मुक्ति अवस्थामें गुरुशिष्यादि व्यवहार नहीं होता है और जितनी कि, मुंडन आदिक क्रिया हैं और यंत्र मंत्र आदिक संपदा हैं वे भी सब प्रतीत नहीं होती हैं और जिस आत्मामें यह गुरु शिष्यादिक व्यवहार सब नहीं भासता है उसी आत्मामें ज्ञानवान् सब मरकरके लय होजाते हैं ॥३१॥

न शांभवं शाक्तिकमानवं न वा
पिण्डं च रूपं च पदादिकं न वा ।
आरम्भनिष्पत्तिघटादिकं च नो
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३२ ॥

पदच्छेदः ।

न, शांभवम्, शाक्तिकमानवम्, न, वा, पिण्डम्, च, रूपम्, च, पदादिकम्, न, वा । आरम्भनिष्पत्तिघटादिकम्, च, नो, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम्॥

पदार्थः ।

शाम्भवम्=उस चेतन आत्मामें शांभवपना भी
न=नहीं है और
शाक्तिकमानवम्=शाक्तिक तथा मानवपना भी उसमें नहीं है
च वा=और अथवा
पिण्डम्=पिण्डभाव भी
न=तिसमें नहीं है
च=और
रूपम् न=रूप भी तिसमें नहीं है और
पदादिकम्=पदादिक भी
न वा=उसमें नहीं है
च=और
आरम्भनिष्पत्तिघटादिकम्=घटादिकोंका आरम्भ और उत्पत्तिभी
नो=उसमें नहीं है विद्वान्
तम्=उसी चेतन
शाश्वतम्=नित्यको
ईशम्=ईश्वर
आत्मानम्=आत्माको
उपैति=प्राप्त होता है

स्वामी दत्तात्रेयजी कहतेहैं—उस चेतन आत्मामें शांभव और शाक्तिक आदिक किसीप्रकारका व्यवहार नहीं बनताहै और घटादिक पदार्थोंकी उत्पत्ति आदिक भी वास्तवसे नहीं बनतेहै उसी नित्य आत्माको विद्वान् प्राप्त होताहै अर्थात् शरीरका त्याग करके उसीमें लीन होजाताहै ॥ ३३ ॥

यस्य स्वरूपात्सचराचरं जगदु-
त्पद्यते तिष्ठति लीयतेऽपि वा ।
पयोविकारादिव फेनबुद्बुदा-
स्तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३४ ॥

पदच्छेदः ।

यस्य, स्वरूपात्, सचराचरम्, जगत्, उत्पद्यते, तिष्ठति, लीयते, अपि, वा । पयोविकारात्, इव, फेनबुद्बुदाः, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः ।

यस्य=जिस आत्माके
स्वरूपात्=स्वरूपसे
सचराचरम्=सहित चर अचरके
जगत्=जगत्
उत्पद्यते=उत्पन्न होताहै
तिष्ठति=जिसमें स्थित होताहै
लीयते=फिर लय होजाताहै
अपि वा=निश्चयकरके
पयोविकारात्=जलके विकारसे
फेनबुद्बुदाः=फेनबुद्बुदोंकी
इव=तरह होतेहै
तम्=तिसी
ईशम्=ईश्वर
आत्मानम्=आत्मा
शाश्वतम्=नित्यको
उपैति=विद्वान् प्राप्त होताहै

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहै—जिस चेतन आत्माके स्वरूपसे संपूर्ण चर अचर अर्थात् स्थावर जंगमरूप जगत् उत्पन्न होताहै और उसीमें स्थित होकर फिर तिसीमें लयभावको भी प्राप्त होजाताहै जिसतरह जलसे बुद्बुदे उत्पन्न होकर

फिर जलमें ही लय होजातेहैं एवं उसी नित्यरूप आत्माको विद्वान् भी प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

नासानिरोधो न च दृष्टिरासनं
बोधोऽप्यबोधोऽपि न यत्र भासते ।
नाडीप्रचारोऽपि न यत्र किंचि-
त्तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३५ ॥

पदच्छेदः ।

नासानिरोधः, न, च, दृष्टिः, आसनम्, बोधः, अपि, अबोधः, अपि, न, यत्र, भासते । नाडीप्रचारः, अपि, न, यत्र, किंचित्, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः ।

यत्र=जिस आत्मामें
नासानिरोधः=नासानिरोध और
दृष्टिः=दृष्टि
न च=नहीं है और
आसनम्=आसन और
बोधः=ज्ञान भी
अपि=निश्चय करके
अबोधः=अबोध भी
न च=नहीं
भासते=भान होताहै

यत्र=फिर जिस आत्मामें
नाडीप्रचारः=नाडियोंका प्रचार भी
अपि=निश्चयकरके
किञ्चित्=किञ्चित् भी
न=नहीं भासताहै
तम्=तिसी
ईशम्=ईश
आत्मानम्=आत्मा
शाश्वतम्=नित्यको
उपैति=विद्वान् प्राप्त होताहै

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जिस चेतन व्यापक आत्मामें नासिकाके अग्रमें दृष्टिका निरोध करना नहीं है क्योंकि आत्माके नासिकादिक नहीं है तब निरोध कैसे बनता है ? किन्तु कदापि भी नहीं, और फिर बोध अर्थात् ज्ञानवाला भी नहीं है क्योंकि वह ज्ञानस्वरूप है, और अज्ञानवाला भी नहीं है क्योंकि प्रकाशस्वरूप आत्मामें तम-

रूप अज्ञान रह भी नहीं सकताहै फिर तिसमें नाडियोंका प्रचार भी नहीं है क्योंकि नाडियोंका प्रचार शरीरमें होताहै वह शरीर नहीं है किन्तु शरीरसे भिन्न है उसी नित्य आत्मामें विद्वान् मरकरके लय होजाता है और फिर जन्म-मरणको प्राप्त नहीं होताहै ॥ ३५ ॥

नानात्वमेकत्वमुभत्वमन्यता
अणुत्वदीर्घत्वमहत्त्वशून्यता ।
मानत्वमेयत्वसमत्ववर्जितं
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३६ ॥

पदच्छेदः ।

नानात्वम्, एकत्वम्, उभत्वम्, अन्यता, अणुत्वदीर्घत्व-महत्त्वशून्यता । मानत्वमेयत्वसमत्ववर्जितम्, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः ।

तम्=विद्वान् तिस
ईशम्=ईश
आत्मानम्=आत्माको
उपैति=प्राप्त होताहै जोकि
शाश्वतम्=नित्य है और
नानात्वम्=नानात्व
एकत्वम्=एकत्व
उभत्वम्=उभयत्वसे
अन्यता=भेदसे और
अणुत्वदीर्घत्व-महत्त्वशून्यता=अणु, दीर्घ, महत्त्वसे और शून्यतासे रहित है
मानत्वमेयत्वसमत्ववर्जितम्=मान मेय और समत्वसे भी वह रहित है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—उस चेतन आत्मामें नानारूप जगत् भी वास्तवसे नहीं है और एकत्व भी नहीं है क्योंकि नानात्वकी अपेक्षासे एकत्व होताहै अर्थात् पहले नानात्व सिद्ध होले तब पीछे एकत्व सिद्ध हो, और जो एकत्व सिद्ध होले तब नानात्व सिद्ध हो, इस रीतिसे अन्योन्याश्रय दोष आताहै। जब कि, नानात्व

नहीं, तब एकत्व अर्थसे ही सिद्ध नहीं होताहै । इसवास्ते नानात्व एकत्व दोनों उसमें नहीं है । जबकि, वह दोनों नहीं तब अर्थसे ही उभयत्व भी तिसमें नहीं है और जो कोई दूसरा वास्तवसे सत्य हो तब तो तिसका भेद भी उसमें हो जिसवास्ते दूसरा नहीं है इसीवास्ते भेदसे भी रहित है । और मान जोकि प्रमाण है और मेय जोकि, विषय है और समभाव जो है इनसे भी वह आत्मा रहित है, और अणु, ह्रस्व, दीर्घ और महत्त्व इन परिमाणोंसे भी जोकि वह रहित है उसी ईश्वर आत्माको वह ज्ञानवान् प्राप्त होजाते हैं ॥ ३६ ॥

सुसंयमी वा यदि वा न संयमी
सुसंग्रही वा यदि वा न संग्रही ।
निष्कर्मको वा यदि वा सकर्मक-
स्तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३७ ॥

पदच्छेदः ।

सुसंयमी, वा, यदि, वा, न, संयमी, सुसंग्रही, वा, यदि, वा, न, संग्रही । निष्कर्मकः, वा, यदि, वा, सकर्मकः, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः ।

सुसंयमी=ज्ञानवान् सुष्टु, संयमवाला हो
वा=अथवा
न संयमी=संयमवाला न हो
यदि वा=अथवा
सुसंग्रही=सुष्टु संग्रह करनेवाला हो
यदि वा=अथवा
न संग्रही=संग्रह करनेसे रहित हो
वा=अथवा
निष्कर्मकः=कर्मसे रहित हो
यदि वा=अथवा
सकर्मकः=कर्मके सहित हो
तम्=तिसी
ईशम्=ईश्वर
शाश्वतम्=नित्य
आत्मानम्=आत्माको ज्ञानी
उपैति=प्राप्त होजाताहै ।

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—ज्ञानवान् इन्द्रियोंका संयम करनेवाला हो अथवा इन्द्रियोंका संयम करनेवाला न हो किन्तु विषयोंका भोगनेवाला हो अथवा पदार्थोंका संग्रह करनेवाला हो यदि वा पदार्थोंका संग्रह करनेवाला न हो अथवा कर्मोंको न करनेवाला हो या कर्मोंको करनेवाला हो तब भी वह उसी आत्मा नित्यमें ही प्राप्त होजाताहै ॥ ३७ ॥

मनो न बुद्धिर्न शरीरमिन्द्रियं
तन्मात्रभूतानि न भूतपञ्चकम्।
अहंकृतिश्चापि वियत्स्वरूपकं
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३८ ॥

पदच्छेदः ।

मनः, न, बुद्धिः, न, शरीरम्, इन्द्रियम्, तन्मात्रभूतानि न, भूतपञ्चकम्। अहंकृतिः, च, अपि, वियत्स्वरूपकम्, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः ।

मनः=मन और
बुद्धिः=बुद्धि भी जिसके
न=नहीं है और
शरीरम्=शरीर तथा
इन्द्रियम्=इन्द्रिय भी
न=जिसके नहीं है
तन्मात्रभूतानि=पंचतन्मात्रारूपी भूत भी
भूतपञ्चकम्=पृथ्वी आदि ५ महाभूत
न=जिसमें नहीं हैं
अहंकृतिः=अहंकार भी
अपि=निश्चयकरके जिसके नहीं है
च=और
वियत्स्वरूपकम्=आकाशके तुल्य व्यापक रूपवाला भी है
तम् शाश्वतम्=उस नित्य
ईशम्=ईश्वर
आत्मानम्=आत्माको विद्वान्
उपैति=प्राप्त होजाताहै

भावार्थः ।

जिसके मन और बुद्धि नहीं, शरीर और इन्द्रिय नहीं, पृथिवी जल, तेज,

वायु, आकाश, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द नहीं, अहंकार भी नहीं, जो आकाशके समान व्यापक है, उस नित्य आत्माको प्राप्त होजाताहै ॥ ३८ ॥

विधौ निरोधे परमात्मतां गते
न योगिनश्चेतसि भेदवर्जिते ।
शौचं न वाऽशौचमलिङ्गभावना
सर्वं विधेयं यदि वा निषिध्यते ॥ ३९ ॥

पदच्छेदः ।

विधौ, निरोधे, परमात्मतां गते, न, योगिनः, चेतसि, भेदवर्जिते । शौचम्, न, वा, अशौचम्, अलिङ्गभावना, सर्वम्, विधेयम्, यदि, वा, निषिध्यते ॥

पदार्थः ।

भेदवर्जिते=भेदसे रहित
परमात्मतां गते=परमात्मताको प्राप्त
योगिनः=योगीके
चेतसि=चित्तमें
विधौ निरोधे=विधि और निरोध
न भवतः=नहीं होतेहैं
शौचम्=पवित्रता
वा=अथवा
न अशौचम्=अपवित्रता भी नहीं होती है और
अलिंगभावना=चिह्नकी भावना भी नहीं होतीहै
यदि वा=अथवा
सर्वम्=संपूर्ण
विधेयम्=विधेयका भी
निषिध्यते=निषेध होजाताहै

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं-जिन ज्ञानवान् योगियोंका चित्त भेदसे रहित परमात्माके स्वरूपमें ही लीन होगयाहै उनके वास्ते विधि और निषेध नहीं होता है तथा पवित्रता और अपवित्रता भी उनके लिये नहीं है और उनका चिन्ह भी कोई नहीं होताहै अथवा कर्मियोंके लिये जिन विधियोंका विधान कियाहै उन सब विधियोंका योगीके लिये निषेध होजाता है ॥ ३९ ॥

मनो वचो यत्र न शक्तमीरितुं
नूनं कथं तत्र गुरूपदेशता ।

इमां कथामुक्तवतो गुरोस्त-
द्युक्तस्य तत्त्वं हि समं प्रकाशते ॥ ४० ॥

इति श्रीदत्तात्रेयविरचितायामवधूतगीतायामात्म-
संवित्त्युपदेशो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

मनः, वचः, यत्र, न, शक्तम्, ईरितुम्, नूनम्, कथम्, तत्र, गुरूपदेशता । इमाम्, कथाम्, उक्तवतः, गुरोः, तद्युक्तस्य, तत्त्वम्, हि, समम्, प्रकाशते ॥

पदार्थः ।

यत्र=जिस आत्मामें
मनः वचः=मन और वाणी
ईरितुम्=कथन करनेको
शक्तम्=समर्थ
न=नहीं है
नूनम्=निश्चयकरके
तत्र=तिस आत्मामें
गुरूपदेशता=गुरु और उपदेश-व्यवहार
कथम्=कैसे बनसकताहै
इमाम्=इस
कथाम्=कथाको
उक्तवतः=कथन करनेवाले और
तद्युक्तस्य=तिस आत्मामें जुडे हुए
गुरोः=गुरुको
हि=निश्चयकरके
समम्=सम एकरस
तत्त्वम्=आत्मतत्त्व
प्रकाशते=प्रकाशमान होता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—उस चेतन ब्रह्मको मन वाणी भी कथन करनेको समर्थ नहीं होतीहै अतएव वह चेतन आत्मा मन वाणीका विषय ही नहीं है तब फिर गुरुके उपदेशकी गम्य कहांहै ! किन्तु कहीं भी नहीं है इस चेतन ब्रह्म-की कथाको निरूपण करनेवाला जोकि तिसी चेतन आत्मामें जुडा हुआ गुरु है तिस गुरुको वह आत्मतत्त्व सम ही प्रकाशमान होताहै ॥ ४० ॥

इति श्रीमदवधूतगीतायां परमहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्दविरचित-
परमानन्दीभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अवधूत उवाच ।

गुणविगुणविभागो वर्तते नैव किञ्चि-
द्रतिविरतिविहीनं निर्मलं निष्प्रपञ्चम् ।
गुणविगुणविहीनं व्यापकं विश्वरूपं
कथमहमिह वन्दे व्योमरूपं शिवं वै ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

गुणविगुणविभागः, वर्त्तते, न, एव, किञ्चित्, रतिविरतिविहीनम्, निर्मलम्, निष्प्रपञ्चम् । गुणविगुणविहीनम्, व्यापकम्, विश्वरूपम्, कथम्, अहम्, इह, वन्दे, व्योमरूपम्, शिवम्, वै ॥

पदार्थः ।

यत्र=जिस आत्मामें
एव=निश्चयकरके
किञ्चित्=किञ्चित् भी
गुणविगुणविभागः=गुण और निर्गुण विभाग
वर्तते=वर्तता
न=नहीं है एवंभूत
शिवम्=कल्याणरूपके
व्योमरूपम्=आकाशवत् व्यापकके
इह=इस ग्रन्थमें
अहम्=मैं
कथम्=किसप्रकार
वन्दे=वन्दनाको करूं ? कैसा वह है
रतिविरतिविहीनम्=रति और विरतिसे रहित है
निर्मलम्=निर्मलको
निष्प्रपंचम्=प्रपंचसे रहितको और
गुणविगुणविहीनम्=सगुण निर्गुणतासे भी रहितको
व्यापकम्=सर्वत्र व्यापकको
विश्वरूपम्=विश्वरूपको कैसे मैं वन्दना करूं ?

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जिस चेतन आत्मामें सगुण और निर्गुण विभाग नहीं है और रति जो प्रेम विरति जो कि उपरामता यह भी नहीं है क्योंकि रति विरति भी भेदको लेकरके होतेहैं। इसीसे वह निर्मल है मायामलसे भी रहित है और प्रपंचसे भी वह रहित है क्योंकि प्रपंच सब मायाका कार्य है जबकि, उसमें माया ही वास्तवसे नहीं है तब प्रपंच कैसे होसकता है ? और सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंके विभागसे भी वह रहित है, व्यापक है, विश्वरूप भी है, कल्याणस्वरूप भी है, और हमारा अपना आत्मा भी है, उसको हम कैसे वन्दना करें ? वंदना भी भेदको लेकरके होती है, एकमें वन्दना भी नही बनतीहै ॥ १ ॥

श्वेतादिवर्णरहितो नियतं शिवश्च
कार्यं हि कारणमिदं हि परं शिवश्च ।
एवं विकल्परहितोऽहमलं शिवश्च ।
स्वात्मानमात्मनि सुमित्र कथं नमामि॥२॥

पदच्छेदः ।

श्वेतादिवर्णरहितः, नियतम्, शिवः, च, कार्यम्, हि, कारणम्, इदम्, हि, परम्, शिवः, च । एवम्, विकल्परहितः, अहम्, अलम्, शिवः, च, स्वात्मानम्, आत्मनि, सुमित्र, कथम्, नमामि ॥

पदार्थः ।

सुमित्र=हे सुमित्र !	इदम्=यह
अहम्=मैं	कार्यम्=कार्य है यह
स्वात्मानम्=अपने आत्माको	कारणम्=कारण है
आत्मनि=अपने आत्मामें	परम्=यह श्रेष्ठ है
कथम्=किसप्रकार	च=और
नमामि=नमस्कार करूँ	शिवः=यह कल्याण है
श्वेतादिवर्णरहितः=श्वेतपीतादि वर्णोंसे भी रहित हूँ	एवम्=इसप्रकारके
नियतम्=नित्य	विकल्परहितः=विकल्पोंसे भी मैं रहित हूँ फिर
शिवः=कल्याणरूप हूँ	अलम्=परिपूर्ण
च हि=और निश्चयकरके	च शिवः=और कल्याणरूप हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे सुमित्र ! मैं शिवरूप हूँ अर्थात् कल्याणस्वरूप हूँ और श्वेतपीतादिवर्णोंसे रहित हूँ, कार्यकारणरूपी जगत्से भी मैं रहित हूँ और फिर मैं शुद्धस्वरूप हूँ तब फिर अपने आत्माको अपने आत्मामें मैं कैसे नमस्कार करूँ ? क्योंकि नमस्कारका करना भेदको लेकरके ही होताहै अभेदको लेकरके नहीं होताहै ॥ २ ॥

निर्मूलमूलरहितो हि सदोदितोऽहं
निर्धूमधूमरहितो हि सदोदितोऽहम् ।
निर्दीपदीपरहितो हि सदोदितोऽहं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

निर्मूलमूलरहितः, हि, सदा, उदितः, अहम्, निर्धूमधूमरहितः, हि, सदा, उदितः, अहम् । निर्दीपदीपरहितः,

हि, सदा, उदितः, अहम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

अहं हि=मैं निश्चयकरके
निर्मूलमूलरहितः=निर्मूल हूँ और मूलकारणसे रहित हूँ
सदा=सर्वकाल ही मैं
उदितः=उदित हूँ फिर मैं
निर्धूमधूमरहितः=निर्धूम और धूमसे रहित हूँ
हि=निश्चयकरके
सदा=सर्वकाल
अहम् उदितः=मैं उदित हूँ
निर्दीपदीपरहितः=निर्दीप हूँ और दीपकसे रहित हूँ
हि=निश्चयकरके
सदा=सर्वकाल
अहम्=मैं
उदितः=उदित हूँ फिर मैं कैसाहूँ
ज्ञानामृतम्=ज्ञानामृत और
समरसम्=समरस
गगनोपमः अहम्=गगनकी उपमावाला मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जिस हेतुसे मैं निर्मूल हूँ अर्थात् मेरा मूलकारण कोई भी नहीं है और मैं भी किसीका मूलकारण नहीं हूँ अर्थात् अज्ञान मेरेमें नहीं रहता है और जिस हेतुसे निर्धूम हूँ इसीवास्ते मैं अज्ञानसे भी रहित हूँ, फिर जिस हेतुसे निर्दीप हूँ अर्थात् दीपक मेरेको प्रकाश नहीं करसकता है मैं दीपसे रहित स्वयंप्रकाश हूँ और सदैव उदित हूँ ज्ञानस्वरूप अमृतरूप समरस अर्थात् एकरस सर्वत्र ज्योंका त्यों आकाशकी उपमावाला मैं हूँ मेरेसे भिन्न दूसरा कोई भी नहींहै ॥ ३ ॥

निष्काममकाममिह नाम कथं वदामि-
निःसंगसंगमिह नाम कथं वदामि ।
निःसारसाररहितं च कथं वदामि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

निष्कामकामम्, इह, नाम, कथम्, वदामि, निःसंगसंगम्, इह, नाम, कथम्, वदामि । निःसारसाररहितम्, च, कथम्, वदामि, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निष्काम-कामम् =कामनासे रहितको कामनावाला
नाम=प्रसिद्ध
इह=इस लोकमें
कथम्=किसप्रकार
वदामि=मैं कहूँ
निःसंग-संगम् =संगसे रहितको संग-वाला
इह=इस लोकमें
नाम=प्रसिद्ध
कथम्=किसप्रकार
वदामि=मैं कहूँ
च=और
निःसारसार-रहितम् =निःसारको सारसे रहित
कथम्=किसप्रकार
वदामि=मैं कहूँ
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृतरूप और
समरसम्=एकरस
गगनोपमः=गगनकी उपमावाला
अहम्=मैं हूँ ।

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहतेहैं—निष्काम आत्माको कामनावाला मैं कैसे कहूँ ? फिर जोकि निःसंग है अर्थात् असंग है उसको संगवाला संबंधवाला मैं कैसे कहूँ ? फिर जोकि निःसार है अर्थात् सारसे रहित है उसको मैं सारवाला कैसे कहूँ ? किन्तु मैं ज्ञानरूपी अमृत और समरस अर्थात् एकरस आकाशकी उपमावाला हूँ ॥ ४ ॥

अद्वैतरूपमखिलं हि कथं वदामि
द्वैतस्वरूपमखिलं हि कथं वदामि ।
नित्यं त्वनित्यमखिलं हि कथं वदामि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अद्वैतरूपम्, अखिलम्, हि, कथम्, वदामि, द्वैतस्वरूपम्, अखिलम्, हि, कथम्, वदामि । नित्यम्, तु, अनित्यम्, अखिलम्, हि, कथम्, वदामि, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

अद्वैतरूपम्=अद्वैतरूप
अखिलम्=संपूर्ण प्रपंचको
हि=निश्चयकरके
अहम्=मैं
कथम्=किसप्रकार
वदामि=कथन करूं
अखिलम्=संपूर्ण जगत्को मैं
द्वैतरूपम्=द्वैतरूप
हि=निश्चयकरके
अहम्=मैं
कथम्=किसप्रकार
वदामि=कथन करूं
तु=पुनः
नित्यम्=नित्य और
अनित्यम्=अनित्य
अखिलम्=संपूर्णको
कथम्=कैसे
वदामि=कहूँ क्योंकि
अहम्=मैं
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृतरूप हूँ
समरसम्=एकरस हूँ
गगनोपमः=आकाशकी उपमावाला हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं--मै संपूर्ण प्रपंचोंको अद्वैतरूप करके कैसे कहूँ क्यों कि प्रत्यक्ष प्रमाणसे वह द्वैतरूपकरके दिखाता है और द्वैतरूपकरके भी मैं नहीं कह-सकता हूँ. क्योंकि सुषुप्ति और मोक्ष अवस्थामें इसका अभाव होजाता है अर्थात् तिस कालमें द्वैत नहीं रहताहै । फिर मैं संपूर्ण जगत्को नित्य और अनित्य कैसे कहूँ ? क्योंकि यदि नित्य हो तब तो इसका नाश कभी भी न होवै और नाश तो जरूर होताहै । इसवास्ते नित्य नहीं है और अनित्य भी नहीं है यदि अनित्य हो तब दृष्टिका गोचर न हो, वंध्यापुत्रकी तरह, और दृष्टिका गोचर भी होता है । इसवास्ते नित्य और अनित्य भी इसको किसीप्रकारसे भी मैं नहीं कहसकता हूँ

किन्तु यह संपूर्ण प्रपंच अनिर्वचनीय है और मैं ज्ञानरूपी अमृत एक रस आकाशकी उपमावाला अर्थात् आकाशकी तरह व्यापक हूँ ॥ ५ ॥

स्थूलं हि नो नहि कृशं न गतागतं हि
आद्यन्तमध्यरहितं न परापरं हि ।
सत्यं वदामि खलु वै परमार्थतत्त्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

स्थूलम्, हि, नः, न, हि, कृशम्, न, गतागतम् हि, आद्यन्तमध्यरहितम्, न, परापरम्, हि । सत्यम्, वदामि, खलु, वै, परमार्थतत्त्वम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

नः=हमारा आत्मा
हि=निश्चयकरके
स्थूलम्=स्थूल
न हि=नहीं है और
कृशम्=कृश तथा
न गतागतम्=गमनागमनवाला भी नहीं है
आद्यंतमध्यरहितम्=आदि अन्त और मध्यसे भी रहित है
हि=निश्चयकरके
न परापरम्=पर अपर रूप भी नहीं है
खलु=निश्चयकरके
सत्यम्=सत्यको ही
वदामि=मैं कहताहूँ
परमार्थतत्त्वम्=परमार्थतत्त्वस्वरूप मैं हूँ
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत हूँ और
समरसम्=एकरस हूँ
गगनोपमोऽहम्=आकाशकी उपमावाला मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-हमारा जो आत्मा है सो स्थूल नहीं है और कृश भी नहीं अर्थात् अणु भी नहीं है और गमनागमनवाला भी नहीं है और आदि मध्य तथा

अन्तवाला भी नहीं है अर्थात् उत्पत्ति स्थिति और लयवाला भी नहीं है किन्तु उत्पत्ति आदिकोंसे रहित है और पर अपरवाला भी नहीं है क्योंकि व्यापक है। यह वार्ता मैं सत्य कहताहूँ क्योंकि मैं परमार्थतत्त्वरूप हूँ और ज्ञानरूप अमृत हूँ समरस भी हूँ गगनकी उपमावाला भी मैं हूँ ॥ ६ ॥

संविद्धि सर्वकरणानि नभोनिभानि
संविद्धि सर्वविषयांश्च नभोनिभांश्च।
संविद्धि चैकममलं न हि बन्धमुक्तं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः।

संविद्धि, सर्वकरणानि, नभोनिभानि, संविद्धि, सर्वविषयान्, च, नभोनिभान्, च। संविद्धि, च, एकम्, अमलम्, न, हि, बन्धमुक्तम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः।

सर्वकरणानि=संपूर्ण करणोंको
नभोनिभानि=आकाशके तुल्य शून्य
संविद्धि=सम्यक् तू जान
च=और
सर्वविषयान्=संपूर्ण विषयोंको
नभोनिभान्=आकाशके तुल्य शून्य ही
संविद्धि=सम्यक् तू जान
च=और
एकम्=एक आत्माको
अमलम्=शुद्ध मलसे रहित
संविद्धि=सम्यक् तू जान कैसे आत्माको
बन्धमुक्तम्=बंध और मोक्ष जिसमें
न हि=नहीं है सो आत्मा
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृतरूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमः=आकाशवत्
अहम्=मैं ही हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जितने कि इन्द्रिय हैं ये सब वास्तवसे आकाशके तुल्य शून्य हैं ऐसे तू जान और संपूर्ण विषय भी आकाशकी तरह शून्य हैं, ऐसे ही तू जान और एक आत्माको ही अमल अर्थात् मायामलसे रहित तू जान कैसा वह आत्मा है ? बन्ध और मुक्तिसे रहित है सोई मैं हूँ, फिर मैं कैसा हूँ ज्ञान-स्वरूप अमृतरूप हूँ और एकरस आकाशवत् व्यापक हूँ ॥ ७ ॥

दुर्बोधबोधगहनो न भवामि तात
दुर्लक्ष्यलक्ष्यगहनो न भवामि तात ।
आसन्नरूपगहनो न भवामि तात
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

दुर्बोधबोधगहनः, न, भवामि, तात, दुर्लक्ष्यलक्ष्यगहनः, न, भवामि, तात । आसन्नरूपगहनः, न, भवामि, तात, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

दुर्बोधबोधगहनः =दुर्बोध आत्माका जो वृत्तिज्ञान है सो बडा गंभीर है
तात=हे तात सो
न भवामि=मैं नहीं हूँ
तात=हे तात
दुर्लक्ष्यलक्ष्यगहनः =दुर्लक्ष्यका लक्ष्य भी गंभीर है सो
न भवामि=मैं नहीं हूँ
तात=हे तात
आसन्नरूपगहनः =अतिसमीप भी तिसका बडा गंभीर है
न भवामि=मैं आसन्न भी नहीं हूँ
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत मैं हूँ
समरसम्=एकरस हूँ
गगनोपमोऽहम् =आकाशकी उपमावाला हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हे तात! हे प्रिय वह आत्मा बडा ही दुर्बोध है अर्थात् बडे कष्टसे उसका बोध होताहै सो बोध भी वृत्तिज्ञानहै सो मैं नहीं हूँ क्योंकि वह मिथ्या है फिर वह आत्मा दुर्लक्ष्य है अर्थात् किसी भी इन्द्रियकरके वह लक्ष्य नहीं होता है क्योंकि बडा गहन है सो उस दुर्लक्ष्यका जोकि लक्ष्य अर्थात् जानना है वह भी मैं नहीं हूँ फिर तिसका रूप मनबुद्धिके अतिसमीप भी है तब भी तिसका जानना कठिन है क्योंकि वह मनादिकोंका विषय नहींहै इसवास्ते मैं तिसके अतिसमीप भी नहीं हूँ किन्तु मैं वही ज्ञानरूपी अमृत हूँ और एक रस गगनकी उपमावाला हूँ मेरेसे वह भिन्न नहीं है॥ ८॥

निष्कर्मकर्मदहनो ज्वलनो भवामि
निर्दुःखदुःखदहनो ज्वलनो भवामि।
निर्देहदेहदहनो ज्वलनो भवामि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम्॥ ९॥

पदच्छेदः।

निष्कर्मकर्मदहनः, ज्वलनः, भवामि, निर्दुःखदुःख-दहनः, ज्वलनः, भवामि। निर्देहदेहदहनः, ज्वलनः, भवामि, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम्॥

पदार्थः।

अहम्=मैं
निष्कर्मकर्मदहनः=कर्मोंसे रहित हूँ तब भी कर्मोंका दाहक
ज्वलनः=अग्नि
भवामि=मैं हूँ
निर्दुःखदुःखदहनः=मैं दुःखसे रहित हूँ तबभी दुःखको दाहक
ज्वलनः=अग्नि
भवामि=मैं हूँ
निर्देहदेहदहनः=देहसे रहित हूँ तब भी देहसे रहित करनेमें
ज्वलनः=अग्निरूप
भवामि=मैं हूँ फिर मैं
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूप अमृत हूँ
समरसम्=एकरस हूँ
गगनोपमः=गगनकी उपमावाला
अहम्=मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं कर्मोंसे रहित हूँ और कर्मोंके जलानेमें जलती हुई अग्नि मैं हूँ, फिर मैं संपूर्ण दुःखोंसे रहित भी हूँ, तब भी दुःखोंके जलानेमें मैं अग्निरूप हूं, फिर मैं शरीरसे रहित भी हूँ, तब भी जन्ममरणके हेतु जो लिङ्गशरीर और कारणशरीर हैं उनके जलानेमें मैं जलतीहुई अग्निरूप हूँ, फिर मैं ज्ञानरूपी अमृतरूप एकरस और आकाशवत् व्यापक भी हूँ ॥ ९ ॥

निष्पापपापदहनो हि हुताशनोऽहं
निर्धर्मधर्मदहनो हि हुताशनोऽहम् ॥
निर्बन्धबन्धदहनो हि हुताशनोऽहं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

निष्पापपापदहनः, हि, हुताशनः, अहम्, निर्धर्मधर्मदहनः, हि, हुताशनः, अहम् । निर्बन्धबन्धदहनः, हि, हुताशनः, अहम्, ज्ञानामृतम्, समरसं, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निष्पापपापदहनः=पापसे रहित पापके दाह करनेमें	अहम्=मैं हूँ
अहम्=मैं	निर्बन्धबन्धदहनः=बन्धसे रहित हूँ और बन्धके दाह करनेमें
हि=निश्चयकरके	हि=निश्चयकरके
हुताशनः=अग्निरूप हूँ	हुताशनः=अग्निरूप
निर्धर्मधर्मदहनः=धर्मसे रहित होकरके भी धर्मके दाह करनेमें	अहम्=मैं हूँ
	ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृतरूप हूँ
हि=निश्चयकरके	समरसम्=एकरस
हुताशनः=अग्निरूप	गगनोपमोऽहं=गगनकी उपमावाला हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—मैं पापोंसे रहित हूँ और पापोंके दाह करनेमें अग्निरूप भी हूँ अर्थात् जैसे अग्नि लकडियोंको जलाकरके भस्म करदेतीहै तैसे मैं भी पापोंको जलाकरके भस्म करदेतीहूँ, फिर मैं धर्मसे भी रहित हूँ और धर्म अधर्मके जलानेमें अग्निरूप भी हूँ, फिर मैं बन्धसे रहित भी हूँ तब भी बन्धके जलानेमें मैं अग्निरूप हूँ और ज्ञानस्वरूप अमृतरूप एकरस आकाशवत् व्यापक भी हूँ ॥ १० ॥

निर्भावभावरहितो न भवामि वत्स
नियोंगयोगरहितो न भवामि वत्स ।
निश्चित्तचित्तरहितो न भवामि वत्स
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

निर्भावभावरहितः, न, भवामि, वत्स, नियोंगयोगरहितः, न, भवामि, वत्स । निश्चित्तचित्तरहितः, न, भवामि, वत्स, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

वत्स=हे वत्स
निर्भावभावरहितः=निर्भाव होकरके भी भावसे रहित
न भवामि=मैं नहीं हूँ
वत्स=हे वत्स
नियोंगयोगरहितः=नियोंग होकरके भी योगसे रहित
न भवामि=मैं नहीं हूँ
वत्स=हे वत्स !
निश्चित्तचित्तरहितः=चित्तसे रहित होकरके भी चित्तसे रहित
न भवामि=मैं नहीं हूँ किन्तु
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृत मैं हूँ
समरसम्=समरस भी मैं हूँ
गगनोपमोऽहम्=आकाशकी उपमावाला हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं निर्भाव हूँ अर्थात् प्रेम मेरा किसी भी पदार्थमें नहीं है

परन्तु प्रेमसे रहित भी मैं नहीं हूँ किन्तु प्रेमरूप ही हूँ। फिर मैं योगसे रहित हूँ क्योंकि योग नाम है चित्तकी वृत्तियोंके निरोधका सो मैं निरोधरूप नहीं हूँ परन्तु निरोधरूपी योगसे रहित भी मैं नहीं हूँ क्योंकि मेरेमेंही संपूर्ण जगत्का लयरूपी निरोध होता है। हे वत्स ! मैं निश्चित्त हूँ अर्थात् चित्तसे रहित हूँ अर्थात् वास्तवसे मेरा चित्तसाथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है तब भी मैं चित्तसे रहित नहीं हूँ क्योंकि संपूर्ण चित्त मेरेमें ही कल्पित हैं। हे वत्स ! मैं ज्ञानरूप अमृतरूप समरस आकाशकी उपमावाला हूँ ॥ ११ ॥

निर्मोहमोहपदवीति न मे विकल्पो
नि:शोकशोकपदवीति न मे विकल्पः ।
निर्लोभलोभपदवीति न मे विकल्पो
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

निर्मोहमोहपदवी, इति, न, मे, विकल्पः, निःशोकशोक-पदवी, इति, न, मे, विकल्पः । निर्लोभलोभपदवी, इति, न, मे, विकल्पः, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निर्मोहमोहपदवी=मोहसे रहित अथवा मोहवाला
इति=इसप्रकारका
मे=मेरेमें
विकल्पः=विकल्प
न=नहीं है
निःशोकशोकपदवी=शोकसे रहित या शोकवाला
इति=इसप्रकारका भी
मे=मेरेमें
विकल्पः=विकल्प
न=नहीं है
निर्लोभलोभपदवी=लोभसे रहित या लोभवाला
इति=इसप्रकारका भी
मे=मेरेमें
विकल्पः=विकल्प
न=नहीं है किन्तु
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूप अमृत मैं हूँ
समरसम्=एकरस भी हूँ
गगनोपमोऽहम्=आकाशका व्यापक भी हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—मैं मोहसे रहित हूँ, या मोहवाला हूँ, इसप्रकारका विकल्प भी मेरेमें नहीं युक्त है । फिर मैं शोकवाला हूँ, या शोकसे रहित हूँ, इसप्रकारका विकल्प भी मेरेमें नहीं युक्त है । फिर मै लोभवाला हूँ, या लोभसे रहित हूँ, इसप्रकारका संकल्प भी मेरेमें नहीं योग्य है, किन्तु मैं ज्ञानरूपी अमृतस्वरूप हूँ, समरस हूँ, और आकाशवत् निर्लेप भी हूँ ॥ १२ ॥

संसारसन्ततिलता न च मे कदाचि-
त्सन्तोषसन्ततिसुखं न च मे कदाचित् ॥
अज्ञानबन्धनमिदं न च मे कदाचि-
ज्ज्ञानामृतः समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

संसारसन्ततिलता, न, च, मे, कदाचित्, सन्तोषसन्ततिसुखं, न, च, मे, कदाचित् । अज्ञानबन्धनम्, इदम्, न, च, मे, कदाचित्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

संसारसन्ततिलता=संसाररूपीप्रवाहकी लता
कदाचित्=कदाचित् भी
मे न च=मेरको नहीं है
सन्तोषसन्ततिसुखं=सन्तोषरूपी सन्ततिका सुख भी
कदाचित्=कदाचित् भी
मे न च=मेरेको नहीं है
इदम्=यह
अज्ञानबन्धनम्=अज्ञानरूपी बन्धन भी
कदाचित्=कदापि
मे न च=मेरेको नहीं है किन्तु
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत और
समरसम्=एकरस और
गगनोपमोऽहम्=आकाशवत् व्यापक मै हूँ ।

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जैसे कि, जन्ममरणरूपी संसारकी लता कार्मियोंके लिये फैलती है वह लता कदाचित् भी मेरेलिये नहीं फैलतीहै और जो कि सन्तोषकी सन्ततिसे जन्यसुख अज्ञानियोंको भान होताहै सो मेरेको नहीं भान होताहै क्योंकि मैं सुखरूप हूँ। फिर जैसे कर्मी जीव या दूसरे जीव अज्ञानरूपी वन्धनमें वन्धायमान हैं तैसे मैं कदापि भी अज्ञानरूपी बंधनकरके वन्धायमान नहीं हूँ किन्तु ज्ञानरूपी अमृतरूप और एकरस आकाशवत् असंग हूँ ॥ १३ ॥

संसारसन्ततिरजो न च मे विकारः
सन्तापसन्ततितमो न च मे विकारः ॥
सत्त्वं स्वधर्मजनकं न च मे विकारो
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ।

संसारसन्ततिरजः, न, च, मे, विकारः, सन्तापसन्ततितमः, न, च, मे, विकारः। सत्त्वम्, स्वधर्मजनकम्, न, च, मे, विकारः, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

संसारसंततिरजः=संसाररूपी प्रवाहका जो रजहै सो
मे=मेरा
विकारः=विकार
न च=नहीं है
सन्तापसन्ततितमः=सन्तापरूपी प्रवाह जोकि अज्ञान है सो
मे=मेरा
विकारः=विकार
न च=नहीं है
स्वधर्मजनकम्=अपने धर्मका जनक जो
सत्त्वम्=सत्त्वगुण है वह भी
मे=मेरा
विकारः=विकार
न च=नहीं है क्योंकि
अहम्=मैं
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत हूँ
समरसम्=एकरस हूँ
गगनोपमः=गगनकी उपमावाला हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह संसाररूपी प्रवाह अनादिकालसे चलाआताहै और बार २ जन्म लेना और मरना यही इसकी रज है अर्थात् धूलि है सो भी मेरा विकार अर्थात् कार्य नहीं है फिर इस संसारमें जोकि जन्मतेहैं उनको जन्मभर सन्तापका प्रवाह चलाही जाताहै वह भी मेरा .विकार नहीं है और सत्त्वगुण ही अपने धर्मका जनक है, सो सत्त्वगुण भी मेरा विकार नहीं है क्योंकि मैं ज्ञानरूपी अमृत और एकरस गगनकी उपमावाला हूँ ॥ १४ ॥

सन्तापदुःखजनको न विधिः कदाचि-
त्सन्तापयोगजनितं न मनः कदाचित् ।
यस्मादहङ्कृतिरियं न च मे कदाचि-
ज्ज्ञानामृतंसमरसं गगनोपमोहम् ॥ १५ ॥

पदच्छेदः ।

संसारदुःखजनकः, न, विधिः, कदाचित्, सन्तापयोगजनितम्, न, मनः कदाचित् । यस्मात्, अहङ्कृतिः, इयम्, न, च, मे कदाचित्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

सन्तापदुःखजनकः=सन्तापरूपीदुःखका जनक
विधिः=जो विधि है सो
कदाचित्=कदाचित् भी
मे न=मेरेलिये नहीं है
सन्तापयोगजनितम्=सन्तापके सम्बन्धसे जनित जो
मनः=संकल्परूप मन है सो भी
कदाचित्=कदाचित्
मे न=मेरा नहीं है
यस्मात्=जिसीकारणसे
इयम्=यह
अहङ्कृतिः=अहंकार भी
कदाचित्=कदाचित्
मे न च=मेरा नहीं है
तस्मात्=तिसीकारणसे
अहम्=मैं
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
समरसम्=एकरस
गगनोपमः=गगनवत् हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—सन्तापरूपी दुःखका जनक ही विधि है क्योंकि स्वर्गादिकोंकी प्राप्तिके वास्ते सब विधियां बनीहैं उनके करनेसे पुरुष स्वर्गको जाताहै वहांपर अपनेसे अधिक योग्यतावालेको देखकर सन्तापरूपी दुःख उत्पन्न होताहै सो सब विधियां अज्ञानियोंके लिये बनीहैं मेरे लिये नहीं फिर सन्तापके सम्बन्धसे संकल्परूप मन भी उत्पन्न होताहै सो मन भी मेरा कदाचित् नहीं है फिर अहंकारसे ही मनादिकोंकी उत्पत्तिभी होती है वह अहंकार जिसकारणसे मेरा नहींहै इसी कारणसे मैं ज्ञानरूपी अमृत एकरस गगनकी उपमावाला हूँ ॥१५॥

निष्कम्पकम्पनिधनं न विकल्पकल्पं
स्वप्नप्रबोधनिधनं न हिताहितं हि ।
निःसारसारनिधनं न चराचरं हि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ।

निष्कम्पकम्पनिधनम्, न, विकल्पकल्पम्, स्वप्नप्रबोधनिधनम्, न, हिताहितम्, हि । निःसारसारनिधनम्, न, चराचरम्, हि, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निष्कम्पकम्पनिधनम् =कम्पसे रहित और कंप दोनोंका नाशरूप भी
अहम्=मैं नहीं हूँ
विकल्पकल्पम्=विकल्प और कल्परूप भी
न=मैं नहीं हूँ

स्वप्नप्रबोधनिधनम् =स्वप्न और जाग्रत्का नाशरूप भी
न=मैं नहीं हूँ

हिताहितम्=हित और अहित रूपभी
हि न=निश्चयकरके मैं नहीं हूँ
निःसारसारनिधनम् =सारसे रहित और सारका भी नाशरूप
न=मैं नहीं हूँ
चराचरम्=चर अचररूप भी मैं नहींहूँ
हि=निश्चयकरके
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृत
समरसम्=एकरस
गगनोपमः=आकाशकी उपमावाला
अहम्=मैं हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं कम्परहित या सकम्प नहीं हूँ। न विकल्प हूँ न कल्पसहित हूँ। सोना और जागना इन दोनोंसे रहित हूं। न हित हूँ न अहित हूँ। न निस्सार हूँ न सारयुक्त हूँ। न चर हूँ न अचर हूँ। परन्तु ज्ञानस्वरूप, नित्य, एकरस और व्यापक हूँ॥ १६॥

नो वेद्यवेदकमिदं न च हेतुतर्क्यं
वाचामगोचरमिदं न मनो न बुद्धिः।
एवं कथं हि भवतः कथयामि तत्त्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोहम्॥ १७॥

पदच्छेदः।

नो, वेद्यवेदकम्, इदम्, न, च, हेतुतर्क्यम्, वाचाम्, अगोचरम्, इदम्, न, मनः, न, बुद्धिः। एवम्, कथम्, हि, भवतः, कथयामि, तत्त्वम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम्॥

पदार्थः।

इदम्=यह आत्मा ब्रह्म
नो=नहीं
वेद्यवेदकम्=जानने योग्य और जनानेवाला भी है
हेतुतर्क्यम्=कारण और तर्कसे
न च=नहीं जानाजाताहै
इदम्=यह चेतन ब्रह्म
वाचाम्=वाणीका
अगोचरम्=विषय नहीं है
मनः=मन भी इसको
न= नहीं जान सकताहै
बुद्धिः=बुद्धि भी इसको
न=नहीं जानसकती है
एवम्=इसप्रकारके
तत्त्वम्=चेतन ब्रह्मको
भवतः=तुम्हारेको
हि=निश्चयकरके
कथम्=किसप्रकार
कथयामि=मैं कथन करूं
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृत
समरसम्=एकरस
गगनोपमः=गगनकी उपमावाला
अहम्=मैही हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-यह ब्रह्म चेतन किसीसे नहीं जानाजाताहै हेतु और तर्कोंकरके भी वह नहीं जानाजाताहै और न किसी इन्द्रियकरके ही वह जाना जाताहै क्यों कि वाणीका वह विषय नहीं है अर्थात् वाणी तिसको इदन्ताकरके कथन नहीं करसकती है और मन तथा बुद्धिका भी विषय नहीं है एवंरूप उस ब्रह्मको तुम्हारे प्रति मैं किसप्रकार कथन करूं फिर वह जो ब्रह्म है सो ज्ञानरूपी अमृतसम रस आकाशवत् है सो मैं ही हूँ मेरेसे भिन्न दूसरा नहीं है ॥ १७ ॥

निर्भिन्नभिन्नरहितं परमार्थतत्त्व-
मन्तर्बहिर्न हि कथं परमार्थतत्त्वम् ।
प्राक्संभवं न च रतं न हि वस्तु किञ्चि-
ज्ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥१८॥

पदच्छेदः ।

निर्भिन्नभिन्नरहितम्, परमार्थतत्त्वम्, अन्तर्बहिः न, हि, कथम्, परमार्थतत्त्वम् । प्राक्संभवम्, न, च, रतम्, न, हि, वस्तु, किञ्चित्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निर्भिन्नभिन्नरहितम्=यह आत्मभेदन क्रियाका न कर्म है न कर्त्ता है
परमार्थतत्त्वम्=किन्तु परमार्थस्वरूप है
कथम्=किसीप्रकारसे भी
अन्तर्बहिः=भीतर बाहर किसीके भी
न हि=वह नहीं है क्योंकि वही
परमार्थतत्त्वम्=परमार्थ सार है भेदसे रहित है
प्राक्संभवम्=पूर्व होना फिर न होना यह बात भी
न च=उसमें नहीं है
रतम्=किसीमें वह लिप्त भी
न हि=नहीं है
वस्तु किञ्चित्=आत्मासे अतिरिक्त और कोई भी वस्तु
न हि=नहीं है फिर वह
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृतरूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमः=गगनकी उपमावाला है
अहम्=सोई आत्मा मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—भेदाभेदरहित, परमार्थतत्त्व, भीतर बाहर आदि व्यवहारसे शून्य है, पहले किसी समयमें भी उसका होना सम्भव नहीं, किसी पदार्थमें लिप्त भी वह नहीं है, कोई पदार्थ भी वह नहीं है, पर वह ज्ञानस्वरूप नाशरहित, सदा आनन्दमय और आकाशके समान व्यापक, निर्लिप्त है ॥१८॥

रागादिदोपरहितं त्वहमेव तत्त्वं
दैवादिदोषरहितं त्वहमेव तत्त्वम् ।
संसारशोकरहितं त्वहमेव तत्त्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ।

रागादिदोषरहितम्, तु, अहम्, एव, तत्त्वम्, दैवादिदोषरहितम्, तु, अहम्, एव, तत्त्वम् । संसारशोकरहितम्, तु, अहम्, एव तत्त्वम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

रागादिदोपरहितम्=रागादिदोपोंसे रहित
तु अहम्=पुनः मैं ही
एव=निश्चयकरके
तत्त्वम्=तत्त्व हूँ
तु अहम्=पुनः मैं ही
एव=निश्चयकरके
दैवादिदोषरहितम्=दैवादिदोषोंसे रहित हूँ
तत्त्वम्=तत्त्व हूँ
तु अहम्=पुनः मैं ही
एव=निश्चयकरके
संसारशोकरहितम्=संसारशोकसे रहित
तत्त्वम्=तत्त्व हूँ फिर
अहम्=मैं
ज्ञानामृतम्=ज्ञान अमृत रूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमः=गगनवत् हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—रागद्वेपादिक दोषोंसे रहित आत्मतत्त्व मैं हूँ और जितने कि, दैव आदि दोप हैं अर्थात् आधिदैविक जोकि देवतोंसे दुःख होते हैं और जोकि अग्नि आदिक भूतोंसे दुःख होतेहैं और जोकि ग्रहोंसे दुःख होतेहैं उन संपूर्ण दुःखोंसे मैं रहित हूँ और संसाररूपी शोकसे भी मैं रहित हूँ ज्ञानरूपी अमृत और एकरस गगनवत् मैं हूँ ॥ १९ ॥

स्थानत्रयं यदि च नेति कथं तुरीयं
कालत्रयं यदि च नेति कथं दिशश्च ।
शान्तं पदं हि परमं परमार्थतत्त्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २० ॥

पदच्छेदः ।

स्थानत्रयम्, यदि, च, न, इति, कथम्, तुरीयम्, कालत्रयम्, यदि, च, न, इति, कथम्, दिशः, च । शान्तम्, पदम्, हि, परमम्, परमार्थतत्त्वम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

यदि च=यदि च
स्थानत्रयम्=जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति रूप तीन स्थान
इति=इसप्रकारके
न=नहीं हैं तब
तुरीयम्=तुरीय स्थान
कथम्=कैसे होसकताहै ?
यदि च=यदि च
कालत्रयम्=भूत भविष्यत् वर्तमान यह तीन काल भी
इति न=इस ब्रह्ममें नहीं हैं
कथम्=कैसे फिर
दिशः=दिशा हैं
च=और वह ब्रह्म
शान्तं पदम्=शान्तरूप
हि=निश्चयकरके
परमम्=परम है
परमार्थतत्त्वम्=परमार्थसे तत्त्ववस्तु है
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत मैं हूँ
समरसम्=समरस
गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला मैं हूँ ।

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति ये तीन स्थान है सो ये तीनों स्थान भी चेतनआत्मामें वास्तवसे नहीं हैं तब तुरीय कैसे होसकता है ? किन्तु कदापि भी नहीं होसकताहै क्योंकि वह ब्रह्म शान्तरूप है परमार्थस्वरूप है । इसीवास्ते उसमें भूत, भविष्यत्, वर्तमान ये तीनोंकाल भी नहीं हैं और ज्ञानस्वरूप अमृतरूप एकरस आकाशवत् असंग है सो मैं हूं ॥ २० ॥

दीर्घो लघुः पुनरितीह न मे विभागो
विस्तारसंकटमितीह न मे विभागः ।
कोणं हि वर्तुलमितीह न मे विभागो
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥२१॥

पदच्छेदः ।

दीर्घः, लघुः, पुनः, इति, इह, न, मे, विभागः, विस्तार-संकटम्, इति, इह, न, मे, विभागः । कोणम्, हि, वर्तु-लम्, इति, इह, न, मे, विभागः, ज्ञानामृतम्, समर-सम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

पुनः=फिर यह
दीर्घः=दीर्घ है और
लघुः=यह लघु है
इति=इस प्रकारका
विभागः=विभाग भी
इह=इस लोकमें
मे न=मेरेमें नहीं होता
विस्तारसंकटम्=विस्तार और संकोच
इति=इस प्रकारका
विभागः=विभाग भी
इह=इस लोकमें
मे न=मेरेमें नहीं होताहै
हि=निश्चयकरके
वर्तुलम्=गोलाकार और
कोणम्=त्रिकोणादि
इति=इसप्रकारका भी
विभागः=विभाग
इह=इस लोकमें
मे न=मेरेमें नहीं होता
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूप अमृत
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=गगनवत् मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मेरेमें दीर्घ, लघु, अणु, ह्रस्वादिक भी विभाग नहीं है। फिर मेरेमें विस्तार और संकोचादिक विभाग भी नहीं हैं, और त्रिकोण चतुष्कोणादिक विभाग भी मेरेमें नहीं हैं, और गोलाकार विभाग भी मेरेमें नहीं हैं, क्योंकि मैं इनसे रहित ज्ञानअमृत रूप हूं॥ २१ ॥

मातापितादि तनयादि न मे कदाचि-
ज्जातं मृतं न च मनो न च मे कदाचित् ।
निर्व्याकुलं स्थिरमिदं परमार्थतत्त्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २२ ॥

पदच्छेदः ।

मातापितादि, तनयादि, न, मे, कदाचित्, जातम्, मृतम्, न, च, मनः, न, च, मे, कदाचित् । निर्व्याकुलम्, स्थिरम्, इदम्, परमार्थतत्त्वम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम्, ॥

पदार्थः ।

मे=मेरे
मातापितादि=माता और पिता आदिक
तनयादि=स्त्री आदिक भी
कदाचित्=कदाचित्
जातम् न=उत्पन्न नहीं हुए
मृतम्=और मरे भी
न च=नहीं हैं
मे मनः=मेरा मन
कदाचित्=कदाचित् भी
निर्व्याकुलम्=व्याकुलतासे रहित
स्थिरम्=और स्थिर भी
न च=नहीं है
इदम्=यही आत्मा
परमार्थतत्त्वम्=परमार्थसे सत्यवस्तु है
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृत है
समरसम्=समरस और
गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-मेरे माता पिता और स्त्री पुत्रादिक सब कदाचित् भी उत्पन्न नहीं हुए हैं, और न कदाचित् वह मेरे ही हैं, फिर मेरेमें व्याकुलता और स्थिरता भी नहीं है किन्तु मैं परमार्थरूप अमृतरूप आकाशकी उपमावाला हूँ ॥ २२ ॥

शुद्धं विशुद्धमविचारमनन्तरूपं
निर्लेपलेपमविचारमनन्तरूपम् ।
निष्खण्डखण्डमविचारमनन्तरूपं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥२३॥

पदच्छेदः ।

शुद्धम्, विशुद्धम्, अविचारम्, अनन्तरूपम्, निर्लेपलेपम्, अविचारम्, अनन्तरूपम् । निष्खण्डखण्डम्, अविचारम्, अनन्तरूपम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

शुद्धम्=शुद्ध है
विशुद्धम्=विशेषकरके शुद्ध है
अविचारम्=विचारसे रहित है
अनन्तरूपम्=अनन्तरूप है
निर्लेपलेपम्=निर्लेप होकरके भी सम्बन्धवाला है
अविचारम्=विचारसे रहित है
अनन्तरूपम्=अनन्तरूप है
निष्खण्डखण्डम्=नाशसे भी वह रहित है
अविचारम्=विचारसे रहित है
अनन्तरूपम्=अनन्तरूप भी है
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—मैं शुद्ध हूँ फिर विशेषकरके मैं शुद्ध हूँ, विचारसे मैं रहित हूँ अर्थात् मेरे स्वरूपमें विचारकी गम्य नहीं है । फिर निर्लेप जो कि आकाश उसके साथभी मेरा लेप अर्थात् सम्बन्ध नहीं है और फिर मैं नाशसे भी रहित हूँ, फिर मैं ज्ञानरूपी अमृत हूँ और एकरस आकाशवत् व्यापक हूँ ॥ २३ ॥

ब्रह्मादयः सुरगणाः कथमत्र सन्ति
स्वर्गादयो वसतयः कथमत्र सन्ति ।
यद्येकरूपममलं परमार्थतत्त्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥२४॥

पदच्छेदः ।

ब्रह्मादयः, सुरगणाः, कथम्, अत्र, सन्ति, स्वर्गादयः, वसतयः, कथम्, अत्र, सन्ति । यदि, एकरूपम्, अमलम्, परमार्थतत्त्वम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

यदि=यदि वह ब्रह्म
एकरूपम्=एकरूप
अमलम्=शुद्ध है
परमार्थतत्त्वम्=परमार्थस्वरूप भी है तब फिर
अत्र=इस ब्रह्ममें
ब्रह्मादयः=ब्रह्मासे आदि लेकरके
सुरगणाः=देवताके समूह
कथम्=किसप्रकार
सन्ति=होसकतेहैं और
स्वर्गादयः=स्वर्गादिक
वसतयः=बस्तियाँ भी
अत्र=इसमें
कथम्=किसप्रकार
सन्ति=होसकती हैं
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूप अमृत
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला मैं हूँ

दत्तात्रेयजी कहते हैं–यदि वह एक ही है और शुद्ध है, मायामलसे रहित है, परमार्थस्वरूप है तो फिर इस ब्रह्ममें ब्रह्मासे आदि लेकर सब देवतागण और स्वर्गादिक सब लोक यह परमार्थसे कैसे तिसमें सत्य होसकतेहैं किन्तु यह सब कदापि नहीं होसकतेहैं फिर वह ज्ञानरूप अमृतरूप एकरस आकाशवत् है सो मैं ही हूँ ॥ २४ ॥

निर्नेतिनेतिविमलो हि कथं वदामि
निःशेषशेषविमलो हि कथं वदामि ।
निर्लिङ्गलिंगविमलो हि कथं वदामि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २५ ॥

पदच्छेदः ।

निर्नेतिनेतिविमलः, हि, कथम्, वदामि, निःशेषशेषविमलः, हि, कथम्, वदामि । निर्लिङ्गलिङ्गविमलः, हि, कथम्, वदामि, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निर्नेतिनेतिविमलः=वह नेतिनेतिसे रहित नहीं है शुद्ध है
हि=निश्चयकरके
कथम्=किसप्रकार
वदामि=मैं कथन करूं
निःशेषशेषविमलः=शेषसे रहित शेष है शुद्ध है
हि=निश्चयकरके
कथम्=ऐसे भी किसप्रकार
वदामि=मैं कथन करूं
निर्लिङ्गलिंगविमलः=चिह्नसे रहित चिह्नवाला और शुद्ध
हि=निश्चयकरके
कथम्=किसप्रकार
वदामि=कथन करूं क्योंकि
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूप अमृतरूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं–कि, जो "नेतिनेति" यह श्रुति कहती है कि ब्रह्ममें तीन कालमें भी जगत् नहीं है सो ऐसा भी कथन नहीं बनताहै क्योंकि यदि प्रथम कहीं भी जगत् सत्य हो तब तो कहाजाय कि उसमें नहीं है जिसवास्ते जगत् तीनों कालोंमें कहीं भी सत्य नहीं है इसीवास्ते वह शुद्ध है और सबका शेष होनेसे वह विमल है, फिर वह चिह्नसे भी रहित है अर्थात् उसका कोई भी चिह्न नहीं है किन्तु वह ज्ञानस्वरूप अमृतरूप है सो मैं हूँ ॥ २५ ॥

निष्कर्मकर्मपरमं सततं करोमि
निःसंगसंगरहितं परमं विनोदम् ।
निर्देहदेहरहितं सततं विनोदं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २६ ॥

पदच्छेदः ।

निष्कर्मकर्मपरमम्, सततम्, करोमि, निःसंगसंगरहितम्, परमम्, विनोदम् । निर्देहदेहरहितम्, सततम्, विनोदम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निष्कर्मकर्मपरमम् = कर्मसे मैं रहित हूँ परमकर्मके
सततम् = निरन्तर ही
करोमि = मैं कर्ता हूँ
निःसंगसंगरहितम् = मैं निःसंगसे रहितको
परमम् = उत्कृष्ट
विनोदम् = उपभोग करता हूँ

निर्देहदेहरहितम् = देहसे रहित हूँ देहसे रहितको और
सततम् = निरन्तर
विनोदम् = हर्षको मैं प्राप्त होता हूँ
ज्ञानामृतम् = ज्ञानरूपी अमृतरूप
समरसम् = एकरस
गगनोपमोऽहम् = गगनकी उपमावाला मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—मैं कर्म रहित हूँ पर नानाप्रकारके कर्म करता हूँ। निस्सङ्ग सङ्गरहित हूँ पर सदा विनोद करता हूँ। मैं देहरहित हूँ पर सदा आनन्द रहता हूँ ज्ञानस्वरूप हूँ अमर हूँ सदा एक स्वरूप निर्लेप और व्यापक हूँ ॥२६॥

मायाप्रपञ्चरचना न च मे विकारः
कौटिल्यदम्भरचना न च मे विकारः।
सत्यानृतेति रचना न च मे विकारो
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २७ ॥

पदच्छेदः ।

मायाप्रपञ्चरचना, न, च, मे, विकारः, कौटिल्यदम्भरचना, न, च, मे, विकारः। सत्यानृतेति, रचना, न, च, मे, विकारः, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमोऽहम् ॥

पदार्थः ।

मायाप्रपञ्चरचना=मायारूपी प्रपञ्चकी जो रचना है सो	सत्यानृतेतिरचना=सत्य झूठ की रचना भी
मे विकारः=मेरा विकार	मे विकारः=मेरा विकार
न च=नहीं है	न च=नहीं है
कौटिल्यदम्भरचना=कुटिलता और दम्भकी रचना भी	ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
मे विकारः=मेरा कार्य	समरसम्=एकरस
न च=नहीं है	गगनोपमोऽहम्=गगनवत् मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—मायाके नाना प्रपञ्चोंकी रचना मेरा विकार नहीं है, कुटिलता कपट ढोंग आदि मेरे विकार नहीं हैं, सच और झूठका प्रपंच मेरा विकार नहीं है। मै ज्ञानस्वरूप, अमर, सदा समान रहनेवाला और व्यापक हूँ॥ २७ ॥

सन्ध्यादिकालरहितं न च मे वियोगो
ह्यन्तःप्रबोधरहितं बधिरो न मूकः ।
एवं विकल्परहितं न च भावशुद्धं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २८ ॥

पदच्छेदः ।

सन्ध्यादिकालरहितम्, न, च, मे, वियोगः, हि, अन्तः-प्रबोधरहितम्, बधिरः, न, मूकः । एवम्, विकल्परहितम्, न च, भावशुद्धम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

सन्ध्यादिकालरहितम् = सन्ध्यादिकालोंसेमैं रहित हूँ तबभी उनसे	नच=नहीं हूँ
मे वियोगः=मेरा वियोग	एवम्=इसप्रकारके
न च=नहीं है	विकल्परहितम्=विकल्पसे रहित हू
हि=निश्चयकरके	भावशुद्धम्=अन्तःकरणसे शुद्ध
अन्तः=भीतरसे	न च=नहीं हूँ
प्रबोधरहितम्=विशेष बोधसे रहित	ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
बधिरः=बहरा और	समरसम्=एकरस
मूकः=मूक भी मैं	गगनोपमोऽहम्=गगनकीउपमावाला मैंहूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जो चेतन कि संध्या, मध्याह्न और सायं इन तीनों कालोंसे रहित है अर्थात् कालकृत भेद भी जिसमें नहीं है तीनों कालोंमें एकरस है उसके साथ मेरा वियोग नहीं है अर्थात् वह मैं ही हूँ, फिर वह अन्तरके ज्ञानसे रहित है परन्तु वह बधिर और मूक नहीं है किन्तु वह ज्ञानस्वरूप है इसप्रकारादि विकल्पोंसे भी वह रहित है तो भी चित्तसे शुद्ध नहीं है क्योंकि उसका चित्त ही

नहीं है वह शुद्धस्वरूप है और ज्ञानरूपी अमृत है, एकरस आकाशवत् व्यापक भी है सोई मैं हूँ ॥ २८ ॥

निर्नाथनाथरहितं हि निराकुलं वै
निश्चित्तचित्तविगतं हि निराकुलं वै ।
संविद्धि सर्वविगतं हि निराकुलं वै
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २९ ॥

पदच्छेदः ।

निर्नाथनाथरहितम्, हि, निराकुलम्, वै, निश्चित्तचित्त-विगतम्, हि, निराकुलम्, वै । संविद्धि, सर्वविगतम्, हि, निराकुलम्, वै, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निर्नाथनाथरहितम्=स्वामीसे रहित हूँ और किसीका स्वामी भी मैं नहीं हूँ
हि=निश्चयकरके
निराकुलम्=व्याकुलतासे भी रहित हूँ
वै=निश्चयकरके
निश्चित्तचित्तविगतम्=चिन्तासे रहित हूँ और चित्तसे भी रहित हूँ
वै=निश्चयकरके
निराकुलम्=आकुलतासे रहित
संविद्धि=तू सम्यक् जान
सर्वविगतम्=सर्वसे रहित हूं
हि=निश्चयकरके
निराकुलम्=कुलसे भी रहित हूँ
वै=निश्चयकरके
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृतरूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=आकाशकी उपमावाला हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मेरा कोई भी नाथ अर्थात् स्वामी नहीं है और मैं भी किसका स्वामी नहीं हूँ क्योंकि मेरेसे भिन्न दूसरा कोई भी नहीं है फिर मैं कुलसे अर्थात् मूलकारणसे भी रहित हूं फिर चिन्तासे रहित हूं क्योंकि मेरा

चित्तही नहीं है फिर सर्वगत हूं परन्तु सर्वसे रहित हूं किन्तु ज्ञानरूपी अमृत एकरस आकाशवत् व्यापक हूँ ॥ २९ ॥

कान्तारमन्दिरमिदं हि कथं वदामि
संसिद्धसंशयमिदं हि कथं वदामि ।
एवं निरन्तरसमं हि निराकुलं वै
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३० ॥

पदच्छेदः ।

कान्तारमन्दिरम्, इदम्, हि, कथम्, वदामि, संसिद्धसंशयम्, इदम्, हि, कथम्, वदामि । एवम्, निरन्तरसमम्, हि, निराकुलम्, वै, ज्ञानामृतम्, समरसं, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

इदम्=यह
कान्तारमन्दिरम्=निजन वनरूप है
हि=निश्चयकरके
कथम्=किसप्रकार
वदामि=मैं कथन करूं
इदम्=यह
संसिद्धसंशयम्=संशयकरके सिद्ध है ऐसे
हि=निश्चयकरके
कथम्=किसप्रकार
वदामि=मैं कथन करूँ
एवम्=इसी प्रकार वह
निरन्तरसमम्=निरन्तर सम है
हि वै=निश्चयकरके
निराकुलम्=व्याकुलतासे रहित
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृतरूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—यह जगत् एक शून्य मन्दिररूप है वा सत्य असत्य आदि संशयोंकरके युक्त है निरन्तर सम है अर्थात् प्रवाहरूपकरके एकरस नित्य है वा निराकुल है अर्थात् मूलकारणसे रहित है । मैं इस जगत्को इस प्रकारका

कैसे कथन करूं ? क्योंकि मेरा तो इसके साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है किन्तु मैं ज्ञानरूपी अमृतरूप एकरस गगनवत् हूं ॥ ३० ॥

निर्जीवजीवरहितं सततं विभाति
निर्बीजबीजरहितं सततं विभाति ।
निर्वाणबन्धरहितं सततं विभाति
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३१ ॥

पदच्छेदः ।

निर्जीवजीवरहितम्, सततम्, विभाति, निर्बीजबीजरहितम्, सततम्, विभाति । निर्वाणबन्धरहितम्, सततम्, विभाति, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निर्जीवजीवरहितम् = निर्जीवसे और जीवसे रहित	विभाति=भान होता है
सततम्=निरन्तरही	निर्वाणबन्धरहितम् =सुखसे और बन्धनसे रहित
विभाति=भान होते हैं	सततम्=निरन्तरही
निर्बीजबीजरहितम् =निर्बीजसे और बीजसे रहित	विभाति=भान होताहै
सततम्=निरन्तरही	ज्ञानामृतम्=ज्ञान अमृतरूप
	समरसम्=एकरस
	गगनोपमोऽहम्=मैं गगनवत् हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—एक निर्जीव पदार्थ है, जिसमें जीव चेतन नहीं रहता है, अर्थात् जड माया दूसरा जीवरहित है, जिसमें जीवत्व धर्म नहीं है, किन्तु केवल व्यापक चेतन पदार्थ है, यह दोही पदाथ निरन्तरही मेरेको भान होते है, सो दोनोंमें चेतनही सत्य है, माया जड मिथ्या है, वह चेतन निर्बीज है, अर्थात् बीजकारणसे रहित है, और आपभी किसीका उपादान कारण नहीं है, ऐसाही

हमको निरन्तर भान होताहै, फिर वह निर्वाण है, अर्थात् मुक्तस्वरूप है, और बन्धनसे रहित है, एकरस ज्ञानरूप अमृतरूप है, सो मैं हूँ ॥ ३१ ॥

संभूतिवर्जितमिदं सततं विभाति
संसारवर्जितमिदं सततं विभाति ।
संहारवर्जितमिदं सततं विभाति
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३२ ॥

पदच्छेदः ।

संभूतिवर्जितम्, इदम्, सततम्, विभाति, संसारवर्जितम्, इदम्, सततम्, विभाति । संहारवर्जितम्, इदम्, सततम्, विभाति, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

इदम्=यह चेतन
संभूतिवर्जितम्=ऐश्वर्यसे रहित ही
सततम्=निरन्तर
विभाति=मेरेको भान होताहै और
संसारवर्जितम्=संसारसे रहित भी
इदम्=यह चेतन
सततम्=निरन्तर मेरेको
विभाति=भान होताहै
संहारवर्जितम्=नाशसे रहित
इदम्=यह ब्रह्म
सततम्=निरन्तरही
विभाति=मेरेको भान होताहै
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृतरूप मैं हूँ
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=आकाशकी उपमावाला मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह जो ब्रह्मचेतन है सो मेरेको निरन्तर ऐश्वर्यसे रहित भान होता है क्योंकि संसारमें जितना ऐश्वर्य है सो सब मायाका कार्य है और वह ब्रह्मचेतन माया और मायाके कार्यसे रहित है, फिर यह ब्रह्मचेतन जन्म मरणरूपी

संसारसे रहित मेरेको भान होता है क्योंकि व्यापक चेतनमें जन्मादिक नहीं बनते हैं, फिर यह व्यापक चेतन संहारसे भी रहित हैं, अर्थात् तिसका कभी भी नाश नहीं होताहै किन्तु वह ज्ञानरूपी अमृतरूप है, एकरस है, आकाशकी तरह व्यापक है सो ब्रह्म मैं ही हूँ ॥ ३१ ॥

उल्लेखमात्रमपि ते न च नामरूपं
निर्भिन्नभिन्नमपि ते न हि वस्तु किञ्चित्।
निर्लज्जमानस करोपि कथं विपादं
ज्ञानमृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३२ ॥

पदच्छेदः।

उल्लेखमात्रम्, अपि, ते, न, च, नामरूपम्, निर्भिन्न-भिन्नम्, अपि, ते, न, हि, वस्तु, किञ्चित्। निर्लज्जमानस, करोपि, कथम्, विपादम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गग-नोपमः, अहम् ॥

पदार्थः।

अपि=निश्चयकरके	न हि वस्तु=वस्तु नहीं है
ते=तुम्हारा	हे निर्लज्ज-मानस ! =लज्जासे रहित हो-कर हे मन !
उल्लेखमात्रम्=उल्लेख मात्र भी	कथम्=किसप्रकार
नामरूपम्=नाम और रूप	विपादम्=विपादको
न च=नहीं है	करोषि=तू कर्ता है क्योंकि तू
निर्भिन्नभिन्नम्=भेदसे रहितमें भेद	ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत हो
अपि=निश्चयकरके	समरसम्=एकरस
ते=तुम्हारेमें	गगनोपमोऽहम्=आकाशवत् मैं हूँ
किञ्चित्=किञ्चित् भी	

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी अपने चित्तसे कहतेहैं—उल्लेखमात्र भी अर्थात् किञ्चिन्मात्र भी तेरा नाम और रूप नहीं है फिर भेदसे रहित तेरे स्वरूपमें भेद करनेवाला कोईभी वस्तु

नहीं है, तब फिर हे निर्लज्जमानस अर्थात् लज्जासे रहित चित्त ! तू क्यों विषाद करता है वह चेतन ज्ञानरूपी अमृतरूप एकरस आकाशवत् व्यापक है सो मैं हूँ ॥ ३३ ॥

किं नाम रोदिषि सखे न जरा न मृत्युः
किं नाम रोदिषि सखे न च जन्मदुःखम् ।
किं नाम रोदिषि सखे न च ते विकारो
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३४ ॥

पदच्छेदः ।

किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, जरा, न, मृत्युः, किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, जन्मदुःखम् । किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, विकारः, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

सखे=हे सखे !
नाम=(इति प्रसिद्धम्)
किम्=किसवास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
न जरा=न तो जरा अवस्था है
न मृत्युः=न तो मृत्युही है
सखे=हे सखे !
किं नाम=किसवास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
जन्मदुःखम्=जन्मका दुःख भी
न च=नहीं है
सखे=हे सखे !
किं नाम=किसवास्ते
रोदिषि=तुम रुदन करते हो
ते=तुह्मारा
विकारः=विकार भी
न च=नहीं है क्योंकि
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
समरसम्=समरस
गगनोपमः=गगनकी उपमावाला आत्मा है
अहम्=सो मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अपने ही चित्तसे कहतेहैं—हे सखे ! किसलिये तू जरामृत्युके भयसे रुदन करताहै अर्थात् जरामृत्युके भयसे जो तुम्हारा रुदन करनाहै सो झूठा है क्योंकि तुम्हारा स्वरूप जरामृत्युके भयसे रहित है. यदि कहो कि, जन्मके दुःखसे मै रुदन करताहूँ तो उचित नहीं क्योंकि जन्मरहित होनेसे जन्मका दुःख भी तुमको नहीं है, फिर तुम्हारा कोई विकार अर्थात् कार्य भी नहीं है तव कार्यके लिये भी तुम्हारा रुदन करना व्यर्थ है क्योंकि ज्ञानरूपी अमृतरूप एकरस आकाशवत् व्यापक मैं हूँ ऐसा तुम निश्चय करो ॥ ३४ ॥

किं नाम रोदिषि सखे न च ते स्वरूपं
किं नाम रोदिषि सखे न च ते विरूपम् ।
किं नाम रोदिषि सखे न च ते वयांसि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३५ ॥

पदच्छेदः ।

किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, स्वरूपम्, किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, विरूपम्। किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, वयांसि, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम्

पदार्थः ।

सखे=हे सखे !
किं नाम=किसवास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
ते=तुम्हारा यह शरीर
स्वरूपम्=स्वरूप
न च=नहीं है
सखे=हे सखे !
किं नाम=किसवास्ते
रोदिषि=तू रुदन करताहै
ते=तुम्हारा
विरूपम्=रूप नष्ट होनेवाला भी
न च=नहीं है
सखे=हे सखे !
किन्नाम=किसवास्ते
रोदीष=तू रुदन करताहै
ते=तुह्मारे
वयांसि=आयु आदिक भी
न च=नहीं है क्योंकि वह
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृतरूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमः=आकाशकी उपमावाला है
अहम्=सो मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अपने ही आपसे कहतेहैं-हे सखे ! किसवास्ते तू शरीर या इन्द्रियोंके लिये रुदन करताहै ? यह तो तुम्हारा रूप नहीं है क्योंकि यह तो सब मिथ्या हैं तुम इनके साक्षी नित्य हो इसवास्ते रुदन करना तुम्हारा नहीं बनताहै, फिर तुम किसके लिये रुदन करतेहो ? नष्ट होनेवाला रूप भी नहीं है, फिर जिन आयु आदिकोंके वास्ते तुम रुदन करते हो यह भी तुम्हारे नहीं हैं क्योंकि तुम ज्ञानस्वरूप अमृतरूप गगनकी उपमावाले हो सो मैं हूँ ऐसा निश्चय करो ॥३५॥

किं नाम रोदिषि सखे न च ते वयांसि
किं नाम रोदिषि सखे न च ते मनांसि ।
किं नाम रोदिषि सखे न तवेन्द्रियाणि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३६ ॥

पदच्छेदः ।

किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, वयांसि, किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, मनांसि । किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, तव, इन्द्रियाणि, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

किं नाम=किसवास्ते
सखे=हे सखे !
रोदिषि=तुम रुदन करते हो
वयांसि=आयु आदिक भी
ते न च=तुम्हारे नहीं हैं
सखे=हे सखे !
किं नाम=किसके लिये
रोदिषि=तुम रुदन करतेहो
मनांसि=मनआदिक भी
न च ते=तुम्हारे नहीं हैं
सखे=हे सखे !
किं नाम=किसलिये
रोदिषि=तू रुदन करताहै
इन्द्रियाणि=यह इन्द्रिय भी सब
तव न=तुम्हारे नहीं हैं क्योंकि तुम
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृतरूप हो
समरसम्=एकरस
गगनोपमः=आकाशकी उपमावाला
अहम्=मैं हूं ऐसे तुम जानो

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे सखे ! तू जिन आयु आदिकोंके लिये रुदन करताहै कि, यह हमारे नष्ट होजायंगे सो यह तो तुम्हारे पहलेसे ही नही हैं क्योंकि तुम इनसे रहित हो फिर मनआदिकोंके वास्ते भी तुम्हारा रुदन करना व्यर्थ है क्योंकि तुम इनसे भी अलग हो और यह इन्द्रियादिक भी तुम्हारे नहीं हैं अतः इनके लिये भी तुम्हारा रुदन करना व्यर्थ है। तुम तो ऐसे निश्चय करो कि, ज्ञानस्वरूप अमृतरूप एकरस मैं हूँ ॥ ३६ ॥

किं नाम रोदिषि सखे न च तेऽस्ति कामः
किं नाम रोदिषि सखे न च ते प्रलोभः ।
किं नाम रोदिषि सखे न च ते विमोहो
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३७ ॥

पदच्छेदः ।

किम्, नाम, रोदषि, सखे, न, च, ते, अस्ति, कामः, किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, प्रलोभः । किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, विमोहः, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

सखे=हे सखे !
किं नाम=किसवास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
ते=तुम्हारे
कामः=इच्छा भी
सखे न च=हे सखे ! नहीं है
किं नाम=किसवास्ते
रोदिषि=रुदन करताहै
ते=तुम्हारा
प्रलोभः=लोभ भी
न च=नहीं है

सखे=हे सखे !
किं नाम=किसके वास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
ते=तुम्हारा
विमोहः=विमोह भी
न च=नहीं है क्योंकि
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृतरूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=आकाशवत् मैं हूं ऐसे तू जान ।

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हे सखे ! यह काम जो इच्छा है यह भी तुम्हारेमें नहीं है क्योंकि यह अन्तःकरणका धर्म है और यह लोभ भी तुम्हारेमें नहीं है और विशेष करके यह मोह भी तुम्हारेमें नहीं है यह भी सब अन्तःकरणके ही धर्म हैं, फिर तुम किसके वास्ते रुदन करतेहो तुम्हारा रुदन करना व्यर्थ है क्योंकि तुम असंग एकरस ज्ञानस्वरूप व्यापक हो ऐसे जानो ॥ ३७ ॥

ऐश्वर्यमिच्छसि कथं न च ते धनानि
ऐश्वर्यमिच्छसि कथं न च ते हि पत्नी ।
ऐश्वर्यमिच्छसि कथं न च ते ममेति
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥३८॥

पदच्छेदः ।

ऐश्वर्यम्, इच्छसि, कथम्, न, च, ते, धनानि, ऐश्वर्यम्, इच्छसि, कथम्, न, च, ते, हि, पत्नी । ऐश्वर्यम्, इच्छसि, कथम्, न, च, ते, मम, इति, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

ऐश्वर्यम्=ऐश्वर्यकी
कथम्=किसीप्रकार
इच्छसि=तू इच्छा करता है
ते=तुम्हारे
धनानि=धनादिक सब भी
न च=नहीं हैं
ऐश्वर्यम्=ऐश्वर्यकी
कथम्=किसप्रकार
इच्छसि=तूं इच्छा करता है
ते=तुम्हारी
पत्नी=स्त्री भी
न च हि=नहीं है
ऐश्वर्यम्=ऐश्वर्यकी
कथम्=किसप्रकार
इच्छसि=तू इच्छा करता है
ते=तुम्हारा
मम=मेरा भी
इति=इसप्रकारका व्यवहार भी
न च=नहीं है
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=आकाशवत् मैं हूँ ऐसे जानो

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह धनादिक तो सब तुम्हारे नहीं हैं फिर तुम ऐश्वर्यकी इच्छा कैसे करतेहो. फिर स्त्री भी वास्तवसे तुम्हारी नहीं है, वह भी अपने स्वार्थकी है और भी कोई पदार्थ तुम्हारा नहीं है उसमें ममताका करनाभी नहीं बनताहै इसीवास्ते ऐश्वर्यकी इच्छा करनी भी निरर्थक है क्योंकि तुम आप ही ऐश्वर्यस्वरूप ज्ञानरूपी अमृतरूप आकाशवत् निर्लेप हो ऐसे तुम अपनेको जानो ॥ ३८ ॥

लिङ्गप्रपञ्चजनुषी न च ते न मे च
निर्लज्जमानसमिदं च विभाति भिन्नम् ।
निर्भेदभेदरहितं न च ते न मे च
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३९ ॥

पदच्छेदः ।

लिङ्गप्रपञ्चजनुषी, न, च, ते, न, मे, च, निर्लज्जमानसम्, इदम्, च, विभाति, भिन्नम् । निर्भेदभेदरहितम्, न, च, ते, न, मे, च, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

लिङ्गप्रपञ्चजनुषी=चिह्नरूप प्रपंचकी उत्पत्ति
ते न च=तुम्हारेसे भी हुई नहीं
मे न च=हमारेसे भी हुई नहीं
निर्लज्जमानसम्=लज्जासे रहित मनमें
इदम्=यह रचना
भिन्नम्=भिन्न होकर
विभाति=प्रतीत होतीहै
च=और
निर्भेदभेदरहितम्=सामान्य विशेष भेदसे रहित होना भी
ते न च=तुम्हारा नहीं है और
मे न च=हमारा भी नहीं है क्योंकि यदि भेद कहीं सत्य हो तब तो हो सो तो नहीं है एकमें भेदाऽभेद व्यवहार ही नहीं बनता है क्योंकि वह
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला सो मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—नाना प्रकारके चिह्न जैसे पशु पक्षी मनुष्य आदि जातिके पहिचान करानेवाले लक्षण न तुम्हारे हैं न मेरे हैं यह सब लज्जाहीन मनको प्रतीत पडते हैं तुम्हारे और हमारे कोई साधारण अथवा विशेष भेद नहीं हैं मैं तो ज्ञान और अमृतस्वरूप सदा समान रहनेवाला आकाशतुल्य हूँ एकरस हूँ ॥ ३९ ॥

नो वाणुमात्रमपि ते हि विरागरूपं
नो वाणुमात्रमपि ते हि सरागरूपम् ।
नो वाणुमात्रमपि ते हि सकामरूपम्
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ४० ॥

पदच्छेदः ।

नो, वा, अणुमात्रम्, अपि, ते, हि, विरागरूपम्, नो, वा, अणुमात्रम्, अपि, ते, हि, सरागरूपम् । नो, वा, अणुमात्रम्, अपि, ते, हि, सकामरूपम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

वा=अथवा
हि अपि=निश्चय करके
ते=तुम्हारा
अणुमात्रम्=अणुमात्र भी
विरागरूपम्=विगतरागरूप
नो=नहीं है
वा=अथवा
अपि हि=निश्चयकरके
ते=तुम्हारा
अणुमात्रम्=अणुमात्र भी
सरागरूपम्=रागके सहित रूप
नो=नहीं है
वा=अथवा
अपि हि=निश्चयकरके
ते=तुम्हारा
अणुमात्रम्=अणुमात्र भी
सकामरूपम्=सकामरूप
नो=नहीं है किन्तु तुम
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृतरूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला मैं हूँ ऐसे जानो

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-हे चित्त ! तुम्हारा स्वरूप अणुमात्र भी विगतराग अर्थात् रागसे रहित नहीं है क्योंकि सर्वकाल आत्मामें तुम्हारा राग बना है, और फिर थोडा भी तुम्हारा स्वरूप रागके सहित भी नहीं है क्योंकि विषयोंमें तुम्हारा राग नहीं है और थोडी भी कामनाके सहित तुम्हारा स्वरूप नहीं है क्योंकि तुम ज्ञानरूपी अमृतरूप एकरस गगनकी उपमावाले हो ऐसा तुम चिन्तन करो कि, मैं ही ज्ञानरूप और अमृतादिरूपवाला हूँ ॥ ४० ॥

ध्याता न ते हि हृदये न च ते समाधि-
र्ध्यानं न ते हि हृदये न वहिः प्रदेशः ।
ध्येयं न चेति हृदये न हि वस्तु कालो
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ४१ ॥

पदच्छेदः ।

ध्याता, न, ते, हि, हृदये, न, च, ते, समाधिः, ध्यानम्, न, ते, हि, हृदये, न, वहिः, प्रदेशः । ध्येयम्, न, च, इति, हृदये, न, हि, वस्तु, कालः, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोमम:, अहम् ॥

पदार्थः ।

हि=निश्चयकरके
ते=तुम्हारे
हृदये=हृदयमें
ध्याता=ध्यानका कर्ता
न=नहीं है
ते=तुम्हारी
समाधिः=समाधि और
ध्यानम्=ध्यान भी
न च=नहीं है
हि=निश्चयकरके
ते=तुम्हारे
हृदये=हृदयमें
वहिः=बाह्य
प्रदेशः=प्रदेश भी
न च=नहीं है और
ध्येयम्=ध्येय भी
न=नहीं है और
इति=इसप्रकारका
कालः=काल भी कोई
वस्तु=वस्तु
न हि=नहीं है
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूप अमृतरूप
समरसम्=समरस
गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला मैं हूँ ऐसे जानो ।

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—तुम्हारे हृदयमें वास्तवसे न तो कोई ध्याता है अर्थात् ध्यानका कर्ता है और न कोई समाधि तथा ध्यान ही है और न कोई बाहर अन्तर देश ही है और न कोई कालवस्तु ही है किन्तु यह सब कल्पनामात्रही है, तुम्हारा स्वरूप इनसे भिन्न ज्ञानरूपी अमृतरूप एकरस आकाशवत् व्यापक है, ऐसा तुम निश्चय करो ॥ ४१ ॥

यत्सारभूतमखिलं कथितं मया ते
न त्वं न मे न महतो न गुरुर्न शिष्यः ।
स्वच्छन्दरूपसहजं परमार्थतत्त्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ४२ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, सारभूतम्, अखिलम्, कथितम्, मया, ते, न, त्वम्, न, मे, न, महतः, न, गुरुः, न, शिष्यः । स्वच्छन्दरूपसहजम्, परमार्थतत्त्वम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

मया=मैंने
ते=तुम्हारे प्रति
अखिलम्=संपूर्ण
यत्=जो
सारभूतम्=सारभूत
कथितम्=कथन किया है वह सब
त्वम् न=तेरा नहीं है
मे न=मेरे भी नहीं हैं
महतः=महत्तत्त्व भी
न=नहीं है
न गुरुः=न तो गुरू है
न शिष्यः=न शिष्य है
स्वच्छन्दरूपसहजम्=स्वच्छन्दरूप स्वाभाविक
परमार्थतत्त्वम्=परमार्थतत्त्वस्वरूप
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=आकाशवत् मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जोकि सारभूत था सो तो संपूर्ण तुम्हारे प्रति हमने कथन करदियाहै परन्तु यह सब वास्तवसे न तो तुम्हारा है न मेरा है और वास्तवसे तुम हम भी नहीं हैं और न कोई महत्तत्त्वादि हैं और न तो कोइ परमार्थसे गुरु है और न कोई शिष्य ही है किन्तु एक ही स्वच्छन्दरूप परमार्थस्वरूप तुम ही हो और ज्ञानस्वरूप अमृतरूप एकरस आकाशवत् मैं हूँ ऐसा तुम चिन्तन करो ॥४२॥

कथमिह परमार्थं तत्त्वमानन्दरूपं
कथमिह परमार्थं नैवमानन्दरूपम् ।
कथमिह परमार्थं ज्ञानविज्ञानरूपं
यदि परमहमेकं वर्तते व्योमरूपम् ॥ ४३ ॥

पदच्छेदः ।

कथम्, इह, परमार्थम्, तत्त्वम्, आनन्दरूपम्, कथम्, इह, परमार्थम्, न, एवम्, आनन्दरूपम् । कथम्, इह, परमार्थम्, ज्ञानविज्ञानरूपम्, यदि, परम्, अहम्, एकम्, वर्तते, व्योमरूपम् ॥

पदार्थः ।

इह=इस आत्मामें
परमार्थम्=परमार्थ और
तत्त्वम्=तत्त्व यथार्थ
कथम्=कैसे रहता हैं
आनन्दरूपम्=आनन्दरूप
कथम्=कैसे रहता है
इह=इस आत्मामें
आनन्दरूपम्=आनंदरूपता और
परमार्थम्=परमार्थता
न एवम्=इसप्रकार नहीं है

इह==इस आत्मामें
परमार्थम्=परमार्थ
ज्ञानविज्ञानरूपम्=ज्ञानविज्ञानरूपता
कथम्=किसप्रकार है किन्तु नहीं हैं
यदि=जबकि
परम्=उत्कृष्ट
एकम्=एक ही
व्योमरूपम्=व्यापक
अहम्=मैं
वर्तते=वर्तता हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यदि हम एक ही आकाशवत् व्यापक और श्रेष्ठ वर्तमान हैं तो फिर हमारे आत्मस्वरूपमें परमार्थतत्त्व कैसे वर्तताहै और आनन्दरूपता कैसे रहतीहै और परमार्थतत्त्व और आनन्दरूपता कैसे नहीं रहतीहै और ज्ञान-विज्ञानरूपता कैसे बनतीहै, किन्तु किसीप्रकारसे भी नहीं बनतीहै ॥ ४३ ॥

दहनपवनहीनं विद्धि विज्ञानमेक-
मवनिजलविहीनं विद्धि विज्ञानरूपम् ।
समगमनविहीनं विद्धि विज्ञानमेकं
गगनमिव विशालं विद्धि विज्ञानमेकम् ॥ ४४ ॥

पदच्छेदः ।

इह, न, पवनहीनम्, विद्धि, विज्ञानम्, एकम्, अवनि-जलविहीनम्, विद्धि, विज्ञानरूपम्, समगमनविहीनम्, विद्धि, विज्ञानम्, एकम्, गगनम्, इव, विशालम्, विद्धि, विज्ञानम्, एकम् ॥

पदार्थः ।

विज्ञानम्=विज्ञानस्वरूप आत्माको
एकम्=एकही
विद्धि=तू जान फिर तिसको
दहनपवनहीनम्=अग्नि और वायुसे भी रहित
विद्धि=तू जान फिर
अवनिजलविहीनम्=पृथिवी और जलसे रहित
एकम्=एक ही
विज्ञानम्=विज्ञानस्वरूप आत्माको
विद्धि=तू जान
समगमनविहीनम्=बराबर चलनेसे भी रहित और
विज्ञानम्=विज्ञानस्वरूप
एकम्=एक आत्माको ही
विद्धि=तू जान और
गगनम्=आकाशकी
इव=तरह
विशालम्=विस्तारवाला
विज्ञानम्=विज्ञानस्वरूप
एकम्=एक आत्माका
विद्धि=तू जान

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वह आत्मा ज्ञानस्वरूप आकाशवत् निर्मल पृथिवी, अग्नि, वायु, जलादिकोंसे रहित है और एक है और वह मेरा अपना आप है, ऐसे तुम जानो ॥ ४४ ॥

न शून्यरूपं न विशून्यरूपं
न शुद्धरूपं न विशुद्धरूपम् ।
रूपं विरूपं न भवामि किञ्चित्
स्वरूपरूपं परमार्थतत्त्वम् ॥ ४५ ॥

पदच्छेदः ।

न, शून्यरूपम्, न, विशून्यरूपम्, न, शुद्धरूपम्, न, विशुद्धरूपम् । रूपम्, विरूपम्, न, भवामि, किञ्चित्, स्वरूपरूपम्, परमार्थतत्त्वम् ॥

पदार्थः ।

शून्यरूपम्=शून्यरूप मैं	रूपम्=रूप और
न=नहीं हूँ	विरूपम्=विगतरूप भी
विशून्यरूपम्=विशेषकरकेशून्यरूपभी	किञ्चित्=किञ्चित्
न=मैं नहीं हूँ	न भवामि=मैं नहीं हूँ
शुद्धरूपम्=शुद्धरूप भी	स्वरूपरूपम्=स्वरूपका भी स्वरूप मैं हूँ
न=मैं नहीं हूँ	परमार्थ- तत्त्वम् } =परमार्थसे यथार्थरूप मैं हूँ
विशुद्धरूपम्=विशेषकरके शुद्धरूप भी	
न=मैं नहीं हूँ	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हम शून्यरूप नहीं हैं और विगतशून्यरूप भी नहीं हैं क्योंकि वह भी हमारेमें ही कल्पित है और किसी साधनकरके भी मैं शुद्ध नहीं होता हूँ और विगतशुद्धरूप भी मैं नहीं हूँ अर्थात् शुद्धतासे रहित भी हम

नहीं हैं और नीलपीतादिक रूपोंवाला और त्रिगतरूप भी मैं नहीं हूँ । तात्पर्य यह है कि नीलपीतादिक रूपोंवाला पदार्थ जड होताहै सो मैं नहीं हूँ क्योंकि मैं चेतन हूँ और विगतरूप शून्य होता है, सो मैं नहीं हूँ क्योंकि सच्चिदानन्दरूप मैं हूँ, और परमार्थस्वरूप भी मैं हूँ ॥ ४५ ॥

मुञ्च मुञ्च हि संसारं त्यागं मुञ्च हि सर्वथा।
त्यागात्यागविषं शुद्धममृतं सहजं ध्रुवम् ॥४६॥
इति श्रीदत्तात्रेयविरचितायामवधूतगीतायामात्मसंवित्त्युपदेशो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः।

मुञ्च, मुञ्च, हि, संसारम् त्यागम्, मुञ्च, हि, सर्वथा।
त्यागात्यागविषम्, शुद्धम्, अमृतम्, सहजम्, ध्रुवम् ॥

पदार्थः।

संसारम्=संसारको
हि=निश्चयकरके
मुञ्च=छोडदे
मुञ्च=छोडदे
त्यागम्=त्यागको भी
हि=निश्चयकरके
सर्वथा=सर्व प्रकारसे
मुञ्च=छोडदे
त्यागात्यागविषम्=त्याग और त्यागाभावरूपी विषको भी
मुञ्च=छोडदे क्योंकि
सहजम्=स्वभावसे ही
शुद्धम्=तू शुद्ध है
अमृतम्=अमृतरूप है
ध्रुवम्=नित्य है।

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे मुमुक्षुजन ! संसारका तू त्याग करदे फिर उस त्यागका भी त्याग करदे और त्याग तथा त्यागके अभावको भी विषरूप जानकरके त्यागदे । तात्पर्य यह है कि, त्यागका जोकि अभिमान है कि, मैं त्यागी हूँ यह भी बडा दुखदाई है, त्याग अत्याग दोनोंके अभिमानके त्यागनेसे ही पूरा सुख मिलताहै और तू स्वभावसे ही शुद्ध है अमृतरूप है और नित्य भी है तेरेसे

भिन्न दूसरा न कोई जीव है और न ईश्वर है किन्तु तू ही सर्वरूप सबका अधिष्ठान है, ऐसा निश्चय कर ॥ ४६ ॥

इति श्रीमदवधूतगीतायां स्वामिहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्दविरचित-परमानन्दीभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

अवधूत उवाच।

नावाहनं नैव विसर्जनं वा
पुष्पाणि पत्राणि कथं भवन्ति।
ध्यानानि मंत्राणि कथं भवन्ति
समासमं चैव शिवार्चनं च ॥ १ ॥

पदच्छेदः।

न, आवाहनम्, न, एव, विसर्जनम्, वा, पुष्पाणि, पत्राणि, कथम्, भवन्ति। ध्यानानि, मन्त्राणि, कथम्, भवन्ति, समासमम्, च, एव, शिवार्चनम्, च ॥

पदार्थः।

आवाहनम्=व्यापक चेतनका आवाहन ही
न=नहीं होताहै
एवं=निश्चयकरके
विसर्जनम्=विसर्जन भी
न=नहीं होसकता है
पुष्पाणि=पुष्प
वा=अथवा
पत्राणि=पत्र
कथम्=किसप्रकारसे
भवन्ति=समर्पण होतेहैं

ध्यानानि=ध्यान
च=और
मन्त्राणि=मन्त्र
कथम्=किसप्रकार
भवन्ति=होसकते हैं
च=और
एव=निश्चयकरके
समासमम्=सर्वत्र समदृष्टि रखनी ही
शिवार्चनम्=कल्याणरूप चेतनका पूजन है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जबकि वह चेतन आत्मा सर्वत्र व्यापक कल्याणस्वरूप ब्रह्माण्डभरमें एकही है, तब तिसका पूजन और आवाहन तथा विसर्जन कैसे बनसकताहे ? क्योंकि आवाहन और विसर्जन उसका होताहै जोकि एकदेशमें हो एकदेशमें नहीं अर्थात् परिच्छिन्न देहधारी हो ऐसा तो वह आत्मा नहीं है किन्तु सर्वत्र एकरस पूर्णहै इसवास्ते उसका आवाहन और विसर्जन भी नहीं होताहै और पूजा भी अपनेसे भिन्नकी होतीहै वह अपनेसे भिन्न भी नहींहै इसवास्ते उसकी पूजा भी नहीं होसकतीहै । फिर पुष्पपत्रादिक उसको दियेजातेहैं कि, जिसके घ्राणादिक इन्द्रियें हों देहधारीहो, सो उसके तो घ्राणादिक इन्द्रिय भी नहीं हैं इसवास्ते पुष्पपत्रादिकोंका समर्पण करना भी नहीं बनताहै अज्ञानी लोग कहदेतेहैं कि, वह वासनाका भूखा है परन्तु उनको वासनाके अर्थका ज्ञान नहीं होताहै । वासना नाम शुभ अशुभ कर्मोंके संस्कारोंका है सो संस्कार देहधारी परिच्छिन्नमें ही रहतेहैं, देहसे रहित व्यापकमें वासना नहीं रहतीहै । फिर जब कि, उसका आवाहन और विसर्जन ही नही बनताहै तब फिर ध्यान और मन्त्र कैसे बनसकतेहैं क्योंकि साकार वस्तुका ही ध्यान होसकताहै निराकारतक तो मन बुद्धि पहुँच ही नहीं सकतेहैं क्योंकि मन बुद्धि आदिक सब साकार हैं दूसरे जड हैं । जडचेतनका किसीप्रकारसे भी विषय नहीं होसकताहै इसवास्ते ध्यान और मन्त्र भी नहीं बनतेहैं अतएव सर्वत्र समदृष्टि करनी अर्थात् सबमें एक आत्माको जान करके किसी जीवको भी न सताना इसीका नाम शिवपूजन है ॥ १ ॥

न केवलं बन्धविबन्धमुक्तो
न केवलं शुद्धविशुद्धमुक्तः
न केवलं योगवियोगमुक्तः
स वै विमुक्तो गगनोपमोऽहम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

न, केवलम्, बन्धविबन्धमुक्तः, न, केवलम्, शुद्धविशुद्धमुक्तः । न, केवलम्, योगवियोगमुक्तः, सः, वै, विमुक्तः, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

केवलम्=केवल
बन्धविबन्धमुक्तः=सामान्यविशेष रूपी बन्धसे रहित
न=मैं नहीं हूँ किन्तु हूँ
केवलम्=केवल
शुद्धविशुद्धमुक्तः=सामान्यविशेषरूप शुद्धविशुद्धिसे रहित
न=मैं नहीं हूँ किन्तु हूँ
केवलम्=केवल
योगवियोगमुक्तः=सामान्यविशेषयोगसे रहित भी
न=मैं नहीं हूँ किन्तु हूँ
वै=निश्चयकरके
सः=सो मैं
विमुक्तः=मुक्तरूप हूँ
गगनोपमः=गगनकी उपमावाला
अहम्=मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—दोप्रकारका बन्ध है एक तो सामान्यरूपसे बन्ध है दूसरा विशेषरूपसे बंध है । प्राणिमात्रको जोकि अज्ञानकृत बन्ध है सो सामान्यबंध है और स्त्रीपुत्रादिकोंमें जो कि अहन्ताममतारूपी बन्ध है सो विशेष बंध है सो इन दोनों प्रकारके बन्धोंसे मुक्त नहीं हूँ किन्तु अवश्य मुक्त हूँ शुद्धि भी सामान्य विशेषरूपसे अर्थात् आभ्यन्तर और बाह्य भेदसे दो प्रकारकी है सो मैं दोनों प्रकारकी शुद्धिसे भी रहित हूँ क्योंकि मेरा आत्मा नित्य शुद्ध है और योगवियोगसे अर्थात् संयोगवियोगसे भी मैं रहित हूँ क्योंकि संयोगवियोग भी साकारके होते हैं निराकारके नहीं होतेहैं । सो मेरा आत्मा निराकार है किन्तु गगनकी उपमावाला मैं हूँ ॥ २ ॥

संजायते सर्वमिदं हि तथ्यं
संजायते सर्वमिदं वितथ्यम् ।
एवं विकल्पो मम नैव जातः
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

संजायते, सर्वम्, इदम्, हि, तथ्यम्, संजायते, सर्वम्, इदम्, वितथ्यम् । एवम्, विकल्पः, मम, नैव, जातः, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

इदम्=यह दृश्यमान	एवम्=इसप्रकारका
सर्वम्=संपूर्ण जगत्	विकल्पः=विकल्प
हि=निश्चयकरके	मम=मेरेको
तथ्यम्=सत्य ही	एव=निश्चय करके
संजायते=उत्पन्न होता है	न जातः=उत्पन्न नहीं हुआ क्योंकि
इदम्=यह दृश्यमान	अहम्=मैं
सर्वम्=संपूर्ण जगत्	अनामयः=रोगसे रहित और
वितथ्यम्=मिथ्या ही	स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे ही मुक्तरूप
संजायते=उत्पन्न होताहै	हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—यह जितना कि दृश्यमान जगत् है, सो संपूर्ण मिथ्या ही उत्पन्न होता है और फिर यह संपूर्ण जगत् विशेष करके ही मिथ्या उत्पन्न होताहै अथवा सत्य ही उत्पन्न होता है इसप्रकारका विकल्प भी मेरेको कभी भी उत्पन्न नहीं हुआ है क्योंकि मैं स्वरूपसे ही मुक्तरूप हूँ, रोगसे रहित हूँ, अर्थात् जन्ममरणादि रोग मेरेमें नहीं हैं ॥ ३ ॥

न साञ्जनं चैव निरञ्जनं वा
न चान्तरं वापि निरन्तरं वा
अन्तर्विभिन्नं न हि मे विभाति
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

न, साञ्जनम्, च, एव, निरञ्जनम्, वा, न, च, अन्तरम्, वा, अपि, निरन्तरम्, वा । अन्तर्विभिन्नम्, न, हि, मे, विभाति, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

साञ्जनम्=मायामलके सहित	न च=मैं नहीं हूँ
एव=निश्चयकरके	अन्तर्विभिन्नम्=व्यवधान और भेद भी
न=मैं नहीं हूँ	मे=मेरेको
च वा=और	न हि=नहीं
निरञ्जनम्=मायामलसे रहित भी	विभाति=भान होता है क्योंकि
न=मैं नहीं हूँ	स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे ही मैं मुक्तरूप हूँ
वा=अथवा	अनामयः=रोगसे रहित
वा अपि=निश्चयकरके	अहम्=मैं हूँ
अन्तरम्=व्यवधानसहित	
वा=अथवा	
निरन्तरम्=व्यवधान रहित भी	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हम मायारूपी अज्ञान जो मैलहै तिसके सहित नहीं हैं क्योंकि तीनों कालमें माया हमारेमें वास्तवसे नहीं है और मायारूपी मलसे रहितभी नहीं है क्योंकि हमारेमें ही माया कल्पित है, तब सहित और रहित कैसे हम कहसकतेहैं, किन्तु कदापि भी नहीं । फिर हमारेमें अन्तर अर्थात् व्यवधान और व्यवधानसे रहितपना भी नहीं बनता है । व्यवधान और भेद सर्वव्यापकमें हमको भान भी नहीं होताहै क्योंकि हम जन्मादिरोगसे रहित मुक्तस्वरूप हैं॥४॥

अबोधबोधो मम नैव जातो
बोधस्वरूपं मम नैव जातम् ।
निर्बोधबोधं च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अबोधबोधः, मम, न, एव, जातः, बोधस्वरूपम्, मम, नैव, जातम् । निर्बोधबोधम्, च, कथम्, वदामि स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

अबोधबोधः=बोध रहितका बोध	च=और
मम=मेरेको	निर्बोधबोधम्=बोधसे रहित बोधवाला अपनेको
एव=निश्चयकरके	कथम्=किसप्रकार
न जातः=नहीं हुआहै	वदामि=कहूँ क्योंकि मैं
बोधस्वरूपम्=मैं बोधस्वरूप हूँ ऐसा ज्ञान भी	स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे ही मुक्त रूप हूँ
मम=मेरेको	अनामयः=रोगसे रहित
एव=निश्चयकरके	अहम्=मैं हूँ
न जातम्=नहीं हुआ है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—बोधनाम ज्ञानका है (न बोधः अबोधः) न जो होवे ज्ञान उसीका नाम अबोध अर्थात् अज्ञान है सो अज्ञानका जो बोध ज्ञान सो भी मेरेको नहीं है क्योंकि अज्ञान जो है सो शुद्धस्वरूप आत्मामें तीनों कालमें नहीं है जो वस्तु तीनों कालमें है ही नहीं उसका ज्ञान कैसे होसकताहै किन्तु कदापि भी नहीं मैं ज्ञानस्वरूप हूँ ऐसा ज्ञान भी मेरेको नहीं हुआ ऐसा ज्ञान तब होवे जो ज्ञान मेरे भिन्न होवे जब ज्ञान अपनेसे भिन्न नहीं है तब हम कैसे कह सकते हैं कि मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, फिर मैं निर्बोधबोध हूँ अर्थात् ज्ञानसे रहित मैं ज्ञान हूँ ऐसे भी मैं कैसे हूँ ऐसा कथन भी नहीं बनताहै क्योंकि ज्ञानसे रहित तो जड होताहै वह ज्ञानरूप कैसे होसकताहै? इसवास्ते मैं मोक्षरूप रोगसे रहित हूँ॥५॥

न धर्मयुक्तो न च पापयुक्तो
न बन्धयुक्तो न च मोक्षयुक्तः ।

युक्तं त्वयुक्तं न च मे विभाति
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

न, धर्मयुक्तः न, च, पापयुक्तः, न, बन्धयुक्तः, न, च, मोक्षयुक्तः । युक्तम्, तु, अयुक्तम्, न, च, मे, विभाति, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

धर्मयुक्तः=धर्म करके युक्त भी मैं	युक्तम्=युक्तपना और
न=नहीं हूँ	अयुक्तम्=अयुक्तपना
पापयुक्तः=पापकरके भी युक्त मैं	मे=मेरेको
न च=नहीं हूँ	न च=नहीं
बन्धयुक्तः=बन्धकरके युक्त भी मैं	विभाति=भान होताहै
न=नहीं हूँ	स्वरूपनिर्वाणम्=मोक्षस्वरूप
मोक्षयुक्तः=मोक्षकरके भी युक्त मैं	अनामयः=रोगसे रहित
न=नहीं हूँ	अहम्=मैं हूँ
च=पुनः	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हम मुक्तरूप हैं और जन्ममरणादि रोगसे भी हम रहित हैं इसवास्ते हमको यह भान नहीं होताहै कि, हम धर्मकरके युक्त हैं या पापकरके युक्तहैं या बन्धकरके युक्त हैं या मोक्ष करके युक्त हैं क्योंकि जीवन्मुक्तकी दृष्टिमें एक चेतनसे अतिरिक्त अन्य नहीं दिखाताहै ॥ ६ ॥

परापरं वा न च मे कदाचि-
न्मध्यस्थभावो हि न चारिमित्रम् ।
हिताहितं चापि कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

परापरम्, वा, न, च, मे, कदाचित्, मध्यस्थभावः, हि, न, च, अरिमित्रम् । हिताहितम्, च, अपि, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

वा=अथवा
परापरम्=पर अपर भाव भी
मे=मेरा
कदाचित्= कदाचित् भी
न च=नहीं है
मध्यस्थ भावः =मध्यस्थभाव भी
हि=निश्चयकरके
न च=हमारा नहींहै
अरिमित्रम्=शत्रुमित्रभी
न च=मेरा नहीं है
च=और
हिताहितम्=हित अहित भी
अपि=निश्चयकरके
कथम्=कैसे मैं अपने
वदामि=कथन करो क्योंकि
स्वरूपनिर्वाणम् =स्वरूपसे जीवन्मुक्त और
अनामयोऽहम्=रोगसे रहित मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—कदाचित् भी पर अपर मेरेमें नहीं हैं क्योंकि मैं सर्वव्यापक हूँ और मध्यस्थभाव भी मेरेमें नहीं है क्योंकि मैं द्वैतसे रहित हूँ और मैं अपना हितकारी अनहितकारी भी नहीं कहसकताहूँ जब कि मेरेसे विना दूसरा कोई भी नहीं है तब अनहितकारी और हितकारी मैं कैसे कहूँ और द्वैतके अभाव होनेसे मेरा कोई शत्रु और मित्र भी नहीं है क्योंकि मैं जन्मादिक रोगसे रहित मुक्तस्वरूप हूँ ॥ ७ ॥

नोपासको नैवमुपास्यरूपं
न चोपदेशो न च मे क्रिया च ।
संवित्स्वरूपं च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

न, उपासकः, न, एवम्, उपास्यरूपम्, न, च, उपदेशः, न, च, मे, क्रिया, च । संवित्स्वरूपम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

उपासकः=उपासक
न=मैं नहीं हूँ
एवम्=इसीप्रकार
उपास्यरूपम्=उपास्यरूप भी
न=मैं नहीं हूँ
मे=मेरा
उपदेशः=उपदेश भी
न च=नहीं है
च=और
क्रिया=क्रिया भी
न च=मेरेमें नहीं है
च=और
संवित्स्वरूपम्=ज्ञानस्वरूप भी
कथम्=किसप्रकार
वदामि=मैं कथन करूं क्योंकि
स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे मुक्त
अनामयः=रोगसे रहित
अहम्=मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मेरेमें उपासक और उपास्यभाव भी नहीं है और उपदेश और क्रिया भी मेरेमें नहीं बनतीहै क्योंकि एक व्यापक चेतनमें. यह सब बातें नहीं हो सकती हैं, और व्यापकमें क्रिया भी नहीं होसकती है और मैं ज्ञानस्वरूप हूँ ऐसा कथन भी मेरेमें नहीं बनताहै क्योंकि ऐसा कथन भी भेदको लेकरके ही बनता है अभेदको लेकरके नहीं बनता है क्योंकि मैं संसाररोगसे रहित मुक्तस्वरूप हूँ ॥ ८ ॥

नो व्यापकं व्याप्यमिहास्ति किञ्चि-
न्न चालयं वापि निरालयं वा ।
अशून्यशून्यं च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

नो, व्यापकम्, व्याप्यम्, इह, अस्ति, किञ्चित्, न, च, आलयम्, वा, अपि, निरालयम्, वा । अशून्यशून्यम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

इह=इस आत्मा ब्रह्ममें
व्यापकम्=व्यापकभाव
व्याप्यम्=व्याप्यभाव
किञ्चित्=किञ्चित् भी
न अस्ति=नहीं है
वा=अथवा
आलयम्=आश्रयपना
वा=अथवा
निरालयम्=निराश्रयपना भी
न च=नहीं है
अशून्यशून्यम्=अशून्यपना तथा शून्यपना
कथम्=किसप्रकारसे
वदामि=मैं कहूँ क्योंकि
स्वरूपनिर्वाणम्=मुक्तस्वरूप और
अनामयः=रोगसे रहित
अहम्=मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—इस आत्मा ब्रह्ममें व्याप्यव्यापकभाव भी किञ्चित् नहीं है, क्योंकि एक ही पूर्णमें व्याप्यव्यापकभाव भी किसी प्रकारसे नहीं बनता है और आश्रय निराश्रयभाव भी एकमें नहीं बनताहै और शून्यका अभाव तथा शून्यता भी उसमें नहीं बनती है क्योंकि वह शून्यका भी साक्षी है सो मैं हूँ नित्यमुक्त और रोगसे रहित भी हूँ ॥ ९ ॥

न ग्राहको ग्राह्यकमेवकिञ्चि-
न्न कारणं वा मम नैव कार्यम् ॥
अचिन्त्यचिन्त्यं च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १० ॥

न, ग्राहकः, ग्राह्यकम्, एव, किञ्चित्, न, कारणम्, वा, मम, न, एव, कार्यम् । अचिन्त्यचिन्त्यम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

ग्राहकः=ग्रहण करनेवाला
एव=निश्चयकरके
मे=हमारा
किञ्चित्=किञ्चित् भी
न=नहीं है
वा=अथवा
मम=मेरा
एव=निश्चयकरके
कारणम्=कारण और
कार्यम्=कार्य भी
न=नहीं है
ग्राह्यकम्=ग्रहण होनेवाला
अचिन्त्यचिन्त्यम्=जोकि मनकरके भी नहींचितन किया जाताहै
कथम्=उसको किसप्रकार
वदामि=मैं कथन करूं क्योंकि
स्वरूपनिर्वाणम्=मुक्तस्वरूप और
अनामयः=संसाररोगसे रहित
अहम्=मैं हूँ ।

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हमारे ग्राह्य और ग्राहकभी किञ्चित् भी नहीं हैं और मेरेमें कारण कार्यभाव भी किञ्चित् नहीं है क्योंकि यह सब भेदमें ही बनतेहैं एक आत्मामें नहीं बनतेहैं । वह आत्मा कैसा है जिसका स्वरूप मन वाणी करके भी चिन्तन नहीं कियाजाता है उसका हम किसकरके कथन करें ? वह मुक्तस्वरूप संसाररोगसे रहित है सोई मैं हूँ ॥ १० ॥

न भेदकं वापि न चैव भेद्यं
न वेदकं वा मम नैव वेद्यम् ।
गतागतं तात कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

न, भेदकम्, वा, अपि, न, च, एव, भेद्यम्, न, वेदकम्, वा, मम, न, एव, वेद्यम् । गतागतम्, तात, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

अपि=निश्चयकरके
भेदकम्=मैं भेदका करनेवाला भी
न=नहीं हूँ
वा=अथवा
एव=निश्चयकरके
भेद्यम्=भेदके योग्य भी
न च=मैं नहीं हूँ
मम=मेरेमें
वेदकम्=जाननापना
वा=अथवा
वेद्यम्=जानने योग्य भी
न=नहीं है
तात=हे तात !
गतागतम्=जोकि व्यतीत होगया है जोकि आनेवाला है उसको
कथम्=किसप्रकार
वदामि=मैं कहूँ
स्वरूपनिर्वाणम्=मुक्तरूप
अनामयोऽहम्=रोगसे रहित मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—न तो कोई भेदक ही है अर्थात् भेद करनेवाला भी कोई नहीं है और न कोई पदार्थ भेद होनेके योग्य ही है और न कोई जाननेवाला ज्ञान ही है और न कोई जाननेके योग्य ही है हे तात ! वास्तवसे न तो कोई जाता ही है और न कोई आता ही है तब फिर हम कैसे जानेआनेको कहैं ? क्योंकि हमारेमें तो कुछ बनता ही नहीं है हम तो मुक्तस्वरूप संसार-रोगसे रहित हैं ॥ ११ ॥

न चास्ति देहो न च मे विदेहो
बुद्धिर्मनो मे न हि चेन्द्रियाणि ।
रागो विरागश्च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

न, च, अस्ति, देहः, न, च, मे, विदेहः, बुद्धिः, मनः, मे, नहि, च, इन्द्रियाणि । रागः, विरागः, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

मे=हमारा
देहः=शरीर भी
न च अस्ति=नहीं है
मे=हम
विदेहः=देहसे रहित भी
न च=नहीं है
च=और
बुद्धिः=बुद्धि तथा
मनः=मन भी
मे=मुझमें
न हि=नहीं है
च=और
इन्द्रियाणि=इन्द्रिय भी
मे न च=मेरे नहीं है
रागः=पदार्थोंमें राग
च=और
विरागः=विराग
कथम्=किसप्रकार
वदामि=मैं कथन करूं ?
स्वरूपनिर्वाणम्=मुक्तरूप
अनामयोऽहम्=रोगसे रहित मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हम न तो शरीरके सहित हैं और न शरीरसे रहित हैं क्योंकि आत्मा देहसे रहित तो है परन्तु संपूर्ण शरीर आत्मामें ही कल्पित हैं इन कल्पित शरीरोंको लेकर रहित भी हम नहीं हैं और मन बुद्धि इन्द्रियादिक भी हमारे नहीं हैं क्योंकि यह भी सब कल्पित हैं तब फिर मैं रागविरागको कैसे कथन करूं ? जबकि कोई उत्पत्तिवाला जड पदार्थ हमारा नहीं है तब हमारा किसीमें राग और किसीमें वैराग कहना भी नहीं बनता है किन्तु मैं मुक्तस्वरूप संसाररूपी रोगसे रहित हूँ ॥ १२ ॥

उल्लेखमात्रं न हि भिन्नमुच्चैरुल्लेखमात्रं न तिरोहितं वै ।
समासमंमित्रकथंवदामिस्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम्

पदच्छेदः ।

उल्लेखमात्रम्, न, हि, भिन्नम्, उच्चैः, उल्लेखमात्रम्, न, तिरोहितम्, वै । समासम्, मित्र, कथम्, वदामि, स्वरूप-निर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

उल्लेखमात्रम् =किञ्चिन्मात्र भी जीव ब्रह्मका	न वै=वह नहीं है
भिन्नम्=भेद	मित्र=हे मित्र !
न हि=नहीं है	समासमम्=सम असम
उच्चैः=बडेभारी	कथम्=कैसे
उल्लेखमात्रम्=उल्लेखमात्रकरके भी	वदामि=मैं तिसको कहूँ क्योंकि
तिरोहितम्=छिपाहुआ	स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे मुक्त
	अनामयोऽहम्=रोगसे रहित मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—वह आत्मा केवल उल्लेखमात्र ही नहीं है किन्तु उल्लेख-मात्रसे भी वह भिन्न है अर्थात् उसका लिखनामात्र ही नहीं होताहै किन्तु वह लिखनेमें भी नहीं आता है परन्तु ऊँचा लेख जोकि वेदका है उसीमें वह तिरो-हित छिपाहुआ है इसीवास्ते हे मित्र ! उसको सम असम भी हम नहीं कह-सकते हैं, क्योंकि वह आश्चर्यरूप है सोई मैं हूँ ॥ १३ ॥

जितेन्द्रियोऽहं त्वजितेन्द्रियो वा
न संयमो मे नियमो न जातः ।
जयाजयौ मित्र कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ।

जितेन्द्रियः, अहम्, तु, अजितेन्द्रियः, वा, न, संयमः, मे, नियमः, न, जातः । जयाऽजयौ, मित्र, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

तु=पुनःफिर	नियमः=नियम
जितेन्द्रियः=जितेन्द्रिय	न जातः=नहीं उत्पन्न हुआ है
अहम्=मैं	मित्र=हे मित्र !
वा=अथवा	जयाजयौ=जय अजयको
अजितेन्द्रियः=अजितेन्द्रिय	कथम्=किसप्रकार
न=नहीं हूँ	वदामि=कथन करूं क्योंकि
मे=मुझको	स्वरूपनिर्वाणम्=मुक्तरूप
संयमः=संयम	निरामयोऽहम्=रोगसे रहित मैं हूँ

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहतेहैं—मैं जितेन्द्रिय भी हूँ और अजितेन्द्रिय भी मैं हूं। तात्पर्य यह है कि, इन्द्रियोंवाला इन्द्रियोंको जीतकरके जितेन्द्रिय कहाजाताहै और इन्द्रियोंको न जीतकरके अजितेन्द्रिय भी कहाजाता है जिसके इन्द्रिय ही नहीं हैं वह अर्थसेही जितेन्द्रिय अजितेन्द्रिय भी कहाजाताहै क्योंकि इन्द्रियोंसे विना जितेन्द्रिय अजितेन्द्रिय व्यवहार ही नहीं होता है और संयम नियम व्यवहार भी नहीं होताहै इसवास्ते स्वामीजी कहते हैं कि, हमारा संयम नियम भी नहीं हुआहै और जय अजयको भी मैं नहीं कहसकताहूँ क्योंकि यह भी इन्द्रियोंके ही अधीन है किन्तु मैं मुक्तस्वरूप संसाररोगसे रहित हूँ ॥ १४ ॥

अमूर्तमूर्तिर्न च मे कदाचि-
दाद्यन्तमध्यं न च मे कदाचित् ।
बलाबलं मित्र कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १५ ॥

पदच्छेदः ।

अमूर्तमूर्तिः, न, च, मे, कदाचित्, आद्यन्तमध्यम्, न, च, मे, कदाचित् । बलाबलम्, मित्र, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

मे=मैं	मित्र=हे मित्र !
अमूर्तमूर्तिः=मूर्तिसे रहित मूर्तिवाला	बलाबलम्=बल और निर्बलताको
कदाचित्=कदाचित् भी	अहम्=मैं
न च=नहीं हूँ	कथम्=किसप्रकार
आद्यन्त-मध्यम्=आदि और अन्त तथा मध्य भी	वदामि=कथन करूं क्योंकि
कदाचित्=कदाचित्	स्वरूपनिर्वाणम्=मैं स्वरूपसे ही मुक्तस्वरूप
मे=मेरे	अनामयोऽहम्=संसाररोगसे रहित हूँ
न च=नहीं है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—मैं मूर्तिसे रहित और मूर्तिवाला भी नहीं हूँ क्योंकि ऐसा व्यवहार भी द्वैतको ही लेकरके होताहै और न मेरा कोई आदि मध्य और अन्त ही है क्योंकि यह सब व्यवहार भी द्वैतको ही लेकरके होताहै अद्वैतमें नहीं होताहै, हे मित्र ! न तो मैं बली हूँ, और न मैं दुर्बल हूँ, दूसरेकी अपेक्षासे बली दुर्बल व्यवहार भी होताहै एकमें नहीं होताहै सो मैं मुक्तस्वरूप संसाररूपी रोगसे रहित हूँ ॥ १९ ॥

मृतामृतं वापि विषाविषं च
संजायते तात न मे कदाचित् ।
अशुद्धशुद्धं च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ।

मृतामृतम्, वा, अपि, विषाविषम्, च, संजायते, तात, न, मे, कदाचित् । अशुद्धशुद्धम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

तात=हे तात !	न=नहीं होतेहैं
मे=मेरेको	अशुद्ध- शुद्धं च =अशुद्ध और शुद्ध
मृतामृतम्=मरना न मरना	कथम्=किसप्रकार
वा=अथवा	वदामि=मैं कथन करूं क्योंकि
अपि=निश्चयकरके	स्वरूपनिर्वाणम्=मुक्तस्वरूप
विषाविषं च=विष और अविष	अहम्=मैं
संजायते=उत्पन्न	अनामयः=रोगसे रहित हूँ
कदाचित्=कदाचित् भी	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हे तात ! मेरेमें मरना, जीना, विष, अमृत और शुद्ध अशुद्ध यह सब कदाचित् भी नहीं हैं क्योंकि मैं मुक्तरूप संसाररोगसे रहित हूँ ॥१६॥

स्वप्नः प्रबोधो न च योगमुद्रा
नक्तं दिवा वापि न मे कदाचित् ।
अतुर्यतुर्यं च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ।

स्वप्नः, प्रबोधः, न, च, योगमुद्रा, नक्तम्, दिवा, वा, अपि, न, मे, कदाचित् । अतुर्यतुर्यम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

मे=मेरेको
वा अपि=निश्चयकरके
कदाचित्=कदाचित् भी
स्वप्नः=स्वप्न और
प्रबोधः=जाग्रत्
न च=नहीं होते हैं
योगमुद्रा=योगकी मुद्रा और
नक्तम्=रात्रि और
दिवा=दिन भी नहीं होतेहैं
अतुर्यतुर्यञ्च=अतुरीया और तुरीयाको
कथम्=किसप्रकार
वदामि=मैं कहूँ
स्वरूपनिर्वाणम्=मुक्तस्वरूप
अहम्=मैं
अनामयः=रोगसे रहित हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—न तो मेरेमें जाग्रत् है, न स्वप्न है, न योगमुद्रा है, न दिन है, न रात्रि है, न तुरीया है, न अतुरीया है, क्योंकि मैं मुक्तरूप हूँ ॥ १७ ॥

संविद्धि मां सर्वविसर्वमुक्तं
माया विमाया न च मे कदाचित् ।
संध्यादिकं कर्म कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १८ ॥

पदच्छेदः ।

संविद्धि, माम्, सर्वविसर्वमुक्तम्, माया, विमाया, न, च, मे, कदाचित् । सन्ध्यादिकम्, कर्म, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

माम्=मुझको	न च=नहीं व्यापसकते हैं
सर्वविसर्वमुक्तम्=सर्व और सर्वसे रहित	सन्ध्यादिकम्=सन्ध्याआदिक
संविद्धि=सम्यक् जान तू	कर्म=कर्म
मे=मुझको	कथम्=किसप्रकार
माया विमाया=माया विमाया	वदामि=मैं कथन करूं
कदाचित्=कदाचित् भी	स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे मुक्त
	अनामयोऽहम्=रोगसे रहित हूँ ।

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं-मुझको संपूर्ण प्रपञ्चके सहित और संपूर्ण प्रपंचसे रहित भलेप्रकारसे तू जान और मायासे और मायाके कार्यसे भी रहित जान और सन्ध्याआदिक कर्मोंके करनेसे भी तू मेरेको रहित ही जान क्योंकि, मैं मुक्त-स्वरूप संसाररोगसे रहित हूँ ॥ १८ ॥

संविद्धि मां सर्वसमाधियुक्तं
संविद्धि मां लक्ष्यविलक्ष्यमुक्तम् ।
योगं वियोगं च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ।

संविद्धि, माम्, सर्वसमाधियुक्तम्, संविद्धि, माम्, लक्ष्य-विलक्ष्यमुक्तम् । योगम्, वियोगं, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

माम्=मेरेको	योगं च=योग और
सर्वसमाधि-युक्तम्=संपूर्ण समाधिकरके युक्त	वियोगम्=वियोगको
संविद्धि=सम्यक् तू जान	कथम्=किसप्रकार
माम्=मेरेको	वदामि=मैं कहूँ
लक्ष्यविलक्ष्य-मुक्तम्=लक्ष्य विलक्ष्य-रहित	स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे मुक्त और
संविद्धि=सम्यक् जान तू	अनामयः=संसाररोगसे रहित
	अहम्=मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—संपूर्ण समाधियोंकरके मैं युक्त हूँ, क्योंकि सबका लय मेरेमें ही होताहै और संपूर्ण इन्द्रियादिकोंके लक्ष्यभाव और विगतलक्ष्यभावसे भी मैं रहित हूँ और योगकरके संयोग और वियोग इन दोनोंसे भी मैं रहित हूँ क्योंकि एकमें संयोग वियोग दोनों बनते नहीं हैं क्योंकि मैं मुक्तस्वरूप जन्म-मरणरूपी रोगसे रहित हूँ ॥ १९ ॥

मूर्खोऽपि नाहं न च पण्डितोऽहं
मौनं विमौनं न च मे कदाचित् ।
तर्कं वितर्कञ्च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ २० ॥

पदच्छेदः ।

मूर्खः, अपि, न, अहम्, न, च, पण्डितः, अहम्, मौनम्, विमौनम्, न, च, मे, कदाचित् । तर्कम्, वितर्कम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

अपि=निश्चयकरके	मे=मुझमें
अहम्=मैं	कदाचित्=कदाचित् भी
मूर्ख=मूर्ख	न च=नहीं है
न=नहीं हूँ	तर्क च=तर्क और
अहम्=मैं	वितर्कम्=वितर्कको
पण्डितः=पंडित भी	कथम्=किसप्रकार
न च=नहीं हूँ	वदामि=मैं कथन करूं
मौनम्=मौनपना	स्वरूपनिर्वाणम्=मुक्तस्वरूप मै
विमौनम्=विगतमौन	अनामयोऽहम्=रोगसे रहित हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते है—मै मूर्ख नहीं, मैं पण्डित भी नहीं, मैं मितभाषी तथा मौनी भी नहीं हूँ । तर्क वितर्क कुछ भी मै नहीं करता, मैं आत्माराम और रोगरहित ब्रह्म हूँ ॥ २० ॥

पिता च माता च कुलं न जाति-
र्जन्मादिमृत्युर्न च मे कदाचित् ।
स्नेहं विमोहं च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः ।

पिता, च, माता, च, कुलम्, न, जातिः, जन्मादि-मृत्युः, न, च, मे, कदाचित् । स्नेहम्, विमोहम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

पिता च=पिता और
माता च=माता और
कुलम्=कुल और
जातिः=जाति भी
न=मेरे नहीं है
जन्मादि-मृत्युः } =जन्मादिक और मृत्युभी
मे=मेरे
कदाचित्=कदाचित् भी
न च=नहीं हैं
स्नेहं च=स्नेह और
विमोहम्=विमोहको
कथम्=किसप्रकार
वदामि=मैं कथन करूं क्योंकि
स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे मुक्त
अनामयोऽहम् } =रोगसे रहित मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं-हमारा न कोई पिता है, न माताहै, न कुल है, न जाति है, क्योंकि जिसके जन्मादिक होतेहैं उसीके ही माता पिता और कुल तथा जाति भी होतेहैं हमारे तो जन्मादिक और मृत्यु आदिक ही नहीं हैं इसीवास्ते न तो हमारा किसीके साथ स्नेह ही है और न विशेष करके मोहही है क्योंकि हम मुक्तस्वरूप जन्मादिरोगसे रहित हैं ॥ २१ ॥

अस्तं गतो नैव सदोदितोऽहं
तेजो वितेजो न च मे कदाचित् ।
सन्ध्यादिकं कर्म कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ २२ ॥

पदच्छेदः ।

अस्तम्, गतः, न, एव, सदा, उदितः, अहम्, तेजः, वितेजः, न, च, मे, कदाचित् । सन्ध्यादिकम्, कर्म, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

अहम्=मैं
अस्तं गतः=लयभावको
न=प्राप्त नहीं हूँ
एव=निश्चयकरके
सदा=सर्वकाल
उदितः=उदित हूँ
मे=हमारा
तेजः=तेज भी
वितेजः=तेजरहित भी
कदाचित्=कदाचित्
न च=नहीं है तव फिर
सन्ध्यादिकम्=सन्ध्यादिक
कर्म=कर्मको
कथम्=किसप्रकार
वदामि=मैं कथन करूं जो मेरे है क्योंकि
स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे मुक्त
अनामयोऽहम्=रोगसे रहित मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं कभी भी लयभावको प्राप्त नहीं होताहूँ किन्तु सर्वकाल मेरा उदय ही बना रहताहै और सामान्यतेज और विशेषतेज भी कदाचित् मेरेको प्रकाश नहीं करसकतेहैं तव फिर सन्ध्यादिक जोकि मन इन्द्रियादिकोंके कर्म हैं यह मेरे क्या सुधार कर सकतेहैं ? किन्तु कुछ भी नहीं क्योंकि मैं बन्धनसे रहित नित्य मुक्तरूप हूँ ॥ २२ ॥

असंशयं विद्धि निराकुलं मा-
मसंशयं विद्धि निरन्तरं माम् ।
असंशयं विद्धि निरञ्जनं मां
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ २३ ॥

पदच्छेदः ।

असंशयम्, विद्धि, निराकुलम्, माम्, असंशयम्, विद्धि, निरन्तरम्, माम् । असंशयम्, विद्धि, निरञ्जनम्, माम्, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

माम्=मेरेको	विद्धि=जान तू
असंशयम्=संशयसे रहित	असंशयम्=संशयसे रहित
निराकुलम्=मूलकारणसे रहित	माम्=मेरको
विद्धि=जान तू	निरञ्जनम्=मायामलसे रहित
माम्=मेरेको	विद्धि=जान तू
असंशयम्=संशयसे रहित	स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे मुक्त
निरन्तरम्=एकरस	अनामयोऽहम्=रोगसे रहित हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—वास्तवसे मेरा कोई कुल नहीं है अर्थात् उत्पत्तिका मूल कारण मेरा कोई भी नहीं है और मैं एकरस ही सदैव रहताहूँ, घटने बढनेसे भी मैं रहित मायामलसे रहित हूँ किन्तु मुक्तस्वरूप ज्योंका त्यों हूँ ॥ २३ ॥

ध्यानानि सर्वाणि परित्यजन्ति
शुभाशुभं कर्म परित्यजन्ति ।
त्यागामृतं तात पिबन्ति धीराः
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ २४ ॥

पदच्छेदः ।

ध्यानानि, सर्वाणि, परित्यजन्ति, शुभाशुभम्, कर्म, परित्यजन्ति । त्यागामृतम्, तात, पिबन्ति, धीराः, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

धीराः=धीरपुरुष	परित्यजन्ति=त्यागही करदेते हैं
सर्वाणि=संपूर्ण	त्यागामृतम्=त्यागरूपी अमृतको ही
ध्यानानि=ध्यानोंका	तात=तात
परित्यजन्ति=त्याग करदेते हैं	पिबन्ति=पान करते हैं
शुभाशुभम्=शुभ अशुभ	स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे ही मुक्त
कर्म=कर्मकाभी	अनामयोऽहम्=संसाररोगसेमैं रहितहूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—ज्योंकि धीरपुरुष आत्मज्ञानी हैं अर्थात् जीवन्मुक्त है आत्मानन्दमें ही मग्न हैं वह संपूर्ण ध्यान और कर्मोंका त्याग ही करदेते हैं और त्यागरूपी अमृतको ही पान करते हैं और अपनेको मुक्तरूप मानते हैं ॥ २४ ॥

विन्दति विन्दति नहि नहि यत्र
च्छन्दो लक्षणं नहि नहि तत्र ।
समरसमग्नो भावितपूतः
प्रलपति तत्त्वं परमवधूतः ॥ २५ ॥

इति श्रीदत्तात्रेयविरचितायामवधूतगीतायां स्वामिकार्तिकसंवादे स्वात्मसंवित्त्युपदेशे स्वरूपनिर्णयो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

विन्दति, विन्दति, न, हि, न, हि, यत्र, छन्दः, लक्षणम्, न, हि, न, हि, तत्र । समरसमग्नः, भावितपूतः, प्रलपति, तत्त्वम्, परम्, अवधूतः ॥

पदार्थः ।

परम्=श्रेष्ठ
अवधूतः=अवधूत
समरसमग्नः=एकरस ब्रह्ममें मग्नहुआ२
तत्र=तिस ब्रह्ममें
नहि नहि=नहि लभता है २
यत्र=जिस ब्रह्ममें
छन्दः=छन्द
लक्षणं=लक्षण
विन्दति=लभता है कुछ
विन्दति=लभता है
नहि नहि=नहीं लभता है नहीं लभता है
भावितपूतः=पवित्र हुआ २
तत्त्वम्—आत्मतत्त्वको ही
प्रलपति=कथन करता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जीवन्मुक्त श्रेष्ठ अवधूत एकरस आत्मा आनन्दमें ही जोकि मग्न है सो तिस आत्मामें कुछ भी नहीं देखता न लमता है । जिस चेतनमें छन्दरूप मन्त्रादिक भी वास्तवसे नहीं हैं क्योंकि वह आनन्दघन है इसवास्ते वह आत्मतत्त्वका ही कथन करता है क्योंकि आत्मासे भिन्न उसकी दृष्टिमें दूसरा कोई भी नहीं है ॥ २९ ॥

इतिश्रीमदवधूतगीतायां स्वामिहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्दविरचित-
परमानन्दीभाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ५.

अवधूत उवाच ।

ओमिति गदितं गगनसमं
तत्र परापरसारविचार इति ।
अविलासविलासनिराकरणं
कथमक्षरबिन्दुसमुच्चरणम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ओम्, इति, गदितम्, गगनसमम्, तत्, न, परापरसार-विचारः, इति । अविलासविलासनिराकरणम्, कथम्, अक्षरबिन्दुसमुच्चरणम् ॥

पदार्थः ।

ओम्, इति=ओम् इसप्रकार
गदितम्=उच्चारण किया हुआ
गगनसमम्=आकाशके वह तुल्य है
परापरसारविचारः=पर अपर और सारका विचार
इति=इसप्रकार
तत्, न=सो नहीं है
अविलासविलासनिराकरणम्=विलासका अभाव और विलासका निराकरण रूप है
अक्षरबिन्दुसमुच्चरणम्=अक्षरबिन्दुके सहितका उच्चारण
कथम्=किसप्रकार होगा ?

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—ओम् इसप्रकार जोकि उच्चारण कियाजाताहै सो ओंकार ब्रह्मरूप है, क्योंकि ब्रह्मका वाचक है, वाच्यवाचकका किसीप्रकारसे भी भेद नहीं होसकताहै, इसीवास्ते गगनतुल्य व्यापक है । उसी ओंकारमें जगत्‌रूपी विलासके अभावका और विलासका निराकरण भी है अर्थात् ओंकाररूपी ब्रह्ममें जगत् तीनों कालमें नहीं बनताहै तब बिन्दुकरके युक्त अक्षरका भी उच्चारण किसकरके बनेगा किन्तु कदापि भी नहीं बनेगा केवल अद्वैतही सिद्ध होताहै ॥ १ ॥

इति तत्त्वमसिप्रभृतिश्रुतिभिः
प्रतिपादितमात्मनि तत्त्वमसि ।
त्वमुपाधिविवर्जितसर्वसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

इति, तत्त्वमसिप्रभृतिश्रुतिभिः, प्रतिपादितम्, आत्मनि, तत्त्वम्, असि । त्वम्, उपाधिविवर्जितसर्वसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

इति=इसप्रकार	त्वम्=तू ही
तत्त्वमसिप्रभृतिश्रुतिभिः=" तत्त्वमसि " प्रभृति श्रुतियोंकरके	उपाधिविवर्जितसर्वसमम्=उपाधिसे रहित सर्वमें सम है
प्रतिपादितम्=प्रतिपादन किया जो है	किमु=किसवास्ते
आत्मनि=आत्मामें	रोदिषि=तू रुदन करता है
तत्त्वमसि=सो तू है	मानस=हे मन !
	सर्वसमम्=सर्वमें तू सम है ।

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—तत्त्वमसि इत्यादि महावाक्योंने प्रतिपादन किया है कि जीव ही ब्रह्म है और वास्तवसे उपाधिसे रहित सर्वमें एक ही आत्मा है, जिन उपाधियोंने भेद कर रक्खा है सो सब अज्ञानकार्य हैं अज्ञानके नष्ट होजानेपर उनका भी नाश होजाताहै इसवास्ते भेदको लेकरके रुदन करना नहीं बनताहै ॥ २ ॥

अधऊर्ध्वविवर्जितसर्वसमं
बहिरन्तरवर्जितसर्वसमम् ।
यदि चैकविवर्जितसर्वसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अधऊर्ध्वविवर्जितसर्वसमम्, बहिरन्तरवर्जितसर्वसमम् । यदि, च, एकविवर्जितसर्वसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

अधऊर्ध्वविवर्जितसर्वसमम् =नीचे ऊपरसे रहित सबमें सम है	एकविवर्जितसर्वसमम् =एकसे रहित सबमें सम है
बहिरन्तरवर्जितसर्वसमम् =बाहर और भीतरसे रहित सबमें सम है	किमु=किसवास्ते
यदि च=यदि और	रोदिषि=रुदन करताहै ?
	मानस=हे मन !
	सर्वसमम्=सर्वमें सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—नीचे और ऊपरके विभागसे रहित वह चेतन सर्वमें सम है अर्थात् बराबर ही है, न्यून अधिक किसीमें भी वह नहीं है और बाहर और भीतरके व्यवहारसे भी वह रहित है और एकत्वभावसे भी रहित है किन्तु एकरस सर्वमें बराबर ही है तब फिर किसवास्ते रुदन करताहै ॥ ३ ॥

न हि कल्पितकल्पविचार इति
न हि कारणकार्यविचार इति ।
पदसंधिविवर्जितसर्वसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, कल्पितकल्पविचारः, इति, न, हि, कारणकार्य-विचारः, इति । पदसन्धिविवर्जितसर्वसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

कल्पितकल्पविचारः इति = यह कल्पित है यह कल्प है इसप्रकारका विचार भी	पदसन्धिविवर्जितसर्वसमम् = पद और सन्धि-से रहित वह सबमें सम ही है
न हि = नहीं है	किमु = किसवास्ते
कारणकार्यविचारः इति = यह कारण है यह कार्य है इस प्रकारका विचार भी	रोदिषि = रुदन करताहै तू
न हि = उसमें नहीं है	मानस = हे मन !
	सर्वसमम् = वह तो सर्वमें सम ही है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—उस चेतनब्रह्ममें यह वस्तु कल्पित है, यह कल्प है इस प्रकारका विचार नहीं हो सकता है । यह कार्य है, यह कारण है इस प्रकारका विचार करना भी तिसमें नहीं बनता है और पद संधि व्यवहारसे भी रहित है क्योंकि वह द्वैतसे रहित है किन्तु सर्वत्र एकरस ही है तब फिर तुम किसवास्ते रुदन करतेहो क्योंकि तुम्हारेसे भिन्न तो कोई भी दूसरा नहीं है ॥ ४ ॥

नहि बोधविबोधसमाधिरिति
नहि देशविदेशसमाधिरिति ।

नहि कालविकालसमाधिरिति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, बोधविबोधसमाधिः, इति, न, हि, देशविदेशसमाधिः इति । न, हि, कालविकालसमाधिः, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

बोधविबोधसमाधिः=सामान्य विशेष ज्ञानवाली समाधि भी
इति=इसप्रकारकी
न हि=उसमें नहीं है और फिर उसमें
देशविदेशसमाधिः=सामान्य विशेषरूप करके देश विदेशकी समाधि भी
इति=इसप्रकार
न हि=उसमें नहीं है ।
कालविकालसमाधिः=सामान्य विशेषरूप करके काल और विकालकी समाधि भी
इति=इसप्रकार
न हि=उसमें नहीं है
किमु=किसवास्ते
मानस=हे मन ! तू
रोदिषि=रुदन करता है
सर्वसमम्=वह सर्वत्र समरूप है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जब कि वह ब्रह्मचेतन द्वैतसे रहित एक ही है तब फिर यह ज्ञान है, यह अज्ञान है, यह देश है, यह विदेश है, यह काल है, यह काल नहीं है, इस प्रकारका विचार भी उसमें नहीं बनता है । तब फिर जो जीव इसप्रकारके विचारके वास्ते रुदन करते हैं उनका रुदन करना व्यर्थ है ॥ ५ ॥

न हि कुम्भनभो न हि कुम्भ इति
न हि जीववपुर्न हि जीव इति ।
न हि कारणकार्यविभाग इति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, कुम्भनभः, न, हि, कुम्भः, इति, न, हि, जीववपुः, न, हि, जीवः, इति । न, हि, कारणकार्यविभागः, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

कुम्भनभः=घटाकाश
न हि=नहीं है
कुम्भः=घट भी
न हि=नहीं है
इति=इसीप्रकार
जीववपुः=जीवका शरीर भी
न हि=नहीं है
जीवः=जीव भी
इति=इसप्रकार
न हि=नहीं है
कारणकार्यविभागः इति=यह कार्य है यह कारण है इसप्रकारका विभाग भी
न हि=नहीं है
किमु=किसवास्ते
मानस=हे मन !
रोदिषि=रुदन करताहै
सर्वसमम्=वह सर्वत्र समरूप है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—उस व्यापक आनन्दघन चेतनमें जबकि घट ही तीनों कालमें नहीं है तब घटाकाशका तो अर्थसे ही अभाव सिद्ध होताहै इसीतरह वास्तवसे जीव ही उसमें नहीं है तब जीवका शरीर कैसे हो सकता है ? जबकि कार्यकारण व्यवहार ही उसमें नहीं है तब कार्यकारणके नाशके वास्ते रुदन करना कहां बनताहै ? क्योंकि वह एकरस सर्वत्र सम है ॥ ६ ॥

इह सर्वनिरन्तरमोक्षपदं
लघुदीर्घविचारविहीन इति ।
न हि वर्तुलकोणविभाग इति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

इह, सर्वनिरन्तरमोक्षपदम्, लघुदीर्घविचारविहीनः, इति । न, हिं, वर्तुलकोणविभागः, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

इह=इसप्रकरणमें (आत्मा)	इति=इसप्रकारका व्यवहार भी उसमें
सर्वनिरन्तर-मोक्षपदम् =सर्व एकरस मोक्ष-पद है और	न हि=नहीं है तब फिर
लघुदीर्घवि-चारविहीनः =लघु दीर्घ विचारसे रहित	किमु=किसके लिये
इति=इसप्रकारका व्यवहार और	मानस=हे मन !
वर्तुलकोण-विभागः =गोलका और कोण-का विभागवाला	रोदिषि=तुम रुदन करतेहो
	सर्वसमम्=वह सर्वत्र सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—निराकार निरवयव मोक्षरूप आत्मामें लघु दीर्घका विचार और गोलाकार तथा त्रिकोणादि विभागका विचार भी नहीं बनता है क्योंकि वह इनसे रहित है ॥ ७ ॥

इह शून्यविशून्यविहीन इति
इह शुद्धविशुद्धविहीन इति ।
इह सर्वविसर्वविहीन इति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

इह, शून्यविशून्यविहीनः, इति, इह, शुद्धविशुद्धविहीनः, इति । इह, सर्वविसर्वविहीनः, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

इह=इस आत्मामें
शून्यविशून्य-विहीनः=शून्य और विशेष शून्यसे हीन
इति=इस प्रकारका व्यवहार और
इह=इस आत्मामें
शुद्धविशुद्ध-विहीनः=शुद्ध और विशेष शुद्धसे हीन
इति=इस प्रकारका व्यवहार और
इह=इसी आत्मामें
सर्वविसर्व-विहीनः=सर्व और विशेषकरके सर्वसे हीन
इति=इस प्रकारका व्यवहार भी नहीं होताहै
किमु=किसवास्ते फिर तुम
मानस=हे मन !
रोदिषि=रुदन करते हो
सर्वसमम्=वह सर्व सम है.

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—यदि कोई ऐसी आशंका करे कि, यदि आत्मा निराकार निरवयव है तो शून्य ही सिद्ध होगा क्योंकि शून्य भी निराकार निरवयव ही होताहै । इसका यह उत्तर है कि, उसमें शून्य अशून्य विचार नहीं बनता है क्योंकि वह शून्यका भी साक्षी है और एकरस व्यापक होनेसे बाहर और भीतर तथा संधिका भी विचार उसमें नहीं होसकताहै और सर्वसे भिन्न अभिन्नका विचार भी उसमें नहीं होसकताहै तब तुम्हारा रुदन करना व्यर्थ है ॥८॥

न हि भिन्नविभिन्नविचार इति
बहिरन्तरसन्धिविचार इति ।
अरिमित्रविवर्जितसर्वसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, भिन्नविभिन्नविचारः, इति, बहिः, अन्तरसन्धिविचारः, इति । अरिमित्रविवर्जितसर्वसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

भिन्नविभिन्न- विचारः =भिन्न है या भिन्न नहींहै सो विचारभी	नहि=नहीं होसकताहै क्योंकि वह
इति=इसप्रकारका	अरिमित्रविव- जितसर्वसमम् =शत्रुमित्र भी उसे रहित सर्वमें सम है
न हि=नहीं होसकताहै	किमु=फिर किसवास्ते
बहिः=वह बाहर है या	रोदिपि=तू रुदन करताहै ?
अन्तरसन्धि- विचारः =या भीतरकी सन्धिमें विचार भी	मानस=हे मन !
इति=इस प्रकारका	सर्वसमम्=तू सर्वमें सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—उस निर्गुण आत्मामें ऐसा विचार भी नहीं होसकताहै कि, वह जगत्से भिन्न है या अभिन्न है बाहर है या इसके भीतर है या इसकी संधिमें है क्योंकि वह सर्वत्र एकरस सम है तब ऐसा विचार कैसे होसकता है ? कदापि नहीं, फिर वह शत्रु मित्रके भावसे भी रहित है क्योंकि उसमें शत्रु मित्र भाव भी नहीं बनसकताहै तब फिर तुम्हारा रुदन भी व्यर्थ है ॥९॥

न हि शिष्यविशिष्यसरूप इति
न चराचरभेदविचार इति ।
इह सर्वनिरन्तरमोक्षपदं
किमु रोदिपि मानस सर्वसमम् ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, शिष्यविशिष्यसरूपः, इति, न, चराचरभेदविचारः, इति । इह, सर्वनिरन्तरमोक्षपदम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

शिष्यविशिष्यसरूपः=शिष्य और शिष्यामात्रसरूप भी	इह=इस प्रकरणमें [वह आत्मा]
न हि=वह नहीं है	सर्वनिरन्तरमोक्षपदम्=सर्वका निरन्तर मोक्षरूपी पद है
इति=इसीप्रकार	किमु=किसवास्ते
चराचरभेदविचारः=चर अचरके भेदका विचार भी	रोदिषि=तू रुदन करता है
न=नहीं है	मानस=हे मन !
	सर्वसमम्=वह सबमें सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—उसमें शिष्यभाव और शिष्यसे रहित भाव अर्थात् विगतशिष्यभाव दोनों नहीं हैं और चर अचरके भेदके विचारसे भी वह रहित है अर्थात् चर अचर जगत्का उससे भेद है या अभेद है ऐसा विचार भी उसमें नहीं बनताहै क्योंकि यह जगत् सब वास्तवसे सत्य नहीं है किन्तु कल्पित है और सर्वका आश्रयभूत वह मोक्षरूप है, तब फिर जीव तू क्यों रुदन करता है ॥ १० ॥

ननु रूपविरूपविहीन इति
ननु भिन्नविभिन्नविहीन इति ।
ननु सर्गविसर्गविहीन इति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

ननु, रूपविरूपविहीनः, इति, ननु, भिन्नविभिन्नविहीनः, इति । ननु, सर्गविसर्गविहीनः, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

ननु=निश्चयकरके	ननु=निश्चयकरके
रूपविरूपविहीनः=वह रूपसे और विगतरूपसे भी रहित है	सर्गविसर्गविहीनः=उत्पत्ति और प्रलयसे भी वह रहित है
इति=इसप्रकार	इति=इसप्रकार जानकर
ननु=निश्चयकरके	किमु=किसवास्ते तू
भिन्नविभिन्नविहीनः=भेदसे और विगत भेदसे भी वह रहित है	मानस=हे मन !
	रोदिषि=रुदन करता है
इति=इसप्रकार	सर्वसमम्=वह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—वह चेतन आत्मारूपसे और रूपके अभावसे भी रहित है और भेदसे तथा भेदके अभावसे भी वह रहित है जगत्की उत्पत्ति और प्रलयसे भी वह रहित है क्योंकि वास्तवसे उसमें न तो जगत्की उत्पत्ति होती है और न प्रलय ही होताहै, तब फिर तू किसवास्ते रुदन करता है क्योंकि वास्तवसे तू ही ब्रह्मरूप है ॥ ११ ॥

न गुणागुणपाशनिबन्ध इति
मृतजीवनकर्म करोति कथम् ।
इति शुद्धनिरञ्जनसर्वसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

न, गुणागुणपाशनिबन्धः, इति, मृतजीवनकर्म, करोति, कथम् । इति, शुद्धनिरञ्जनसर्वसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

गुणागुणपाशनिबन्धः = गुण और निर्गुणकी पाशका सम्बन्ध उसको	कथम् = किसप्रकार होसकता है
न = नहीं है	शुद्धनिरञ्जनसर्वसमम् = वह शुद्ध निरञ्जन सबमें सम है तब फिर
इति = इसप्रकार	किमु = किसवास्ते
मृतजीवनकर्म = मृतकके और जीवनके कर्मको	मानस = हे मन !
करोति इति = करता है वह	रोदिषि = तू रुदन करता है
	सर्वसमम् = वह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जो आत्मा ब्रह्म शुद्ध है, मायामलसे रहित है, निरञ्जन है, उसमें सगुणपना और निर्गुणपना और मृतजीवनके कर्मोंका करना यह सब कैसे बनसकता है किन्तु कदापि नहीं बनताहै । फिर तिस आत्माकी प्राप्तिके वास्ते कैसे तुम रुदन करते हो वह तो सबमें सम है तुम्हारा अपना आप है ॥ १२ ॥

इह भावविभावविहीन इति
इह कामविकामविहीन इति ।
इह बोधतमं खलु मोक्षसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

इह, भावविभावविहीनः, इति, इह, कामविकामविहीनः, इति । इह, बोधतमम्, खलु, मोक्षसमम्, किमु, मानस, रोदिषि, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

इह=यहां वह आत्मा	इह=यहां वह आत्मा
भावविभावविहीनः=भाव अभावसे हीन है	बोधसमम्=ज्ञान स्वरूप है
	खलु=निश्चयकरके
इति=इसीप्रकार	मोक्षसमम्=मोक्षस्वरूप वह है उसके लिये
इह=यहां वह आत्मा	किमु=किसवास्ते
कामविकामविहीनः=काम और कामके अभावसे रहित है	मानस=हे मन !
	रोदिषि=तू रुदन करताहै
इति=इसीप्रकार	सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे मन ! इस जगत्में साधारण, असाधारण भाव तथा इच्छाओंसे आत्मा रहित है अर्थात् नानाप्रकारके संकल्प और विकल्पोंसे चित्त भ्रान्त रहताहै यह वडा अज्ञान है, आत्मा शुद्धज्ञान स्वरूप है यदि इस प्रकार विवेक बुद्धिका आश्रय करै तो मोक्षके तुल्य सुख मिले । हे मन ! तुमको हानि, लाभ, सुख, दुःख सब कामोंमें समान रहना चाहिये, व्यर्थ दुःखकर क्यों रोते हो ॥ १३ ॥

इह तत्त्वनिरन्तरतत्त्वमिति
न हि सन्धिविसन्धिविहीन इति ।
यदि सर्वविवर्जितसर्वसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ।

इह, तत्त्वनिरन्तरतत्त्वम्, इति, न, हि, सन्धिविसन्धिविहीनः, इति । यदि, सर्वविवर्जितसर्वसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः।

इह=इस ब्रह्म आत्मामें

तत्त्वनिरन्तर- तत्त्वम् =यह तत्त्व हैं या निरन्तर ही तत्त्व है

इति=इसप्रकारका व्यवहार

न हि=नहीं होताहै और

संधिविसन्धि- विहीनः =सन्धि और सन्धि-के अभावसे हीन है

इति=इसप्रकारका भी व्यवहार नहीं होता है,

यदि=जब कि वह

सर्वविवर्जित- सर्वसमम् =सर्वसे रहित और सर्वमें सम है फिर

किमु=किसवास्ते

मानस=हे मन !

रोदिषि=तू रुदन करता है

सर्वसमम्=यह सब सम है,

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--इस आत्मामें तत्त्वोंका कभी २ सम्बन्ध होताहै या सब तत्त्व उसमें रहतेहैं ? इसमें किसीका मेल भी है या यह किसीके मेलवाला नहीं है जो शास्त्रोंसे यह सिद्ध होजाय कि यह सभी उपाधियोंसे रहित है, सब पदार्थोंमें एकही रूपसे रहनेवाला है तो हे मन ! सुखदुःखरहित सदा एकरस आत्माके लिये क्यों रोताहै ॥ १४ ॥

अनिकेतकुटी परिवारसमम्
इह सङ्गविसङ्गविहीनपरम्।
इह बोधविबोधविहीनपरं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १५ ॥

पदच्छेदः।

अनिकेतकुटी, परिवारसमम्, इह, सङ्गविसङ्गविहीन-परम्। इह, बोधविबोधविहीनपरम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

अनिकेतकुटी	=अनियत वास, कुटी होनी	इह	=ब्रह्म
परिवारसमम्	=परिवारके तुल्य सबको जानना	बोधविबोधविहीनपरम्	=ज्ञान अज्ञानसे रहित श्रेष्ठ है
इह	=यह ब्रह्म	किमु	=किसवास्ते
सङ्गविसङ्गविहीनपरम्	=सङ्गविसङ्गसे रहित परम पवित्र है	रोदिषि	=तू रुदन करता है
		मानस	=हे मन !
		तर्वसमम्	=वह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते है—निराश्रय होकर रहे, एकान्त झोपडीमें रहे । अथवा परिवारसे भरापूरा रहे सब समान है । थोडे साथमें रहे, अधिक समूहमें रहे अथवा एकान्तवास करे, थोडा बोध हो, अधिक ज्ञान हो अथवा ज्ञानशून्य हो आत्मा सदा एकाकार है हे मन ! उसके लिये तू क्यों रोता है ॥ १९ ॥

अविकारविकारमसत्यमिति
अविलक्षविलक्षमसत्यमिति ।
यदि केवलमात्मनि सत्यमिति
किमु रोदषि मानस सर्वसमम् ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ।

अविकारविकारम्, असत्यम्, इति, अविलक्षविलक्षम्, असत्यम्, इति । यदि, केवलम्, आत्मनि, सत्यम्, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

अविकार- विकारम् = विकारसे रहितका विकार यह जगत् है	यदि=जबकि
इति=इसीवास्ते	केवलम्=केवल
असत्यम्=असद्रूप है	आत्मनि=आत्मा ही
अविलक्ष- विलक्षम् =अलक्षका यह लक्ष है	सत्यम्=सद्रूप है
इति=इसीवास्ते	इति=इसीवास्ते
असत्यम्=असत्य है	किमु=किसवास्ते रुदन करता है।
	मानस=हे मन !
	रोदिषि=तू रुदन करता है
	सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—आत्माका कभी विकार नहीं होता, आत्मासे यह नित्य और संसार हुआ जो मानतेहैं यह ठीक नहीं क्योंकि आत्मा नित्य और संसार अनित्य है। जिसका कोई आकार नहीं उस आत्माका यह साकार जगत् हो नहीं सकता इससे यह अनित्य है। जबकि एक आत्माही सत्य है तो हे मन! तू क्यों रोता है ॥ १६ ॥

इह सर्वतमं खलु जीव इति
इह सर्वनिरन्तरजीव इति ।
इह केवलनिश्चलजीव इति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ।

इह, सर्वतमम्, खलु, जीवः, इति, इह, सर्वनिरन्तर-जीवः, इति । इह, केवलनिश्चलजीवः, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

इह=इस संसारमें
खलु=निश्चयकरके
सर्वसमम्=सर्वसे उत्तम
जीवः=जीव हैं
इति=इसप्रकार
इह=इस संसारमें
सर्वनिरन्तरजीवः=सर्वके निरन्तर जीव ही है
इति=इस प्रकार
इह=इस संसारमें
केवलनिश्चलजीवः=केवल निश्चल जीव ही है फिर
इति=इसप्रकार
किमु=किसवास्ते
मानस=हे मन !
रोदिषि=तुम रुदन करते हो
सर्वसमम्=यह सब सम हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं–यदि ऐसा समझते हो कि, संसारमें प्रत्यक्ष नाना प्रकारके जीव देखनेमें आतेहैं वे ही सब कुछ हैं उनसे और आत्मासे कुछ दोष नहीं है, तब भी कुछ दोष नहीं जीव उस परमात्माका ही अंश है, अविद्या आदि वासनाओंसे मुक्तजीव और परमात्मामें कुछ भेद नहीं होता, ऐसा होनेपर भी हे मन ! तुम वृथा क्यों रोते हो ॥ १७ ॥

अविवेकविवेकमबोध इति
अविकल्पविकल्पमबोध इति ।
यदि चैकनिरन्तरबोध इति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १८ ॥

पदच्छेदः ।

अविवेकविवेकम्, अबोधः, इति, अविकल्पविकल्पम्, अबोधः, इति । यदि, च, एकनिरन्तरबोधः, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

अविवेक-विवेकम्=विवेकका अभाव और विवेक	यदि च=यदि च
अबोधः=अबोध ही है	एकनिरन्त-रबोधः=एक निरन्तर बोध-मात्र ही है
इति=इसीप्रकार	इति=इसप्रकार जान फिर
अविकल्प-विकल्पम्=विकल्पका अभाव और विकल्प	किमु=किसके वास्ते
अबोधः=अबोध ही है	मानस=हे मन !
इति=इसी प्रकार जानो	रोदिषि=तुम रुदन करते हो
	सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—ईश्वरका कभी विकार नहीं, जगत्को तो विकारी देखते हैं इससे यह जगत् असत्य है ईश्वर आंख आदि इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष नहीं होता इससे यह मिथ्या है और यदि सत्य है तो वह एक आत्मामें ही है इससे हे मन ! तुम क्यों रोतेहो ॥ १८ ॥

न हि मोक्षपदं नहि बन्धपदं
न हि पुण्यपदं न हि पापपदम् ।
न हि पूर्णपदं न हि रिक्तपद
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, मोक्षपदम्, न, हि, बन्धपदम्, न, हि, पुण्यपदम्, न, हि, पापपदम् । न, हि, पूर्णपदम्, न, हि, रिक्तपदम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

मोक्षपदम्=मोक्षपद
न हि=नहीं है और
बन्धपदम्=बन्धपद भी
न हि=नहीं है
पुण्यपदम्=पुण्यपद भी
न हि=नहीं है
पापपदम्=पापपद भी
न हि=नहीं है और
पूर्णपदम्=पूर्णपद भी
न हि=नहीं है
रिक्तपदम्=अपूर्णपद भी
न हि=नहीं है
किमु=किसके वास्ते
मानस=हे मन
रोदिषि=तू रुदन करताहै
सर्वसमम्=यह सब सम हैं.

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं—जिसमें पहले बंध होताहै वही पीछे मुक्त भी होताहै आत्मामें पहले बंध ही नहीं है तब फिर पीछे मुक्त कहांसे होवैगा जिस-वास्ते बन्ध मोक्ष दोनों नहीं हैं इसीवास्ते पुण्य और पाप भी आत्मामें नही हैं और यदि प्रथम न्यून होवे तब पीछे पूर्ण होवे सो आत्मामें यह दोनों भी नहीं हैं फिर तू किसवास्ते रुदन करताहै? वह तो सर्वत्र सर्वदा सम ही है ॥ १९ ॥

यदि वर्णविवर्णविहीनसमं
यदि कारणकार्यविहीनसमम् ।
यदि भेदविभेदविहीनसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २० ॥

पदच्छेदः ।

यदि, वर्णविवर्णविहीनसमम्, यदि, कारणकार्यविहीन-समम् । यदि, भेदविभेदविहीनसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

यदि=यदि आत्मा		यदि=यदि वह आत्मा	
वर्णविवर्णवि-हीनसमम्	=वर्णविभागसे और वर्णविभागके अभावसे रहितहै और सम भीहै	भेदविभेदवि-हीनसमम्	भेदसे और भेदाभावसे रहित है और सम है
यदि=यदि वह		किमु=किसवास्ते	
कारणकार्यवि-हीनसमम्	=कारण और कार्यसे रहित है और सम है	रोदिषि=तुम रुदन करतेहो	
		मानस=हे मन !	
		सर्वसमम्=वह सबमें सम है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—वह आत्मा वर्णविभागसे रहित है अर्थात् तिस आत्मामें तीनों कालमें वर्णविभाग नहीं है क्योंकि एक ही आत्मा सब योनियोंमें जाता है और पशु आदिक योनियोंमें तो पूर्व योनिवाला वर्णविभाग नहीं होताहै इसीसे सिद्ध होता है कि, वर्णविभाग आत्माका धर्म नहीं है और विवर्ण अर्थात् विशेष करके जो कि वर्णजाति है वह भी नहीं है अथवा वर्ण नाम रूपका भी हैं अर्थात् रूपसे भी वह रहित है और आत्मा न किसीका कारण है न कार्य है इसवास्ते कारणकार्यसे भी रहित है और भेद तथा भेदाभावसे भी रहित हैं क्योंकि वह एक ही है तब फिर हे मन ! तिस आत्माके वास्ते तू क्यों रुदन करता है वह तो सर्वमें सम एकरस है ॥ २० ॥

सर्वनिरन्तरसर्वचिते
इह केवलनिश्चलसर्वचिते ।
द्विपदादिविवर्जितसर्वचिते
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः ।

सर्वनिरन्तरसर्वचिते, इह, केवलनिश्चलसर्वचिते । द्विपदादिविवर्जितसर्वचिते, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

सर्वनिरन्तर-सर्वचिते=सर्वमें एकरस होकरके वह सबके चित्तोंमें रहता है	द्विपदादिविवर्जितसर्वचिते=वह दो पाँव आदिकोंसे भी रहित होकर सबमें रहता है
इह=इस संसारमें	किमु=किसवास्ते
केवलनिश्चलसर्वचिते=केवल निश्चल होकर सबमें रहताहै	रोदिषि=तू रुदन करताहै
	मानस=हे मन !
	सर्वसमम्=वह तो सबमें सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहै–हे जीव ! तू क्यों अपने मनमें रुदन करताहै ? वह तेरा आत्मा तो सर्वत्र सम है, सबमें एकरस है, संपूर्णमें व्यापक है, निश्चल है, अर्थात् अचलहै, दो पांव या चार पाँव आदिकोंसे भी वह रहित है सबके चित्तोंका वही साक्षीहै ॥ २१ ॥

अतिसर्वनिरन्तरसर्वगतं
मतिनिर्मलनिश्चलसर्वगतम् ।
दिनरात्रिविवर्जितसर्वगतं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २२ ॥

पदच्छेदः ।

अतिसर्वनिरन्तरसर्वगतम्, अतिनिर्मलनिश्चलसर्वगतम् । दिनरात्रिविवर्जितसर्वगतम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

अतिसर्वनिरन्तरसर्वगतं=वह चेतन अतिशयकरके एकरस सर्वगतहै	किमु=फिर तू किसवास्ते
अतिनिर्मलनिश्चलसर्वगतम्=अतिनिर्मल है निश्चलहै सर्वगत है	मानस=हे मन !
दिनरात्रिविवर्जितसर्वगतम्=दिन और रात्रिसे रहित हुआ भी सर्वमें गत है व्यापक है	रोदिषि=रुदन करताहै
	सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहते हैं—वह चेतन, सर्वश्रेष्ठ, नित्य, व्यापक, शुद्ध, क्रिया रहित है, दिन और रात्रिके व्यवहारोंसे भिन्न, आकाशके समान सर्वगत है हे मन! तू ऐसे आत्माको न जानकर क्यों रोता है ॥ २२ ॥

न हि वन्धविवन्धसमागमनं न हि योगवियोगसमागमनम्। नं हि तर्कवितर्कसमागमनं किमु रोदिपि मानस सर्वसमम् ॥ २३ ॥

पदच्छेदः।

न, हि, वन्धविवन्धसमागमनम्, न, हि, योगवियोगसमागमनम्। न, हि, तर्कवितर्कसमागमनम्, किमु, रोदिपि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः।

वन्धविवन्धसमागमनम्	=सामान्य और विशेषरूपसेभी वन्धका सम्यक् आगमन आत्मामें	तर्कवितर्कसमागमनम्	=तर्कवितर्ककी भी उसमें प्राप्ति
न हि	=नहीं है	न हि	=नहीं है
योगवियोगसमागमनम्	=संयोग और वियोगकी भी प्राप्ति उसमें	किमु	=किसवास्ते
न	=नहीं होती है	रोदिपि	=रुदन करता है
		मानस	=हे मन!
		सर्वसमम्	=वह सबमें सम है

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहते हैं—तू क्यों रुदन करता है वह आत्मा तो तुम्हारा सबमें सम है और सामान्यविशेषवन्धनोंसे भी वह रहित और जन्ममरणरूपी तो सामान्य बंध हैं और स्त्रीपुत्रादिक सब यह विशेष वन्ध हैं अर्थात् वन्धनके कारण हैं इन दोनोंसे आत्मा रहित है जिसवास्ते तिसके किसी प्रकारका भी वन्ध नहीं है इसीवास्ते वह संयोग वियोगसे भी रहित है और तर्कवितर्ककी भी उसमें गम्य नहीं है अर्थात् वह तर्क करके भी नहीं जाना जाता है किन्तु केवल वेद और शास्त्रसे ही वह जानाजाताहै ॥ २३ ॥

इह कालविकालनिराकरणमणुमात्रकृशानुनिराकरणम् । न हि केवलसत्यनिराकरणं किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २४ ॥

पदच्छेदः ।

इह, कालविकालनिराकरणम्, अणुमात्रकृशानुनिराकरणम् । न, हि, केवलसत्यनिराकरणम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

इह=आत्मामें	केवलसत्यनिराकरणम्=केवल सत्यका निराकरण
कालविकालनिराकरणम्=सामान्यकालका और विशेषकालका निराकरण है	न हि=नहीं है
अणुमात्रकृशानुनिराकरणम्=अणुमात्र भी अग्निका निराकरण है	किमु=किसवास्ते
	मानस=हे मन !
	रोदिषि=रुदन करताहै
	सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहतेहैं—आत्मतत्त्वमें काल और विकालका अर्थात् प्रवाहरूपी जो कि सामान्य काल है और घडी दिनरूपी जो विशेप काल है इनका निराकरण है अर्थात् आत्माको काल नहीं व्यापसकता है और सूक्ष्म जो तेज है, वह भी तिसको प्रकाश नहीं करसकताहै क्योंकि वह जड है फिर उसमें संपूर्ण जगत्का तो निराकरण है परंतु केवल सत्यका निराकरण नहीं है क्योंकि वह सत्यरूप आप है ॥ २४ ॥

इह देहविदेहविहीन इति ननु स्वप्नसुषुप्तिविहीनपरम् । अभिधानविधानविहीनपरं किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २५ ॥

पदच्छेदः ।

इह, देहविदेहविहीनः, इति, ननु, स्वप्नसुषुप्तिविहीनपरम् ।

अभिधानविधानविहीनपरम्,किमु,रोदिषि,मानस,सर्वसमम्, ॥

पदार्थः।

इह=इस ब्रह्ममें	अभिधानविधानविहीनपरम्=कथन और कथनके अभावसे भी रहित है
देहविदेहविहीनः=देहसे और विदेहसे रहित होना	किमु=किसवास्ते
इति=इसप्रकारका व्यवहार भी नहीं	मानस=हे मन !
ननु=निश्चय करके	रोदिषि=रुदन करता है
स्वप्नसुपुप्तिविहीनपरम्=स्वप्न और सुपुप्तिसे भी परमरहित है	सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जोकि यह पहले अज्ञानावस्थामें देहके सहित होताहै वही पीछे ज्ञानावस्थामें देहसे रहित भी होताहै सो निराकार व्यापक चेतनमें अज्ञान ही तीनोंकालमें नहीं है तब सह विदेह होना कैसे बनताहै किन्तु कदापि नहीं देहके अभावसे स्वप्न और सुपुप्तिका अर्थसे ही उसमें अभाव है तब फिर विधिनिषेधका भी अभाव है तब रुदन क्यों करतेहो ॥ २९ ॥

गगनोपमशुद्धविशालसममविसर्वविवर्जितसर्वसमम्।
गतसारविसारविकारसमं किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २६ ॥

पदच्छेदः।

गगनोपमशुद्धविशालसमम्, अविसर्वविवर्जितसर्वसमम् ।
गतसारविसारविकारसमम्, किमु रोदिषि,मानस,सर्वसमम्,॥

पदार्थः।

गगनोपमशुद्धविशालसमम्=वह आत्मा गगनकी उपमावाला है, शुद्धहै विशाल है, विस्तार वाला है, सर्वत्र सम है	गतसारविसारविकारसमम्=सार विसार और विकारसे रहित है और सम भी है
	किमु=किसवास्ते
अविसर्वविवर्जितसर्वसमम्=विशेषकरके सर्व से रहित नहीं है किन्तु सर्वमें सम है	मानस=हे मन !
	रोदिषि=तू रुदन करताहै
	सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं वह चेतन आत्मा गगनकी उपमावाला है और विशाल भी अर्थात् अतिविस्तारवाला और व्यापक भी है और एकरस सम है संपूर्ण मिथ्या प्रपंचसे भी रहित है फिर वह सार और सारके अभावसे और विकारसे भी रहित है तब फिर उसकी प्राप्तिके लिये जीवका रुदन करना भी व्यर्थ है ॥ २६ ॥

इह धर्मविधर्मविरागतरमिहवस्तुविवस्तुविरागतरम् । इह कामविकामविरागतरं किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २७ ॥

पदच्छेदः ।

इह, धर्मविधर्मविरागतरम्, इह, वस्तुविवस्तुविरागतरम् । इह, कामविकामविरागतरम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

इह=इस संसारमें
धर्मविधर्मविरागतरम्=सामान्य धर्म विशेषधर्मसे विरागका होना उत्तम है
इह=इस संसारमें
वस्तुविवस्तुविरागतरम्=सामान्यवस्तु और विशेषवस्तुसे भी वैराग्यका होनाही श्रेष्ठ है
इह=इस संसारमें
कामविकामविरागतरम्=सामान्य इच्छा और विशेष इच्छासे भी वैराग्यका होनाही श्रेष्ठ है
किमु=किसवास्ते
मानस=हे मन !
रोदिषि=रुदन करता है
सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-इस संसारमें दो प्रकारके धर्म हैं, एक तो सामान्यधर्म है, जोकि चारों वर्णोंमें तुल्य हैं, दूसरे विशेष धर्म हैं, जोकि चारों वर्णोंमें पृथक् २ हैं, इन दोनों प्रकारके धर्मोंसे वैराग्य ही श्रेष्ठ है, और संसारमें जितने सामान्य विशेष

वस्तु हैं अर्थात् सामान्य और विशेष भोग हैं उनसे ज्ञानवान्को अतिवैराग्य ही होताहै और सामान्य विशेषरूपसे जो पदार्थोंकी इच्छा है वह सब भी दुःखको ही उत्पन्न करनेवाली है उससे भी वैराग्य ही उत्तम है तब फिर हे अज्ञानजीव तू किसवास्ते रुदन करता है वैराग्यको क्यों नहीं प्राप्त होता ॥ २७ ॥

सुखदुःखविवर्जितसर्वसममिहशोकविशोकविहीन-परम् । गुरुशिष्यविवर्जिततत्त्वपरं किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २८ ॥

पदच्छेदः ।

सुखःदुखविवर्जितसर्वसमम्, इह, शोकविशोकविहीनपरम् । गुरुशिष्यविवर्जिततत्त्वपरम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

सुखदुःखविवर्जितसर्वसमम् =सुख और दुःखसे रहित वह आत्मा सब में तुल्य है	गुरुशिष्यविवर्जिततत्त्वपरम् =गुरु और शिष्य व्यवहारसे वर्जित परमतत्त्व है
इह=इस आत्मामें	किमु=किसवास्ते
शोकविशोकविहीनपरम् =सामान्य विशेषरूपसे शोक भी नहीं रहता है	रोदिषि=रुदन करता है
	मानस=हे मन !
	सर्वसमम्=वह सबमें सम है

भावार्थः-दत्तात्रेयजी कहते हैं-आत्मा सुख और दुःख दोनोंसे रहित है शोक और मोह विहीन है गुरु और शिष्यभावसे हीन है, केवल तत्त्व-ज्ञानस्वरूप है ॥ २८ ॥

न किलाङ्कुरसारविसार इति
न चलाचलसाम्यविसाम्यमिति ।
अविचारविचारविहीनमिति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २९ ॥

न, किल, अङ्कुरसारविसारः, इति, न, चलाचलसाम्य-विसाम्यम्, इति । अविचारविचारविहीनम्, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

किल=निश्चयकरके
अङ्कुरसार-विसारः=अङ्कुरका सार और विगतसार
इति=इसप्रकारका व्यवहार उसमें
न=नहीं होताहै
चलाचलसाम्यविसाम्यम्=चल अचल और समता तथा विषमता
इति=इसप्रकारका भी
न=व्यवहार उसमें नहीं होताहै ।
अविचारविचारविहीनम्=विचारका अभाव और विचारसे भी रहित होना
इति=इसप्रकारका भी
न=व्यवहार उसमें नहीं है
किमु=फिर तू किसवास्ते
रोदिषि=रुदन करताहै ?
मानस=हे मन !
सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहतेहैं—दो प्रकारके कर्म होतेहैं एक सारसे सहित दूसरे सारसे रहित, जोकि जन्मके हेतु कर्म हैं अज्ञानी जीवोंके वह सारके सहित होतेहैं दूसरे ज्ञानवान्के जोकि कर्म हैं वह सारसे रहित होनेसे जन्मका हेतु नहींहैं सो यह दोनोंप्रकारके आत्मामें नहीं हैं, फिर जिसवास्ते आत्मा व्यापक है इसीवास्ते चल अचलसे भी वह रहित है और उसका मन भी जिसवास्ते नहीं है इसीवास्ते विचार और विचारके अभावसे भी वह रहित है फिर तू क्यों रुदन करताहै ॥ २९ ॥

इह सारसमुच्चयसारमिति कथितं निजभावविभेद इति । विषये करणत्वमसत्यमिति किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ३० ॥

पदच्छेदः ।

इह, सारसमुच्चयसारम्, इति, कथितम्, निजभाव-

विभेदः, इति। विषये, करणत्वम्, असत्यम्, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः।

इह=इस आत्मामें
सारसमुच्चय-सारम्=संपूर्ण सारोंका भी सार है
इति=इस प्रकार
कथितम्=कथन किया है
निजभाव-विभेदः=अपने प्रेमसे ही विशेष कहागया है।
इति=इस प्रकार
विषये=पार्थिवविषयमें
करणत्वम्=जो कुछके करना कथन किया है
असत्यम्=यह असत्य ही कथन किया जाता है
इति=इस प्रकार
किमु=किसवास्ते
मानस=हे मन!
रोदिषि=रुदन करते हो
सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—आत्मामें सारोंका भी सार है यह अपने भावका ही उत्तर अंश है यदि विद्वान् सत्य विचार करनेलगताहै तो उपनिषद् आदि आत्मशास्त्रों करके उसका ऐसा संस्कार होजाताहै कि उसको सिद्धान्त ही मालूम पडनेलगताहै विषयवासना झूठी प्रतीत होतीहै जब यह दशा है तुम क्यों रोतेहो ॥ ३० ॥

बहुधा श्रुतयः प्रवदन्ति यतो वियदादिरिदं मृगतोयसमम्। यदि चैकनिरन्तरसर्वसमं किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ३१ ॥

पदच्छेदः।

बहुधा, श्रुतयः, प्रवदन्ति, यतः, वियदादिः, इदम्, मृगतोयसमम्। यदि, च, एकनिरन्तरसर्वसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

बहुधा=अनेक
श्रुतयः=श्रुतियां
प्रवदन्ति=कथन करतीहै
यतः=जिस हेतुसे
इदम्=यह
वियदादिः=आकाशादि प्रपञ्च सब
मृगतोयसमम्=मृगतृष्णाके जलके तुल्य हैं
यदि च=यदि च
एकनिरन्तरसर्वसमम्=एक चेतन ही एकरस सर्वमें सम है
किमु=किसवास्ते
मानस=हे मन !
रोदिषि=रुदन करताहै
सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहतेहे—अनेक श्रुतियाँ इस वार्ताको कथन करतीहैं जितना कि आकाशादिक यह प्रपंच है सो यह सब मृगतृष्णाके तुल्य मिथ्या है अर्थात् अत्यन्त असत्य है और एकचेतन ही सर्वत्र सम है, नित्य है तब फिर तुम किसवास्ते रुदन करतेहो रुदनकरना तुम्हारा व्यर्थ है ॥ ३१ ॥

विन्दति विन्दति नहि नहि यत्र
छन्दो लक्षणं नहि नहि तत्र ।
समरसमग्नो भावितपूतः
प्रलपति तत्त्वं परमवधूतः ॥ ३२ ॥

इति श्रीदत्तात्रेयविरचितायामवधूतगीतायां स्वामिकार्तिकसंवादे आत्मसँविवत्त्युपदेशे समदृष्टिकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

विन्दति, विन्दति, नहि, नहि, यत्र, छन्दः, लक्षणम्, नहि, नहि, तत्र । समरसमग्नः, भावितपूतः, प्रलपति, तत्त्वम्, परम्, अवधूतः ॥

पदार्थः ।

परम्=श्रेष्ठ उत्तम
अवधूतः=अवधूत
यत्र=जिस ब्रह्ममें
विंदति=कुछ लभताहै
विंदति=लभताहै
नहि नहि=नहीं लभता है २
छन्दः=छन्द
लक्षणम्=लक्षण
नाहि नाहि=नहीं लभताहै२ क्योंकि वह
तत्र=तिस ब्रह्ममें
समरसमग्नः=एकरस ही मग्न रहताहै
भावितपूतः=अन्तःकरणसेवह पवित्रहै
तत्त्वम्=आत्मतत्त्वका ही
प्रलपति=कथन करता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जोकि शुद्ध अन्तःकरणवाला अवधूत है वह उस व्यापक चेतनमें क्या किसी वस्तुको प्राप्त करताहै ? सो यह वार्ता नहीं है और छन्दरूपी कविताको भी नहीं प्राप्त करताहै किन्तु केवल आत्मतत्त्वको ही कथन करताहै ३२

इति श्रीमदवधूतगीतायां स्वामिहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्दविरचित-
परमानन्दीभाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अवधूत उवाच ।

बहुधा श्रुतयः प्रवदन्ति वयं
वियदादिरिदं मृगतोयसमम् ।
यदि चैकनिरन्तरसर्वशिव-
मुपमेयमथो ह्युपमा च कथम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

बहुधा, श्रुतयः, प्रवदन्ति, वयम्, वियदादिः, इदम्, मृगतोयसमम् । यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, उपमेयम्, अथो, हि, उपमा, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

बहुधा=अनेक	एकनिरन्तर- सर्वशिवम् =यह चेतन एक ही निरन्तर सर्व कल्याण-रूप है
श्रुतयः=श्रुतियें	
प्रवदन्ति=कथन करती हैं	
वयम्=हम	अथो=अनन्तर
इयम्=यह जितना	उपमेयम्=यह उपमेय है
वियदादिः=आकाशादि प्रपंच है सो	हि च=निश्चयकरके और
मृगतोयसमम्=मृगतृष्णाके समान है	उपमा=उपमा है
यदि च=यदि	कथम्=किसप्रकार यह होसकता है

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहते हैं—वेदकी अनेक ऋचाएँ स्वयं कहतीहैं कि, यह आकाश, वायु आदि मृगतृष्णाके समान है जबकि एक, अविनाशी, सर्वगत, कल्याणस्वरूप ही है तो किसकी उपमा दीजाय और किसको दीजाय ॥ १ ॥

अविभक्तिविभक्तिविहीनपरं ननु कार्यविकार्यवि-हीनपरम् । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं यजनं च कथं तपनं च कथम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अविभक्तिविभक्तिविहीनपरम्, ननु, कार्यविकार्यविहीन-परम् । यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, यजनम्, च, कथम्, तपनम्, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

अविभक्तिवि-भक्तिविही-नपरम् =विशेषकरके विभाग और विभागाभावसे रहित है	यदि च=जबकि वह
	एकनिरन्तर-सर्वशिवम् =एकरस सर्वमें कल्याणरूप है
ननु=निश्चयकरके	यजनम्=पूजन
कार्यविकार्य-विहीनपरम् =कार्य और कार्यके अभावसे भी वह रहित है	कथम्=किसप्रकार होसकताहै
	तपनं च=और तप करना
	कथम्=कैसे होसकताहै

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—उस चेतन आत्मामें विभाग और अविभाग और कार्य तथा कार्याभाव यह सब नहीं है, क्योंकि वह एकरस सर्वमें व्यापक और कल्याणस्वरूप है तब फिर उसमें पूजन करना और तपस्या करना यह सब कैसे बनसकताहै ? किन्तु कदापि नहीं बन सकता है ॥ २ ॥

मन एव निरन्तरसर्वगतं ह्यविशालविशालविहीनपरम् । मन एव गिरन्तरसर्वशिवं मनसापि कथं वचसा च कथम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

मनः, एव, निरन्तरसर्वगतम्, हि, अविशालविशालविहीनपरम् । मनः, एव, निरन्तरसर्वशिवम्, मनसा, अपि, कथम्, वचसा, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

एव=निश्चयकरके
मनः=मन ही
निरन्तरसर्वगतम्=निरन्तर सर्वगत है
हि=निश्चय करके
अविशालविशालविहीनपरम्=विस्तारके अभाव और विस्तारसे रहित है
मन एव=मन ही
निरन्तरसर्वशिवम्=निरन्तर सर्वरूपकल्याणरूप है
मनसा=मन करके
अपि=निश्चय करके
कथम्=कैसे जानाजाय
वचसा च=और वाणी करके
कथम्=कैसे कहा जाय

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहतेहैं—मनका ही रचाहुआ यह संसारहै इसीवास्ते मन ही सर्वगतहै और विस्तार और विस्तारके अभाववाला भी मन ही है और मन ही एकरस कल्याणरूप भी है, क्योंकि मनके शान्त होजानेसे यह जगत् भी सब शांत ही होजाताहै वह ब्रह्म चेतन मनकरके कैसे जानाजाय और वाणीकरके कैसे कहा जाय, क्योंकि वह मन वाणीका विषय नहीं है ॥ ३ ॥

दिनरात्रिविभेदनिराकरणमुदितानुदितस्य निराकरणम् । यदिचैकनिरन्तरसर्वशिवं रविचन्द्रमसौ ज्वलनश्च कथम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

दिनरात्रिविभेदनिराकरणम्, उदितानुदितस्य, निराकरणम् । यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, रविचन्द्रमसौ, ज्वलनः च, कथम्

पदार्थः ।

दिनरात्रिविभेदनिराकरणम् =दिन और रात्रिके भेदका निराकरण
उदितानुदितस्य-निराकरणम् =उदित और अनुदितका निराकरण करना
यदि च=यदि च
एकनिरन्तर-सर्वशिवम् =एक निरन्तर सर्वत्र कल्याणरूप है
रविचन्द्रमसौ=सूर्य चन्द्रमा
च=और
ज्वलनः=अग्नि
कथम्=यह कैसे सिद्ध होसकतेहैं

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहते हैं—उस चेतनमें दिन और रात्रिका भेद भी नहीं है, जबकि दिन और रात्रिही उसमें नहीं है तब दिन और रात्रिका भेद कैसे होसकता है और दिन रात्रि सूर्यादिकके उदय होनेसे और अनुदय होनेसे होतेहैं, सो उदय अनुदय भी उसमें नहींहै, क्योंकि यदि एक ही चेतन सर्वत्र कल्याणस्वरूप विद्यमान है तब, सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि भी उसमें सिद्ध नहीं होतेहैं ॥ ४ ॥

गतकामविकामविभेद इति गतचेष्टविचेष्टविभेद इति । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं बहिरन्तरभिन्नमतिश्च कथम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

गतकामविकामविभेदः, इति । गतचेष्टविचेष्टविभेदः, इति । यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, बहिः, अन्तरभिन्नमतिः, च, कथम्, ॥

पदार्थः ।

गतकामविकामविभेदः = इच्छा और इच्छाके अभावका भी भेद	एकनिरन्तरसर्वशिवम् = एक ही निरन्तर सर्वगत है कल्याणरूप है
इति = इसप्रकारका व्यवहार भी उसमें नहीं है	बहिरन्तरभिन्नमतिः च = तब फिर वह बाहर भीतर भिन्न है ऐसी बुद्धि
गतचेष्टविचेष्टविभेदः = चेष्टा और चेष्टाके अभावकाभी भेद	च = और
इति = ऐसा भी नहीं है	कथम् = कैसे बनसकती है
यदि च = यदि च वह	

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहते हैं—जब कि सकामता और निष्कामताका भेद उसमें नही है और चेष्टा तथा चेष्टाके अभावकाभी भेद उसमें नहीं है, क्योंकि वह एकरस कल्याणरूप व्यापक है तब फिर बाहर और भीतर भी उसमें नहीं बनता है क्योंकि वह आनन्दघन है ॥ ५ ॥

यदि सारविसारविहीन इति
यदि शून्यविशून्यविहीन इति ।
यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं
प्रथमं च कथं चरमं च कथम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

यदि, सारविसारविहीनः, इति, यदि, शून्यविशून्यविहीनः, इति । यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, प्रथमम्, च, कथम्, चरमम्, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

यदि=यदि वह ब्रह्म	एकनिरन्तर- सर्वशिवम् =किन्तु वह एक ही निरन्तर सर्वरूप कल्याणरूप है
सारविसार- विहीनः =सार और विसार- वस्तुसे रहित है	प्रथमम्=तब फिर आदि
इति=इसप्रकार वेद कहता है	कथम्=उसमें कैसे
यदि=यदि वह चेतन	च=और
शून्यविशून्य- विहीनः =शून्यसे औरशून्यके अभावसे भी रहित है	चरमम्=अन्त उसमें
इति=इसप्रकार शास्त्र कहताहै	कथम्=कैसे हो सकते हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जब कि वह चेतन ब्रह्म यह सार है यह असार है इस व्यवहारसे रहित है और शून्य तथा शून्यके अभावके व्यवहारसे भी रहित है इसप्रकार वेद और शास्त्र पुकारकरके कहता है, किन्तु वह एक है, एकरस है, कल्याणस्वरूप है। जब कि वह ऐसा है तब फिर उसमें यह प्रथम है अर्थात् आदि है और यह चरम है अर्थात् अन्त है यह व्यवहार कैसे होसकता है किन्तु कदापि भी नहीं ॥ ६ ॥

यदि भेदविभेदनिराकरणं
यदि वेदकवेद्यनिराकरणम् ।
यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं
तृतीयं च कथं तुरीयं च कथम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

यदि, भेदविभेदनिराकरणम्, यदि, वेदकवेद्यनिराकरणम् । यदि, च, एकनिरंतरसर्वशिवम्, तृतीयम्, च, कथम्, तुरीयम्, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

यदि=जब कि वह चेतन
भेदविभेदनिराकरणम्=सामान्य विशेष–भेदसे रहित है
यदि=जब कि वह
वेदकवेद्यनिराकरणम्=ज्ञाता ज्ञेयके व्यवहारसे भी रहित है
यदि च=यदि च
एकनिरन्तरसर्वशिवम्=वह एक है एकरस सर्वत्र पूर्ण औरकल्याण रूप है तब
तृतीयं च=तीसरा
कथम्=कैसे और
तुरीयं च=चतुर्थ
कथम्=कैसे

भावार्थः–दत्तात्रेयजी कहतेहे–यदि उस चेतन आत्मामें किसीप्रकारका भी भेद नहीं बनताहै और ज्ञाताज्ञेयका व्यवहार भी उसमें नहीं बनताहै, क्योंकि वह द्वैतसे रहित एक ही सर्वत्र एकरस पूर्ण है तब फिर उसमें तृतीय अवस्था और चतुर्थ अवस्था कैसे बनतीहै किन्तु कदापि नहीं बनतीहै ॥ ७ ॥

गदितागदितं न हि सत्यमिति विदिताविदितं नहि सत्यमिति । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं विषयेन्द्रियबुद्धिमनांसि कथम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

गदितागदितम्, न, हि, सत्यम्, इति, विदिताविदितम्, नहि, सत्यम्, इति, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, विषयेन्द्रियबुद्धिमनांसि, कथम् ॥

पदार्थः ।

गदितागदितम्=कथन किया और कथन न किया दोनों
सत्यम्=सद्रूप
न हि=नहीं हैं
इति=इसप्रकार कहाहै
विदिताविदितम्=विदित और अविदित भी
सत्यम्=सत्य
न हि=नहीं है
यदि च=यदि च वह चेतन
एकनिरन्तरसर्वशिवम्=निरन्तर सबमें एक है कल्याणरूप है तब
विषयेन्द्रियबुद्धिमनांसि=यह विषयहैं, इन्द्रिय हैं, बुद्धि है, मन है यह सब
कथम्=किसप्रकार होसकते है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-जो गदितागदित है अर्थात् कथन कियागया है और कथन किया जाताहै इसप्रकारका व्यवहार भी सत्य नहीं है और जोकि ज्ञात हुआ है और ज्ञात नहीं ऐसा व्यवहार भी सत्य नहीं है क्योंकि, वह चेतन एक है एकमें इसतरहका व्यवहार नहीं वनताहै और फिर विषय इन्द्रिय तथा वुद्धि और मन उसमें कैसे वनसकते हैं किन्तु किसी तरहसे भी नहीं वनसकतेहैं ॥८॥

गगनं पवनो न हि सत्यमिति धरणी दहनो न हि सत्यमिति । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं जलदश्च कथं सलिलं च कथम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

गगनम्, पवनः, न, हि, सत्यम्, इति, धरणी, दहनः, न, हि, सत्यम्, इति । यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, जलदः, च, कथम्, सलिलम्, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

गगनम्=आकाश और
पवनः=वायु यह दोनो
सत्यम्=सत्य
न हि=नहीं हैं
इति=इसीप्रकार
धरणी=पृथिवी और
दहनः=अग्नि यह भी
सत्यम्=सत्य
न हि=नहीं हैं
इति=इसीतरह
यदि च=यदि वह
एकनिरन्तर सर्वशिवम्=एकही निरन्तर सर्व व्यापक कल्याणरूप है तव फिर
च=और
जलदः=वादल
कथम्=किसप्रकार
च=और
सलिलम्=जल
कथम्=किसप्रकार सत्य होसकता है

भावार्थः-दत्तात्रेयजी कहतेहैं-आकाश, वायु, पृथिवी, अग्नि यह जो संसारमें कहेजातेहैं यह कुछ नहीं हैं, जव एक, अविनाशी सदा कल्याणरूप ब्रह्म ही है तो मेघ कहां और जल कहां ॥ ९ ॥

यदि कल्पितलोकनिराकरणं यदि कल्पितदेवनि-
राकरणम् । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं गुणदोषवि-
चारमतिश्च कथम् ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

यदि, कल्पितलोकनिराकरणम्, यदि, कल्पितदेवनिराक-
णम् । यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, गुणदोपविचार-
मतिः, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

यदि=जबकि उसमें	यदि च=जब कि वह चेतन
कल्पितलोकनिराकरणम् =कल्पित लोकका वेदवाक्योंकरके दूरीकरण होताहै,	एकनिरन्तरसर्वशिवम् =एक है निरन्तर सर्वमें व्यापक कल्याणरूप है
यदि=फिर जब कि	च=तब फिर और
कल्पितदेवानिराकरणम् =कल्पित देवताका भी उसमें दूरीकरण होता है	गुणदोपविचारमतिः =गुण और दोषोंके विचारकी बुद्धि
	कथम्=कैसे होसकती है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं-जोकि पृथिवी, स्वर्ग, पाताल आदि लोकोंका निषेध है अर्थात् व्यवहारदशामें यह लोक माने गये है परमार्थमें कुछ नहीं, जबकि इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर आदि देवता कल्पनामात्रके हैंऔर जबकि एक, नित्य, कल्याणस्वरूप ब्रह्म ही है तो इसमें ये दोष है इसके विचारकी बुद्धिही नहीं हो सकती है ॥ १० ॥

भरणामरणं हि निराकरणं करणाकरणं हि निरा-
करणम् । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं गमनागमनं
हि कथं वदति ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

मरणामरणम्, हि, निराकरणम्, करणाकरणम्, हि, निराकरणम् । यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, गमनागमनम्, हि, कथम्, वदति ॥

पदार्थः ।

हि=निश्चयकरके
मरणामरणम्=मरण अमरणका भी उसमें
निराकरणम्=दूरीकरण है
करणाकरणम्=करण अकरणका भी
हि=निश्चयकरके
निराकरणम्=उसमें दूरीकरण है
यदि च=जबकि
एकनिरन्तर- सर्वशिवम्= }=वह एक है और सर्वत्र पूर्ण है कल्याणरूप है तब
गगनागमनम्=गमन अगमन भी
हि=निश्चयकरके
कथम्=किसप्रकार
वदति=कथन करना बनता है किन्तु नहीं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जबकि उस आत्माके जन्ममरण नहीं होते और उसका कुछ कर्तव्य भी नहीं और अकर्तव्य भी नहीं है जबकि वह अद्वितीय नित्य, सर्वव्यापक शिव है तब उसके जन्म मृत्यु किसप्रकार होसकते हैं ॥ ११ ॥

प्रकृतिः पुरुषो न हि भेद इति न हि कारणकार्यविभेद इति । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं पुरुषापुरुषं च कथं वदति ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

प्रकृतिः, पुरुषः, न, हि, भेदः, इति, न हि, कारणकार्यविभेदः, इति । यदि च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, पुरुषापुरुषम्, च, कथम्, वदति ॥

पदार्थः ।

प्रकृतिः=प्रकृति है
पुरुषः=पुरुष है
इति=इसप्रकारका
भेदः=वास्तव भेद भी
न हि=नहीं है और
कारणकार्यविभेदः=कारणकार्यका भेद भी
इति=इसतरहका
न हि=नहीं है
यदि च=जबकि वह
एकनिरन्तरसर्वशिवम्=एक ही एकरस सर्वरूप कल्याण स्वरूप है तब फिर
पुरुषाऽपुरुषम्=यह पुरुष है यह पुरुष नहीं है
च=और
कथम्=किसप्रकार
वदति=कथन करता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–प्रकृति और पुरुषमें कुछ भेद नहीं क्योंकि कारण और कार्यका कुछ भी भेद नहीं होता जबकि एक, नित्य, व्यापक, कल्याणस्वरूप ब्रह्म ही है तो पुरुष और प्रकृतिका भेद क्यों कहते हो ॥ १२ ॥

तृतीयं न हि दुःखसमागमनं न गुणाद्द्वितीयस्य समागमनम् । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं स्थविरश्च युवा च शिशुश्च कथम् ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

तृतीयम्, न, हि, दुःखसमागमनम्, न, गुणात्, द्वितीयस्य, समागमनम् । यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, स्थविरः, च, युवा, च, शिशुः, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

तृतीयम्=तीसरा
दुःखसमागमनम्=दुःखका सम्यक् आगमन भी
न हि=नहीं है
गुणात्=गुण
द्वितीयस्य=दूसरेका
समागमनम्=समागम
न=नहीं है
यदि च=यदि च
एकनिरन्तरसर्वशिवम्=सर्वरूप और कल्याणरूप एकही निरन्तर है
स्थविरः च=बुढ़ापा कैसे
युवा च=और युवा और
शिशुश्च=शिशु अवस्था
कथम्=किसप्रकार

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहते हैं तीसरा और कोईभी दुःख नहीं है और अन्यदुःखका अच्छी तरहका आगमन भी होता नहीं है, एक गुणसे दूसरेका समागम नहीं होताहै और यदि सर्व प्रपंचरूप, कल्पनारूप, और निरन्तर है और जिसकी बाल्यावस्था, तारुण्यावस्था, वृद्धावस्था भी नहीं होती है ऐसा ब्रह्मस्वरूप मैं हूँ ॥ १३ ॥

ननु आश्रमवर्णविहीनपरं ननु कारणकर्तृविहीनपरम् । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवमविनष्टविनष्टमतिश्च कथम् ॥

पदच्छेदः ।

ननु, आश्रमवर्णविहीनपरम्, ननु, कारणकर्तृविहीन,-परम् । यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, अविनष्टविनष्टमतिः, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

ननु=निश्चय करके
आश्रमवर्णविहीनपरम्=आश्रम और वर्णसे रहित परम श्रेष्ठ है
ननु=निश्चयकरके
कारणकर्तृविहीनपरम्=कारणकर्तृसे भी रहित है
यदि च=यदि च
एकनिरन्तरसर्वशिवम्=वह एक है सर्वरूप कल्याणरूप भी है तब
अविनष्टविनष्टमतिः च=नाशसे रहित और नाशवाली बुद्धि
कथम्=कैसे है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—आत्माका कोई आश्रम या वर्ण नहीं है तथा कारण और कर्त्ताका भावभी नहीं है। जबकि आत्मा एक, नित्य, सर्वव्यापक और कल्याणस्वरूप है तो नाश न होनेवाली या नाश होनेवाली बुद्धि उसके विषयमें किस प्रकारसे होसकती है ॥ १४ ॥

ग्रसिताग्रसितं च वितथ्यमिति जनिताजनितं च वितथ्यमिति। यदि चेकनिरन्तरसर्वशिवमविनाशिविनाशि कथं हि भवेत् ॥ १५ ॥

पदच्छेदः।

ग्रसिताग्रसितम्, च, वितथ्यम्, इति, जनिताजनितम्, च, वितथ्यम्, इति। यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, अविनाशिविनाशि, कथम्, हि, भवेत् ॥

पदार्थः।

ग्रसिताग्रसितं च=ग्रसनेवाला और ग्रसा हुआ दोनों
वितथ्यम्=मिथ्या है
इति=इसीप्रकार
जनिताजनितम् च=उत्पन्न करनेवाला और उत्पन्न हुआ
तथ्यम्=यह भी मिथ्या है
इति=इसप्रकार
यदि च=यदि च
एकनिरन्तरसर्वशिवम्=एक चेतनही सर्वरूप कल्याणरूप है
अविनाशिविनाशि=नाशसे रहित नाशवाला
कथं भवेत्=कैसे होसकताहै

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जबकि वह चेतन ब्रह्म एक ही निरन्तर सर्वरूप और कल्याणरूप है तब फिर यह ग्रसनेवाला है और यह ग्रसाजाता है यह व्यवहार नहीं बनता है और इसीतरह यह उत्पन्न करनेवाला है, यह उत्पन्न होताहै यह विनाशी है यह नाशसे रहितहै, यह संपूर्ण व्यवहार मिथ्या ही सिद्ध होतेहैं ॥ १५ ॥

पुरुषापुरुषस्य विनष्टमिति वनितावनितस्य वि-
नष्टमिति । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवमविनोद-
विनोदमतिश्च कथम् ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ।

पुरुषापुरुषस्य, विनष्टम्, इति, वनितावनितस्य, विनष्टम्,
इति । यदि च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, अविनोदविनोद-
मतिः, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

पुरुषापुरुषस्य=पुरुष और अपुरुषका भी व्यवहार
विनष्टम्=उसमें नष्ट है
इति=इसीप्रकार
वनितावनितस्य=स्त्री और नपुंसक व्यवहार भी
विनष्टम्=विनष्ट है
इति=इसीप्रकार
अविनोदविनोदमतिः=शोक और हर्षबुद्धि उसमें
कथम्=कैसे होसकता है ?
यदि च=यदि च
एकनिरन्तरसर्वशिवम्=यह चेतन एक है निरन्तर कल्याण-स्वरूप है ।

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्मामें मनुष्य और पनुष्यका अभाव होना स्त्री होना या स्त्री न होना यह व्यवहार नहीं होसकता जब कि नित्य, सर्व व्यापक, कल्याण स्वरूप ब्रह्म एक है तो क्रीडा न करना या क्रीडा करनेकी बुद्धि किस प्रकार होसकती है ॥ १६ ॥

यदि मोहविषादविहीनपरो यदि संशयशोकविही-
नपरः । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवमहमेति ममेति
कथं च पुनः ॥ १७ ॥

पदच्छेदः।

यदि, मोहविषादविहीनपरः, यदि, संशयशोकविहीनपरः।
यदि च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, अहम्, आ, इति
मम, इति, कथम्, च, पुनः, ॥

पदार्थः।

यदि=जबकि वह चेतन	एकनिरन्तर- सर्वशिवम्=एक ही निरन्तर सर्वरूप कल्याणस्वरूप भी है तब फिर
मोहविषादविहीनपरः=मोह और विषाद से रहित और श्रेष्ठ है और	अहम्=मैं हूँ
यदि=जब कि वह	आ=सब तरफसे
संशयशोकविहीनपरः=संशय और शोक से रहित हैं	इति=इसप्रकार
यदि च=जब कि वह	मम इति=मेरा है इसप्रकार
	कथं च पुनः=फिर कैसे व्यवहार होसकता है

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जबकि ब्रह्म अज्ञान और कष्टसे रहित है, और सन्देह तथा शोकसे रहित है, सबसे परे है, और एक है, नित्य है, सर्वव्यापक है, तो मैं और मेरी ऐसी बुद्धि किसप्रकार होसकतीहै ॥ १७ ॥

ननु धर्मविधर्मविनाश इति ननु बन्धविबन्ध-
विनाश इति । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवमिह
दुःखविदुःखमतिश्च कथम् ॥ १८ ॥

पदच्छेदः।

ननु, धर्मविधर्मविनाशः इति, ननु, बन्धविबन्धविनाशः,
इति। यदि, च एकनिरन्तरसर्वशिवम्, इह, दुःखविदुःख-
मतिः, च, कथम्, ॥

पदार्थः ।

धर्मविधर्म-विनाशः =धर्म और विरुद्ध धर्म दोनोंका नाश	एकनिरन्तर-सर्वशिवम् =वह एक निरन्तर सर्वरूप कल्याणस्वरूप [पदै
इति=इसप्रकारका व्यवहार और	च=और तव फिर
वन्धविवन्ध-विनाशः =सामान्य विशेष वन्धका नाश	इह=इस चेतनमें
इति=ऐसा व्यवहार	दुःखविदुःखमतिं =दुःख और विदुःखमति
यदि च=यदि च	कथम्=कैसे वनसकती है

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जबकि आत्मामें सामान्य तथा विशेष धर्मका नाश है, और साधारण तथा असाधारण वन्धका अभाव है अर्थात् धर्म हो या अधर्म, दोनों ही संसारमें वन्धन करनेवाले हैं, यदि वेदादिविहित कर्म करके धर्मका सञ्चय कियाजायगा तो उसका फल स्वर्गमें नानाप्रकारका सुखभोग होगा और यदि पापकर्मकिये जावेंगे तो नरक, रोग, शोक, आदि त्रिविध तापोंके वशमें होकर क्लेश सहनेपडेंगे इससे ज्ञानी पुरुषकी दृष्टिमें "शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्" के अनुसार आत्मा सदा निष्क्रिय, निर्गुण है देहसे गुणोंके अनुसार जो कर्म होतेहैं उनका आत्मासे कुछ सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि आत्मा एक नित्य, सर्वव्यापक, कल्याणस्वरूप है इसलिये आत्मामें दुःखी सुखीकी बुद्धि किसी प्रकार नहीं होसकती ॥ १८ ॥

न हि याज्ञिकयज्ञविभाग इति न हुताशनवस्तु-विभाग इति । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं वद कर्मफलानि भवन्ति कथम् ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, याज्ञिकयज्ञविभागः, इति, न, हुताशनवस्तु-विभागः, इति । यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, वद, कर्मफलानि, भवन्ति, कथम् ॥

पदार्थः।

याज्ञिकयज्ञविभागः=यज्ञमें होनेवाले कार्यका यज्ञके साथ विभाग	एकनिरन्तरसर्वशिवम्=वह एक ही निरन्तर सर्वरूप कल्याणस्वरूप सत्य है तब फिर
इति न=भिन्न २ नहीं है	कर्मफलानि=कर्मोंके फल
हुताशनवस्तुविभागः=अग्नि और चरुका भी विभाग	वद=कहो
इति न=भिन्नताकरके नहीं है	कथम्=किस प्रकार
यदि च=यदि च	भवन्ति=होते हैं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं--यदि च यज्ञमें होनेवाले कर्मका यज्ञके साथ विभाग नहीं है और अग्निमें हवन करीहुई वस्तुका अग्निके साथ भी विभाग नहीं रहता है। इसीतरह एक निरन्तर सर्वरूप कल्याणस्वरूप चेतनका भी किसीके साथ विभाग नहीं है क्योंकि चेतनमें सर्ववस्तु कल्पित हैं तब फिर कर्म और कर्मके फलोंका भी विभाग कैसे होसकताहै किन्तु कदापि नहीं होसकता है॥ १९॥

ननु शोकविशोकविमुक्त इति ननु दर्पविदर्पविमुक्त इति। यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं ननु रागविरागमतिश्च कथम्॥ २०॥

पदच्छेदः।

ननु, शोकविशोकविमुक्तः, इति, ननु, दर्पविदर्पविमुक्तः, इति। यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, ननु, रागविरागमतिः, च, कथम॥

पदार्थः ।

ननु=निश्चयकरके वह
शोकविशोकविमुक्तः=शोक और विशोकसे रहित है
इति=इसप्रकार
ननु=निश्चयकरके
दर्पविदर्पविमुक्तः=दर्प विदर्पसे भी वह रहित है
इति=इसप्रकार
यदि च=जब कि वह
एकनिरन्तरसर्वशिवम्=एक ही सर्वरूप और शिवरूप निरन्तर है
ननु=निश्चयकरके
रागविरागमतिः=राग विरागवाली बुद्धि फिर
च=और
कथम्=किसप्रकार होसकती है

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहते हैं—वह चेतन आत्मा साधारणशोकसे और असाधारण शोकसे भी रहित है इसीप्रकार साधारण अहंकारसे और असाधारण अहंकारसे भी वह रहित है अपनी जातिको कष्ट होनेसे जो शोक है, वह साधारण शोक है और अपने स्त्री आदिकोंको कष्ट होनेसे जो शोक है वह असाधारण शोक है और इसीप्रकार अहंकार भी दो तरहका है एक जो जातिका अहंकार कि, हमारी जाति ही उत्तम है सो यह साधारण है दूसरा धनसंबंधियोंका असाधारण अहंकार है जो हम ही धनी और संबन्धियोंवाले हैं । इसतरहके शोक और दर्पसे यदि वह रहित है और एक ही सर्वरूप कल्याणस्वरूप है तब फिर किसीमें राग और किसीमें विराग यह बुद्धि कैसे होसकती है किन्तु कदापि नहीं ॥ २० ॥

न हि मोहविमोहविकार इति न हि लोभविलोभविकार इति । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं ह्यविवेकविवेकमतिश्च कथम् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, मोहविमोहविकारः, इति, न, हि, लोभविलोभविकारः, इति । यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, हि, अविवेकविवेकमतिः, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

मोहविमोहविकारः=मोह विमोहका विकार	यदि च=यदि च
न हि=उसमें नहीं है	एकनिरञ्जनसर्वशिवम्=एक, निरञ्जन, सर्वरूप, कल्याणरूप है
इति=इसीप्रकार	हि=निश्चयकरके
लोभविलोभविकारः=लोभ विलोभका विकार	अविवेकाविवेकमतिः=विवेकसे रहित और विवेकवाला
न हि=नहीं है	च=और
इति=इसी प्रकार	कथम्=कैसे है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-ब्रह्ममें साधारण तथा विशेष अज्ञान नहीं है और अज्ञानका किसीप्रकारका विकार भी नहीं है इसीप्रकार साधारण तथा विशेष लोभ तथा उसको विकार भी नहीं हैं । जब कि एक, नित्य सर्वव्यापक कल्याणरूप ब्रह्म है तो अविचार और विचार यह बुद्धि किसप्रकार होसकती है ॥ २१ ॥

त्वमहं न हि हन्त कदाचिदपि कुलजातिविचारमसत्यमिति । अहमेव शिवः परमार्थ इति अभिवादनमत्र करोमि कथम् ॥ २२ ॥

पदच्छेदः ।

त्वम्, अहम्, न, हि, हन्त, कदाचित्, अपि, कुलजातिविचारम्, असत्यम्, इति । अहम्, एव, शिवः, परमार्थः, इति, अभिवादनम्, अत्र, करोमि, कथम् ॥

पदार्थः ।

त्वम्=तू और	असत्यम्=असत्य ही है
अहम्=मैं यह अहंकार	अहम्=मैं ही
हन्त=(इति खेदे)	एव=निश्चयकरके
कदाचित्=कदाचित्	शिवः=कल्याणरूप
अपि=भी सत्य	परमार्थः=परमार्थ सत्य हूँ
न हि=नहीं है	इति=ऐसा होनेपर
इति=इसीप्रकार	अत्र=यहां
कुलजातिविचारम्=कुल और जातिका विचार भी	अभिवादनम्=वंदनाको
	कथम्=किसप्रकार
	करोमि=मैं करूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—यह मैं हूँ यह तू है इसप्रकारका जो कि भेदज्ञानका अहंकार है यह कदाचित् भी सत्य नहीं है और कुल तथा जाति आदिकोंका जो विचार है हमारा कुल बडा उत्तम है और हमारी जाति भी उत्तम है यह भी सत्य नहीं है किन्तु मैं सद्रूप शिवरूप परमार्थस्वरूप हूँ मेरेसे भिन्न दूसरा कोई भी नहीं है, क्योंकि मैं ही अद्वैतरूप हूँ तब फिर वन्दना करनी भी किसको नहीं वनती है ॥ २२ ॥

गुरुशिष्यविचारविशीर्ण इति उपदेशविचारविशीर्ण इति । अहमेव शिवः परमार्थ इति अभिवावादनमत्र करोमि कथम् ॥ २३ ॥

पदच्छेदः ।

गुरुशिष्यविचारविशीर्णः, इति, उपदेशविचारविशीर्णः, इति । अहम्, एव, शिवः, परमार्थः, इति, अभिवादनम्, अत्र, करोमि, कथम् ॥

पदार्थः ।

गुरुशिष्यविचारविशीर्णः = गुरु और शिष्यभावका विचार भी निरस्त है	एव=निश्चयकरके
	शिवः=शिवरूप
	परमार्थःपरमार्थस्वरूप हूँ
इति=इसीप्रकार	इति=इसी प्रकार
उपदेशविचारविशीर्णः = उपदेशका विचार भी मिथ्या है	अत्र=यहां
	अभिवादनम्=वन्दनाको
इति=इसीप्रकार	करोमि=करूं
अहम्=मैं ही	कथम्=कैसे

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते है– उस अद्वैत चेतनमें यह गुरु है यह शिष्य है इसप्रकारका जोकि विचार है सो भी नहीं बनता है । जबकि उसमें गुरुशिष्य भाव ही नहीं तब उपदेशकरना भी नहीं बनता है । फिर जबकि, मैं एक ही कल्याणस्वरूप परमार्थसे सत्यरूप हूँ, तब अभिवादनव्यवहार भी नहीं बनता है ॥२३॥

नहि कल्पितदेहविभाग इति नहि कल्पितलोकविभाग इति । अहमेव शिवः परमार्थ इति अभिवादनमत्र करोमि कथम् ॥ २४ ॥

पदच्छेदः ।

नहि, कल्पितदेहविभागः, इति, नहि, कल्पितलोकविभागः इति । अहम्, एव, शिवः परमार्थः, इति, अभिवादनम्, अत्र, करोमि, कथम् ॥

पदार्थः ।

कल्पितदेहविभागः=कल्पित देहकरके भी भेद	एव=निश्चयकरके
न हि=नहीं सिद्ध होता है	परमार्थः=परमार्थ
इति=इसीप्रकार	शिवः=शिवरूप हूँ
कल्पितलोकविभागः=कल्पित लोकोंकरके भी विभाग	इति=ऐसे होनेपर तब फिर
न हि=नहीं सिद्ध होताहै	अभिवादनम्=वंदनाको
इति=इसीप्रकार	अत्र=यहां
अहम्=मैं ही	कथम्=किसप्रकार
	करोमि=मैं करूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह देह भी उसी आत्मामें कल्पित है और लोक भी सब उसी आत्मामें कल्पित हैं कल्पित वस्तुओंकरके उसका भेद किसीप्रकारसे भी सिद्ध नहीं होताहै इसीवास्ते मैं ही परमार्थसे शिवरूप कल्याणरूप एकही हूँ तब फिर अभिवादनव्यवहार कैसे बनता है किन्तु कदापि भी नहीं बनता है ॥ २४ ॥

सरजो विरजो न कदाचिदपि ननु निर्मलनिश्चलशुद्ध इति । अहमेव शिवः परमार्थ इति अभिवादनमत्र करोमि कथम् ॥ २५ ॥

पदच्छेदः ।

सरजः, विरजः, न, कदाचित्, अपि, ननु, निर्मलनिश्चलशुद्धः, इति । अहम्, एव, शिवः परमार्थः, इति, अभिवादनम्, अत्र, करोमि, कथम् ॥

पदार्थः ।

सरजः=रागके सहित	अहम्=मैं ही
विरजः=विरागके सहित	एव=निश्चयकरके
कदाचित्=कदाचित् भी	शिवः=शिवरूप
अपि=निश्चयकरके	परमार्थः=परमार्थस्वरूप हूँ
न=नहीं है	इति=इसप्रकार
ननु=निश्चयकरके	अत्र=यहां
निर्मल-निश्चलशुद्धः=निर्मल और निश्चल तथा शुद्ध है	अभिवादनम्=नाम को
	करोमि=मैं करूं
इति=इसप्रकारका वह है	कथम्=कैसे

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—हम शिवरूप हैं इसवास्ते हम कदाचित् भी रागके सहित और विरागके सहित नहीं हैं किन्तु हम निर्मल निश्चय शुद्धरूप हैं हमारेसे भिन्न दूसरा कोई भी नहीं है इसवास्ते अभिवादन भी नहीं बनता है॥२५॥

न हि देहविदेहविकल्प इति अनृतं चरितं न हि सत्यमिति । अहमेव शिवः परमार्थ इति अभिवादनमत्र करोमि कथम् ॥ २६ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, देहविदेहविकल्पः, इति, अनृतम्, चरितम्, न, हि, सत्यम्, इति । अहम्, एव, शिवः, परमार्थः, इति, अभिवादनम्, अत्र, करोमि कथम्॥

पदार्थः ।

देहविदेह-विकल्पः=वह देहवाला है या देहसे रहित है	अहम्=मैही
इति=इसप्रकारका	एव=निश्चय करके
विकल्पः=विकल्प भी	शिवः=शिवरूप
न हि=उससे नहीं बनता है	परमार्थः=परमार्थस्वरूप हूँ
अनृतम्=मिथ्या और	इति=इसप्रकार
चरितम्=सत्य चरित्र भी	अत्र=यहां
इति=इसमें	अभिवादनम्=नामको
सत्यम्=सत्यरूप	करोमि=मैं करूँ
न हि=नहीं है तब फिर	कथम्=कैसे

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं-उस चेतनमें इस तरहका विकल्प भी नहीं बनता है कि, वह देहसे रहित है या देहवाला है और मिथ्या चरित्र भी उसमें कोई सत्य नहीं है सो मैं हूँ परमार्थ सत्य और कल्याणस्वरूप हूँ तब अभिवादन करना कैसे बनता है किन्तु कदापि नहीं बनताहै ॥ २६ ॥

विन्दति विन्दति नहि नहि यत्र च्छन्दोलक्षणं नहि नहि तत्र । समरसमग्नो भावितपूतः, प्रलपति तत्त्वं परमवधूतः ॥ २७ ॥

इति श्रीदत्तात्रेयविरचितायामवधूतगीतायां स्वामिकार्तिकसंवादे स्वात्मसंवित्त्युपदेशे मोक्षनिर्णयो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

विन्दति, विन्दति, नहि, नहि, यत्र, छन्दः, लक्षणम्, नहि, नहिं, तत्र । समरसमग्नः, भावितपूतः, प्रलपति, तत्त्वम्, परमवधूतः ॥

पदार्थः ।

यत्र=जिस ब्रह्मचेतनमें
विन्दति=कुछ लभता है
विन्दति=कुछ लभता है
न हि न हि=नहीं २
तत्र=तिस ब्रह्ममें
छन्दः=छन्दरूप
लक्षणम्=कविताभी
नहि नाहि=नहीं है २
तत्र=तिस ब्रह्ममें
समरसमग्नः=एकरसमग्न हुआ २
भावितपूतः=शुद्धचित्तवाला
परमवधूतः=परम अवधूत
तत्त्वम्=आत्मतत्त्वको ही
प्रलपति=कथन करता है

दत्तात्रेयजी कहतेहैं-शुद्धचित्तवाला परम अवधूत उस ब्रह्ममें एकरस मग्न हुआ २ क्या किसी पदार्थको या छन्दकी कविताको लभता है ? नहीं लभताहै क्योंकि उस चेतनमें तीनों कालोंमें दूसरा कोई भी पदार्थ नहीं है. इसवास्ते आत्मानन्दसे भिन्न किसी वस्तुको भी वह नहीं लभता है किन्तु आत्मानन्दमें ही वह मग्न रहता है ॥ २७ ॥

इति श्रीमदवधूतगीतायां स्वामिहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्दविरचित-परमानन्दीभाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ७.

श्रीदत्त उवाच ।

रथ्याकर्पटविरचितकन्थः पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः । शून्यागारे तिष्ठति नग्नो शुद्धनिरञ्जनसमरसमग्नः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

रथ्याकर्पटविरचितकन्थः, पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः । शून्यागारे, तिष्ठति, नग्नः, शुद्धनिरञ्जनसमरसमग्नः ॥

पदार्थः ।

रथ्याकर्पटविरचितकन्थः	=गलियोंमें गिरपडे टुकडोंकी गुदडी बनाकर	शून्यागारे	=शून्यमंदिरमें
पुण्याऽपुण्यविवर्जितपन्थः	=पुण्य और पापके मार्गसे रहित हुआ	नग्नः	=नग्न होकरके
		तिष्ठति	=स्थिर होता है
		शुद्धनिरंजनसमरसमग्नः	=शुद्ध मायामलसे रहित ब्रह्मानंदमें मग्न

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहतेहैं—समरस कौन है ? जिस रसका अर्थात् आनन्दका कभी भी नाश न हो ऐसा ब्रह्मानन्द ही है उसी ब्रह्मानन्दमें मग्न जोकि अवधूत है वह गलियोंमें गिरेपडे पुराने टुकडोंको लेकर उनकी गुदडी बनाकर और पुण्यपापके मार्गसे अलग होकर शून्यमंदिरमें जाकर नग्न अवधूत स्थित होता है क्योंकि वह शुद्धचित्तवाला और मायामलसे रहित होता हैं ॥ १ ॥

लक्ष्यालक्ष्यविवर्जितलक्ष्यो युक्तायुक्तविवर्जितदक्षः । केवलतत्त्वनिरञ्जनपूतो वादविवादः कथमवधूतः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

लक्ष्यालक्ष्यविवर्जितलक्ष्यः, युक्तायुक्तविवर्जितदक्षः । केवलतत्त्वनिरञ्जनपूतः, वादविवादः, कथम्, अवधूतः ॥

पदार्थः ।

लक्ष्यालक्ष्यविवर्जितलक्ष्यः	=लक्ष्य अलक्ष्यसे रहित लक्ष्यस्वरूप	केवलतत्त्वनिरञ्जनपूतः	=केवल आत्मतत्त्वकरके पवित्र हुआ २
युक्तायुक्तविवर्जितदक्षः	=युक्तअयुक्तसेवर्जित और चतुर	अवधूतः	=अवधूत है
		वादविवादः	=वादविवाद फिर
		कथम्	=कैसे ?

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहतेहैं—एक तो लक्ष्य होता है दूसरा अलक्ष्य होताहै जिस वस्तुमें जिज्ञासु लोग अपनी चित्तकी वृत्तिको लगाते हैं वही लक्ष्य

होताहै और जिसमें वृत्तिको नहीं लगातेहै वह अलक्ष्य कहाजाता है सो जो कि केवल आत्मतत्त्वमें लीन होगया है मायामलसे रहित पवित्र अवधूत है सो लक्ष्य अलक्ष्य दोनोंसे रहित है और जो कि योगमें जुडाहै वह युक्त कहाजाता है जो नहीं जुडाहै वह अयुक्त कहाजाता है वह युक्तायुक्तसे भी रहित है और चतुर है उसका किसीके साथ वादविवाद करना कैसे बनता है किन्तु नहीं बनता है ॥ २ ॥

आशापाशविबन्धनमुक्ताः शौचाचारविवर्जितयुक्ताः । एवं सर्वविवर्ज्जितसन्तस्तत्त्वं शुद्धनिरञ्जनवन्तः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

आशापाशविबन्धनमुक्ताः, शौचाचारविवर्ज्जितयुक्ताः । एवम्, सर्वविवर्जितसन्तः, तत्त्वम्, शुद्धनिरञ्जनवन्तः ॥

पदार्थः ।

आशापाशविबन्धनमुक्ताः	=आशारूपपाशके बन्धनसे रहित हैं	एवम्	=इसप्रकार
शौचाचारविवर्ज्जितयुक्ताः	=बाहरके शौच आचारसे रहित वह आत्मामें जुडे हैं	सर्वविवर्ज्जितसन्तस्तत्त्वम्	=सर्व आचारोंसे रहितसे तत्त्व हैं
		शुद्धनिरञ्जनवन्तः	=शुद्ध मायामलसे रहित है

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहतेहैं—वह अवधूत जीवन्मुक्त आशारूपी पाशसे रहितहै संपूर्ण बन्धनोंसे रहित है इसीसे वह बाहरके शौचरूपी आचारसे भी रहित है क्योंकि वह आत्मामें जुडाहुआहै और शरीरके भी संपूर्ण तत्त्वोंमें तिसका अध्यास नहीं है शुद्ध है मायामलसे वह रहित है ॥ ३ ॥

कथमिह देहविदेहविचारः कथमिह रागविरागविचारः । निर्मलनिश्चलगगनाकारं स्वयमिह तत्त्वं सहजाकारम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

कथम्, इह, देहविदेहविचारः, कथम्, इह, रागविराग-विचारः । निर्मलनिश्चलगगनाकारम्, स्वयम्, इह, तत्त्वम्, सहजाकारम् ॥

पदार्थः ।

इह=जीवन्मुक्त अवधूतावस्थामें	निर्मलनिश्चल-गगनाकारम्=वह निर्मल है निश्चल है आकाश-की तरह व्यापक है
देहविदेह-विचारः=यह देह है यह विगत देहहै इसप्रकारका विचार	स्वयम्=आप ही वह
कथम्=कैसे होसकता है किन्तु नहीं	सहजाकारम्=स्वाभाविक
इह=इसी अवस्थामें	इह तत्त्वम्=ब्रह्मतत्त्व है
कथम्=कैसे	
रागविराग-विचारः=रागविरागका विचार कैसे होसकताहै क्योंकि	

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जो अवधूत जीवन्मुक्त अवस्थाको प्राप्त हो-गयाहै उसकी दृष्टिमें यह देह नहीं है इसप्रकारका विचार कैसे होसकताहै और किसीमें राग किसीमें विराग ऐसा विचार भी उसकी दृष्टिमें नहीं होता है क्योंकि वह निर्मल है निश्चल है गगनके आकारकी तरह व्यापक है स्वभावसे ही सहजाकार है ॥ ४ ॥

कथमिह तत्त्वं विन्दति यत्र रूपमरूपं कथमिह तत्र । गगनाकारः परमो यत्र विषयीकरणं कथ-मिह तत्र ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

कथम्, इह, तत्त्वम्, विन्दति, यत्र, रूपम्, अरूपम्, कथम्, इह, तत्र । गगनाकारः, परमः, यत्र, विषयी-करणम्, कथम्, इह, तत्र ॥

पदार्थः ।

इह=जीवन्मुक्तअवस्थामें
तत्त्वम्=तत्त्वको
कथम्=किसप्रकार
विन्दति=जानताहै
यत्र=जिस अवस्थामें
रूपम्=रूप और
अरूपम्=अरूप नहीं है
इह तत्र=तिस अवस्थामें
कथम्=कैसे किसको जान सकता है
यत्र=जिस अवस्थामें
गगनाकारः=केवल गगनके आकार वाला
परमः=परमतत्त्व है
तत्र=तिस अवस्थामें
इह=इस चेतनमें
विषयीकरणम्=विषय करना
कथम्=कैसे होसकताहै

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जिस ब्रह्ममें जिस अवधूत अवस्थामें रूप अरूप कोई भी तत्त्व भान नहीं होताहै किन्तु गगनवत् व्यापक परमतत्त्वरूप होजाता है उस अवस्थामें विषयीकरणव्यवहार भी नहीं होताहै ॥ ५ ॥

गगनाकारनिरन्तरहंसस्तत्त्वविशुद्धनिरञ्जनहंसः । एवं कथमिह भिन्नविभिन्नं बन्धविबन्धविकार विभिन्नम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

गगनाकारनिरन्तरहंसः, तत्त्वविशुद्धनिरञ्जनहंसः । एवम्, कथम्, इह, भिन्नविभिन्नम्, बन्धविबन्धविकारविभिन्नम् ॥

पदार्थः ।

गगनाकारनिरन्तरहंसः=गगनके तुल्य निरन्तर वह हंसरूप है
तत्त्वविशुद्धनिरञ्जनहंसः=आत्मतत्त्व शुद्ध है मायामलसे रहित है हंसरूप है
एवम्=इसप्रकार होनेपर
इह=इस आत्मामें
भिन्नविभिन्नम्=भिन्न भेद
कथम्=किसप्रकार होसकताहै
बन्धविबन्धविकारविभिन्नम्=यह बन्ध है यह नहीं है ऐसा भेद भी नहीं बनता है

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह ब्रह्म आकाशके तुल्य सर्वव्यापक आत्मरूप है निर्लेप है हंसस्वरूप है इसप्रकार आत्माकी स्थिति होनेपर इससे सदृश अथवा भिन्न किसप्रकार होसकताहै, और यह बन्ध है यह बन्धनरहित है, यह विकार रहित है यह भी नहीं होसकता ॥ ६ ॥

केवलतत्त्वनिरन्तरसर्वं योगवियोगौ कथमिह गर्वम् । एवं परमनिरन्तरसर्वमेवं कथमिह सारविसारम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

केवलतत्त्वनिरन्तरसर्वम्, योगवियोगौ, कथम्, इह, गर्वम् । एवम्, परमनिरन्तरसर्वम्, एवम्, कथम्, इह, सारविसारम् ॥

पदार्थः ।

केवलतत्त्वनिरन्तरसर्वम्=केवल आत्मतत्त्व ही एकरस सर्वरूप है
योगवियोगौ=संयोग और वियोगका
इह=इस आत्मामें
गर्वम्=अहंकार
कथम्=कैसे बनसकताहै
एवम्=इसीप्रकार
परमनिरन्तरसर्वम्=परम निरन्तर सर्वरूप है
एव=निश्चयकरके तब फिर
इह=इस आत्मामें
सारविसारम्=यह सार है यह असार है
कथम्=यह कैसे होसकताहै ? किन्तु नहीं होसकताहै

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहते है—एक आत्मतत्त्व ही नित्य सर्वव्यापक है उसमें संयोग और वियोग कुछ भी नहीं, संसारमें किसीकी उत्पत्तिके समय जो संयोग और मरणके समय जो वियोग साम्य जाता है यह कल्पनामात्र है इसमें कुछ भी अभिमान उचित नहीं ॥ ७ ॥

केवलतत्त्वनिरञ्जनसर्वं गगनाकारनिरंतरशुद्धम् । एवं कथमिह संगविसङ्गं सत्यं कथमिह रङ्गविरंगम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

केवलतत्त्वनिरञ्जनसर्वम्, गगनाकारनिरन्तरशुद्धम्। एवम्, कथम्, इह, सङ्गविसङ्गम्, सत्यम्, कथम्, इह, रङ्गविरङ्गम् ॥

पदार्थः ।

केवलतत्त्वनिरञ्जनसर्वम्=केवलआत्मतत्त्व-ही मायामलसे रहित सर्वरूप है
गगनाकारनिरन्तरशुद्धम्=आकाशवत् एकरस वह शुद्ध है
एवम्=ऐसे होनेपर
इह=इस आत्मामें
सङ्गविसङ्गम्=सत्संग और विरुद्ध कुसंग
कथम्=कैसे बनसकताहै किन्तु नहीं
इह=इस आत्मामें
सत्यम्=सत्य
रङ्गविरङ्गम्=रंग और विलक्षण रंग
कथम्=कैसे बनसकताहै किन्तु नहीं बनता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—कि, केवल आत्मतत्त्व ही मायामलसे रहित सर्वरूप है. आकाशवत् एकरस और शुद्ध है ऐसे होनेपर इस आत्मामें सत्संग और इससे विरुद्ध जो कुसंग हैं सो कैसे बनसकतेहैं, किंतु नहीं. इस आत्मामें सत्य, रंग, और लक्षणरंग कैसे बनसकताहै किंतु नहीं बनता है, ऐसा मैं हूँ ॥ ८ ॥

योगवियोगै रहितो योगी भोगविभोगै रहितो भोगी। एवं चरति हि मन्दंमन्दं मनसा कल्पितसहजानन्दम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

योगवियोगैः, रहितः, योगी, भोगविभोगैः, रहितः, भोगी। एवम्, चरति, हि, मन्दंमन्दम्, मनसा, कल्पितसहजानन्दम् ॥

पदार्थः ।

योगी=आत्मतत्त्वमें मग्न योगी	मनसा=मनकरके
योगवियोगैः=संयोग और वियोगसे	कल्पितसहजानन्दम्=कल्पितसहजानन्दको
रहितः=रहित है और	हि=निश्चयकरके
भोगी=भोगी	मन्दम्=धीरे
भोगविभोगैः=विहित भोगसे और अहित भोगसे	मन्दम्=धीरे
रहितः=रहित हुआ२	चरति=विचरताहै अर्थात् आत्मानन्दको प्राप्त होताहै
एवम्=इसप्रकारका योगी	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—आत्मतत्त्वमें मग्न हुआ योगी संयोगसे और वियोगसे भी रहित है और योगी भोगसे भी रहित और सहित है इस प्रकारका योगी मनकरके कल्पना किया हुआ सहजानन्दको निश्चय कर धीरे धीरे विचरता है अर्थात् आत्मानन्दको प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥

बोधविबोधैः सततं युक्तो द्वैताद्वैतैः कथमिह मुक्तः ।
सहजो विरजाः कथमिह योगी शुद्धनिरञ्जनसमरसभोगी ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

बोधविबोधैः, सततम्, युक्तः, द्वैताद्वैतैः, कथम्, इह, मुक्तः । सहजः, विरजाः, कथम्, इह, योगी, शुद्धनिरञ्जनसमरसभोगी ॥

पदार्थः ।

बोधाविबोधैः=ज्ञान अज्ञान करके युक्त	योगी=योगी
सततम्=निरन्तर	सहजः=स्वभावसे ही
युक्तः=युक्तहुआ २ और	विरजाः=रागसे रहित
द्वैताद्वैतैः=द्वैत और अद्वैतकरके युक्त हुआ २	कथम्=किसप्रकारहोवेगाक्योंकि योगी
इह=इस संसारमें	शुद्धनिरञ्जन- समरसभोगी =शुद्ध है मायामलसे रहित आत्मानन्दको ही भोक्ताहै ।
कथम्=किसप्रकार	
मुक्तः=मुक्त होताहै	
इह=इस संसारमें	

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहतेहैं—ज्ञान और अज्ञान दोनोंसे युक्त तथा द्वैत और अद्वैत दोनोंको माननेवाला अनिश्चित तत्त्ववाला योगी मुक्त नहीं होसकता कदाचित् कहाजाय कि स्वभावसेही रजोगुणके नाश होनेसे शुद्धज्ञान उत्पन्न होजायग जिससे माया और उससे उत्पन्नहुई वासनाओंसे रहित होकर योगी ब्रह्मानन्दका अनुभव करसकताहै यह नहीं होसकता आत्मज्ञानसे कर्मबन्धके नष्ट होजानेसे और अद्वैतज्ञानके उत्पन्न होनेसे ही मुक्ति होतीहै ॥ १० ॥

भग्नाभग्नविवर्जितभग्नो लग्नालग्नविवर्जितलग्नः ।एवं कथमिह सारविसारःसमरसतत्त्वं गगनाकारः॥११॥

पदच्छेदः ।

भग्नाभग्नविवर्जितभग्नः, लग्नालग्नविवर्जितलग्नः । एवम्, कथम्, इह, सारविसारः, समरसतत्त्वम्, गगनाकारः ॥

पदार्थः ।

भग्नाभग्नविवर्जितभग्नः =आत्मतत्त्वमें भग्न अभग्न नहीं है	सारविसारः=सार विसार भी
लग्नालग्नविवर्जितलग्नः =लग्न और अलग्नसे रहित है अर्थात् किसीसे लग्न भी नहीं है	कथम्=किसीप्रकारसे भी नहीं है
एवम्=ऐसा होनेपर	समरस- तत्त्वम् =क्योंकि वह आत्मतत्त्व एकरस
इह=इस आत्मामें	गगनाकारः =गगनाकार है आकाशवत् व्यापक है

भावार्थः-दत्तात्रेयजी कहतेहैं-आत्मतत्त्व आकाशके समान अनन्त अपार और यथार्थरूपसे जाननेके अयोग्य है आत्माको खण्डहुआ अखण्डहुवा अथवा किसी अंशमें खण्डहुआ और किसी अंशमें अखण्ड हुआ नहीं कहसकते किसीमें लगाहुआ, किसीमें नहीं लगाहुआ अथवा किसी अंशमें लगाहुआ, किसी अंशमें नहीं लगाहुआ भी नहीं कहसकते, इसी प्रकार आत्मतत्त्वमें कितना सारभाग और कितना असारभागहै यह नहीं कहा जासकता प्रयोजन यह है कि जैसा आकाशका ठीक जानलेना कठिन है ऐसा आत्माका जानलेना भी बहुत कठिन है ॥ ११ ॥

सततं सर्वविवर्जितयुक्तः सर्वं तत्त्वविवर्जितमुक्तः। एवं कथमिह जीवितमरणं ध्यानाध्यानैः कथमिह करणम् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः।

सततम्, सर्वविवर्जितयुक्तः, सर्वम्, तत्त्वविवर्जितमुक्तः। एवम्, कथम्, इह, जीवितमरणम्, ध्यानाध्यानैः, कथम्, इह, करणम् ॥

पदार्थः।

सततम्=निरन्तर योगी	जीवितमरणम्=जीना और मरण
सर्वविवर्जितयुक्तः=सर्वसे रहितआत्मतत्त्वमेंहीजुडारहताहै	कथम्=कैसे बनसकताहै फिर
सर्वम्=संपूर्ण	इह=इसी आत्मतत्त्वमें
तत्त्वविवर्जितमुक्तः=तत्त्वसे रहित हुआ ही मुक्त है	ध्यानाध्यानैः=ध्यान और ध्यानाभाव का
एवम्=ऐसा होनेपर	करणम्=करना
इह=इस आत्मतत्त्वमें	इह=इसमें
	कथम्=किसप्रकार होसकता है, किन्तु-किसीतरहसे नहीं

भावार्थः-दत्तात्रेयजी कहतेहैं-आत्मज्ञानी संसारके पदार्थोंसे प्रयोजन न रखकर आत्मामें ही रमताहै, प्रकृति महत्तत्त्वादि विकारोंसे रहित होनेसे जीवन्मुक्त होजाताहै ऐसी दशामें आत्माकी उत्पत्ति और मरण कैसे होसकतेहैं और उसके ध्यान करने और न करनेसे क्या प्रयोजन है ॥ १२ ॥

इन्द्रजालमिदं सर्वं यथा मरुमरीचिका ।
अखण्डितघनाकारो वर्तते केवलं शिवः ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

इन्द्रजालम्, इदम्, सर्वम्, यथा, मरुमरीचिका ।
अखण्डितघनाकारः, वर्तते, केवलम्, शिवः ॥

पदार्थः ।

इदम्=यह जगत्
सर्वम्=संपूर्ण
इन्द्रजालम्=इन्द्रजालके तुल्य है और
यथा=जैसे
मरुमरीचिका=मृगतृष्णाका जल मिथ्या होता है तैसे यह भी सब मिथ्या है
अखण्डितघनाकारः=नाशसे रहित घनाकार
केवलम्=केवल
शिवः=कल्याणस्वरूप आत्मा ही
वर्तते=वर्तता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—यह सब जगत् इन्द्रजालके समान झूठा है और मारवाडदेशमें पानी न होनेसे प्यासे मृगोंको चन्द्रमाके उदय होनेपर चमकते हुए वालूके कण जैसे पानीके समान दूरसे मालूम पडते है पास जानेमें वहां पानीका लेश भी नहीं रहता ऐसा यह संसार है । इसमें फँसेहुए मनुष्यको स्त्रीपुत्रादिके ऊपर जो ममत्व होजाता है वह भ्रान्तिमूलक है उससे कभी शान्ति नहीं होसकती इस जगत्में आकर जानने अथवा उपासना करने योग्य यदि कुछ है तो परिपूर्ण सच्चिदानन्द एक शिव ही है ॥ १३ ॥

धर्म्मादौ मोक्षपर्यन्तं निरीहाः सर्वथा वयम् ।
कथं रागविरागैश्च कल्पयन्ति विपश्चितः ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ।

धर्म्मादौ, मोक्षपर्यन्तम्, निरीहाः, सर्वथा, वयम् ।
कथम्, रागविरागैः, च, कल्पयन्ति, विपश्चितः ॥

पदार्थः ।

वयम्=हम
धर्म्मादौ=धर्मसे आदि लेकर
मोक्षपर्यन्तम्=मोक्षपर्यन्तसर्वविषयोंमें
सर्वथा=सर्वप्रकारकी
निरीहाः=चेष्टाओंसे रहित हैं तब फिर
विपश्चितः=पण्डित लोग
कथम्=किसप्रकार
च=और मेरेमें
रागविरागैः=राग और विराग करके युक्त
कल्पयन्ति=कल्पना कर सकते हैं किन्तु कदापि नहीं

भावार्थः–दत्तात्रेयजी कहतेहैं–धर्मसे लेकर मोक्षतक हम सब प्रकारसे इच्छा रहित हैं । बुद्धिमान् मनुष्य प्रीति अथवा द्वेष किसी पर नहीं करते ॥ १४ ॥

विन्दति विन्दति नहि नहि यत्र छन्दो लक्षणं नहि नहि तत्र । समरसमग्नो भावितपूतः प्रलपति तत्त्वं परमवधूतः ॥ १५ ॥

इति श्रीदत्तात्रेयविरचितायामवधूतगीतायां स्वामिकार्तिकसंवादे स्वात्मसंवित्त्युपदेशे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

पदच्छेदः ।

विन्दति, विन्दति, नहि, नहि, यत्र, छन्दः, लक्षणम्, नहि, नहि, तत्र । समरसमग्नः, भावितपूतः, प्रलपति, तत्त्वम्, परमवधूतः ॥

पदार्थः ।

यत्र=जिस चेतनमें
छन्दः=छन्दरूपी
लक्षणम्=वेद भी वास्तवसे
नहि नहि=सत्य नहीं २
तत्र=उसी चेतनमें प्राप्त होकर
विन्दति-विन्दति=कुछ जानताहै जानताहै
नहि नहि=कुछ भी नहीं जानता है२
समरसमग्नः=आत्मानन्दमें मग्न
भावितपूतः=शुद्धचित्तवाला
परमवधूतः=श्रेष्ठ अवधूत
तत्त्वम्=आत्मतत्त्वको ही
प्रलपति=कथन करता है

भावार्थः-दत्तात्रेयजी कहते हैं-जिस चेतन पदार्थको वेद भी यथार्थरूपसे नहीं जान सकते उसी चेतनको ब्रह्मानन्दमें मग्न हुए शुद्ध आशयवाले अवधूत-राज दत्तात्रेय कहते हैं ॥ १९ ॥

इति श्रीमदवधूतगीतायां स्वामिहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्दविरचितपर-मानन्दीभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

श्रीदत्त उवाच ।

त्वद्यात्रया व्यापकता हता ते ध्यानेन चेतःपरता हता ते । स्तुत्या मया वाक्परता हता ते क्षमस्व नित्यं त्रिविधापराधान् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

त्वद्यात्रया, व्यापकता, हता, ते, ध्यानेन, चेतः-परता, हता, ते । स्तुत्या, मया, वाक्परता, हता, ते, क्षमस्व, नित्यम्, त्रिविधापराधान् ॥

पदार्थः ।

त्वद्यात्रया=तुम्हारी यात्रासे
व्यापकता=व्यापकता
हता=हत हुई
ते=तुम्हारे
ध्यानेन=ध्यानकरके
चेतःपरता=चित्तकी विषयपरता
हता=हत हुई
ते=तुम्हारी
स्तुत्या=स्तुतिकरके
मया=हमारी
वाक्परता=वाणी परकी स्तुति =विषयपरता
हता=नष्ट हुई इसवास्ते
ते=तुम्हारेसे
त्रिविधापराधान्=तीनप्रकारके अपराधोंको
नित्यम्=नित्य ही
क्षमस्व=क्षमा करो

भावार्थः–दत्तात्रेयजी अपने ही आत्मासे कहतेहैं–हे चेतन तुम्हारी यात्रा करनेसे अर्थात् तुम्हारी तरफ जिस कालमें हमारे चित्तने चलना प्रारम्भ किया उसी कालमें चित्तकी विषयोंकी तरफसे व्यापकता नष्ट होगई । तुम्हारी यात्रासे पहले चित्त विषयोंमें व्यापा जाता था अब नहीं व्यापताहै और तुम्हारे ध्यान करके चित्तकी विषयपरायणता नष्ट होगई अर्थात् तुम्हारे ध्यानसे पहले चित्त झट विषयको देखता ही उसकी तरफ दौडजाताथा अब नहीं दौडता है । फिर तुम्हारी स्तुति वाणीमें जोकि परकी निन्दा स्तुति आदिक दोष था वह भी नष्ट होगया इसीवास्ते मैं अब नित्य ही तीनप्रकारके अपराधोंसे क्षमाको माँगता हूँ क्यों कि यह तीनों अपराध मेरे नष्ट होगये हैं ॥ १ ॥

कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिञ्चनः ।
अनीहो मितभुक्छान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ॥२॥

पदच्छेदः ।

कामैः, अहतधीः, दान्तः, मृदुः, शुचिः, अकिञ्चनः ।
अनीहः, मितभुक् शान्तः, स्थिरः, मच्छरणः, मुनिः ॥

पदार्थः ।

कामैः=कामनाकरके	**अनीहः**=इच्छा भी किसी पदार्थकी जिसको नहीं है
अहतधीः=बुद्धि जिसकी हत नहीं है अर्थात् जोकि निष्काम है और	**मितभुक्**=मितका भोजन करता है
दान्तः=बाह्य इन्द्रियोंका भी जिसने दमन किया है	**शान्तः**=शान्त है
मृदुः=कोमल स्वभाव	**स्थिरः**=स्थिर है चलायमान किसी करके नहीं होता है
शुचिः=शुद्ध चित्तवाला	**मच्छरणः**=आत्माकी शरण है
अकिञ्चनः=संग्रहसे रहित है	**मुनिः**=उसीका नाम मुनि है

भावार्थः–दत्तात्रेयजी कहते हैं–जिसकी बुद्धि किसी बातकी इच्छा न करनेसे अर्थात् निष्काम होनेसे दुष्ट नहीं हुई है चक्षु आदि बाह्य इन्द्रियोंको वशमें जिसने कर रखा है कोमल चित्तवाला हो, पवित्र रहताहो, किसी पदार्थको संग्रह न

करता हो और इच्छा भी किसी बातकी न करताहो, थोडासा भोजन करता हो, शान्त हो, स्थिरबुद्धि हो मितभाषी हो, वही आत्मज्ञानी है ॥ २ ॥

अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः ।
अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः ॥३॥

पदच्छेदः ।

अप्रमत्तः, गभीरात्मा, धृतिमान्, जितषड्गुणः । अमानी, मानदः, कल्पः, मैत्रः, कारुणिकः, कविः ॥

पदार्थः ।

अप्रमत्तः=प्रमादसे रहित होना और	अमानी=मानसे रहित
गभीरात्मा=गंभीरस्वभाव होना	मानदः=दूसरेको मानदेना
धृतिमान्=धैर्ययुक्त होना	मैत्रः कल्पः=करुणाकरके युक्त होना
जितषड्गुणः=जीतलिये हैं छः इन्द्रिय और उनके विषय जिसने	कविः=दीर्घदर्शी होना

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—सदा सावधान रहनेवाला, गंभीर स्वभाववाला धैर्यशील, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इन छः विकारोंको जीता हुआ, अभिमान रहित सब कामोंमें कुशल सबसे मित्रतापूर्वक व्यवहार करनेवाला और दयाशील साधु कहाजाताहै ॥ ३ ॥

कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम् ।
सत्यासारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

कृपालुः, अकृतद्रोहः, तितिक्षुः, सर्वदेहिनाम् । सत्यासारः, अनवद्यात्मा, समः, सर्वोपकारकः ॥

पदार्थः ।

कृपालुः=जोकि कृपालु है
तितिक्षुः=सहनशील
सर्वदेहिनाम्=संपूर्ण देहधारियोंके साथ जोकि
अकृत-द्रोहः=कुछ द्रोहको नहीं करताहै
समः=सर्वमें एक ही आत्माको देखताहै
सत्यासारः=सत्यका ही जोकि ताल है अर्थात् जिसमें सत्य ही भरा है
अनवद्यात्मा=जन्ममरणसे रहित है
सर्वोपकारकः=सबका उपकारही करताहै

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहतेहैं—जो कृपा करनेवाला सहनशील और संपूर्ण देहधारियोंके साथ जोकि द्रोह करनेवाला नहीं है और सब जगह सम बुद्धि रखनेवाला है और जो सत्यही बोलनेवाला है, जन्ममरणसे रहित है सबका उपकारी है ऐसा मैं हूँ ॥ ४ ॥

अवधूतलक्षणं वर्णैर्ज्ञातव्यं भगवत्तमैः ।
वेदवर्णार्थतत्त्वज्ञैर्वेदवेदान्तवादिभिः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अवधूतलक्षणम्, वर्णैः, ज्ञातव्यम्, भगवत्तमैः ।
वेदवर्णार्थतत्त्वज्ञैः, वेदवेदान्तवादिभिः ॥

पदार्थः ।

अवधूतलक्षणम्=अवधूतका लक्षण
भगवत्तमैः=भक्तोंकरके और
वर्णैः=वर्णोंवालोंकरके और
वेदवर्णार्थतत्त्वज्ञैः=वेदके वर्णोंके अर्थके तत्त्वको जाननेवाले
वेदवेदान्तवादिभिः=वेदवादियों-करके भी वह लक्षण
ज्ञातव्यम्=जानना उचित है और ऊपर जो अपरमतादि गुण कहे हैं यह साधारण महात्माओंके गुण कहेहैं

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहते हैं—अवधूतके लक्षण सभी भक्त तथा ज्ञानियोंको जानने चाहियें वेद शास्त्र आदिमें अच्छा ज्ञान हो तथापि अवधूत लक्षण सभीको जानना योग्य है ॥ ५ ॥

अब आगेके श्लोकोंमें असाधारण अवधूतके लक्षणको दिखाते हैं और अवधूत-पदके प्रत्येक वर्णके अर्थको प्रत्येक श्लोकोंमें दिखाते हैं।

तथाच–

आशापाशविनिर्मुक्त आदिमध्यान्तनिर्म्मलः।
आनन्दे वर्तते नित्यमकारं तस्य लक्षणम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः।

आशापाशविनिर्मुक्तः, आदिमध्यान्तनिर्म्मलः। आनन्दे, वर्तते, नित्यम्, अकारम्, तस्य, लक्षणम् ॥

पदार्थः।

आशापाश-विनिर्मुक्तः =आशारूपी पाशसे जोकि रहित है	नित्यम्=नित्य ही
आदिमध्यान्त-निर्म्मलः =आदि मध्य और अन्त तीनों कालोंमें जोकि निर्मल है	वर्तते=वर्तताहै
आनन्दे=ब्रह्मानन्दमें ही	तस्य=तिसका
	अकारम्=अकार
	लक्षणम्=लक्षण है

भावार्थः–श्रीस्वामीदत्तात्रेयजी अब अवधूतके लक्षणोंको कहतेहैं–जोकि संसारके पदार्थोंमें अर्थात् भोगोंमें आशारूपी पाशसे रहित है अर्थात् जिसकी किसी भोगपदार्थमें आशा नहीं है और जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति यह तीन अवस्था हैं इन तीनों अवस्थाओंमें जिसका चित्त विषय विकारोंकी तरफ नहीं जाताहै किन्तु शुद्ध है, अथवा भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों कालोंमें जिसका चित्त शुद्ध है अथवा कुमार, यौवन, वृद्धा इन तीनों अवस्थाओंमें जिसका चित्त निर्विकार रहता है और नित्य ही ब्रह्मानन्दमें मग्न रहता है यह लक्षण अर्थात् यह अर्थ अवधूत शब्दके अकारका है ॥ ६ ॥

वासना वर्ज्जिता येन वक्तव्यं च निरामयम्।
वर्तमानेषु वर्तेत वकारं तस्य लक्षणम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

वासना, वर्ज्जिता, येन, वक्तव्यम्, च, निरामयम् ।
वर्तमानेषु, वर्तेत, वकारम्, तस्य, लक्षणम् ॥

पदार्थः ।

येन=जिस पुरुषने	वर्तमानेषु=वर्तमानमें ही
वासना=वासनाका	वर्तेत=वर्तताहै
वर्जिता=त्याग करदिया है	तस्य=तिसका
च=और	लक्षणम्=लक्षण
वक्तव्यम्=वक्तव्य जिसका	वकारम्=वकार है
निरामयम्=रोगसे रहित है	

भावार्थः—दत्तात्रेयजी अब अवधूत शब्दगत वकार अक्षरके अर्थको कहते हैं जोकि वासनासे रहित है अर्थात् इस लोकके भोगोंसे लेकर ब्रह्मलोकके भोगोंतक जिसके चित्तमें किसी भी भोगकी वासना नहीं है । वासना दो प्रकारकी होती है एक तो शुभवासना है दूसरी अशुभवासना है शुभवासना अन्तःकरणकी शुद्धिका हेतु है, अशुभवासना वन्धनका हेतु है सो दोनोंप्रकारकी वासनाओंका जिसने त्याग करदिया है, शुभवासनाका त्याग इसवास्ते उसने किया है कि, अब तिसको चित्तकी शुद्धीकी भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह सिद्धावस्थाको प्राप्त होगयाहै और कथन जिसका निरोग है किसीके भी चित्तमें खेदको उत्पन्न नहीं करता है और वर्तमानमें ही होनेवाले पदोंसे शरीरका निर्वाह करलेता है उसीमें मग्न होके आनन्दमें रहताहै भविष्यत्की चिन्ताको नहीं करताहै यह अवधूत शब्दके वकार अक्षरका अर्थ है ॥ ७ ॥

धूलिधूसरगात्राणि धूतचित्तो निरामयः ।
धारणाध्याननिर्मुक्तो धूकारस्तस्य लक्षणम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

धूलिधूसरगात्राणि, धूतचित्तः, निरामयः । धारणाध्यान-निर्मुक्तः, धूकारः, तस्य, लक्षणम् ॥

पदार्थः ।

धूलिधूसरगात्राणि=धूलिकरके धूसर हैं अङ्ग जिसके	धारणाध्याननिर्मुक्तः=धारणा और ध्यानसे रहित है
धूतचित्तः=धोयागयाहै पापोंसे चित्त जिसका	तस्य=तिस शब्दके
	धूकारः=धूकारका
निरामयः=रोगसे रहित	लक्षणम्=अर्थ है

भावार्थः–अब दत्तात्रेयजी अवधूत शब्दके धू अक्षरके अर्थको दिखाते हैं जिसके सब शरीरके अंग धूलिसे धूमिल हैं और दैवीसंपदके साधनोंकरके जिसका चित्त धोयागयाहै, फिर जोकि रोगसे रहित है अर्थात् रागद्वेषादिक रोग जिसमें नहीं हैं, योग शास्त्रोक्तधारणा और ध्यानसे भी जो रहित है क्योंकि सर्वत्र ही उसकी ब्रह्मदृष्टि होरही है, यह सब धू अक्षरका अर्थ है ॥ ८ ॥

तत्त्वचिन्ता धृता येन चिन्ताचेष्टाविवर्जितः ।
तमोऽहंकारनिर्मुक्तस्तकारस्तस्य लक्षणम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

तत्त्वचिन्ता, धृता, येन, चिन्ताचेष्टाविवर्जितः । तमोहंकारनिर्मुक्तः, तकारः, तस्य, लक्षणम् ॥

पदार्थः ।

येन=जिसने	तमोहंकारनिर्मुक्तः=अज्ञान और अहंकारसे जोकि रहित है
तत्त्वचिन्ताधृता=आत्मतत्त्वकी चिन्ताको धारणकिया है	तस्य=तिसके
चिन्ताचेष्टाविवर्जितः=संसारकीचिन्ता और चेष्टासे जोकि रहित है	तकारः=तकारका यह
	लक्षणम्= अर्थ है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अब अवधूत शब्दके तकारके अर्थको कहते हैं–जिसने आत्मतत्त्वके चिन्तनको ही धारण किया है और सांसारिक किसी पदार्थका भी

जोकि चिन्तन नहीं करता है फिर जोकि संसारके भोगोंकी चेष्टा और चिन्तासे रहित है अज्ञान और अज्ञानका कार्य जोकि अहंकार है उससे भी जोकि रहित है यह अर्थ अवधूत शब्दके तकारका है ॥ ९ ॥

आत्मानं चामृतं हित्वा अभिन्नं मोक्षमव्ययम् ।
गतो हि कुत्सितः काको वर्तते नरकं प्रति ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

आत्मानम्, च, अमृतम्, हित्वा, अभिन्नम्, मोक्षम्, अव्ययम् । गतः, हि, कुत्सितः, काकः, वर्तते, नरकम्, प्रति ॥

पदार्थः ।

आत्मानम्=आत्माको	हि=निश्चयकरके
अमृतम्=अमृतरूपको	कुत्सितः=निन्दित
अभिन्नम्=अभिन्नको	काकः=काक
मोक्षम्=मोक्षस्वरूपको	नरकम्=नरकके
अव्ययम्=अव्ययको	प्रति=प्रति
हित्वा=त्याग करके	वर्तते=वर्तता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—कुत्सित जो पुरुष हैं अर्थात् भेदवादी अज्ञानी पुरुष या विषयी पुरुष हैं सो अमृतरूप मोक्षस्वरूप सर्वमें भेदसे रहित जो एक आत्मा है, तिसका त्याग करके वार २ नरकके प्रति ही दौडते हैं ॥ १० ॥

मनसा कर्मणा वाचा त्यज्यतां मृगलोचना ।
न ते स्वर्गोऽपवर्गो वा सानन्दं हृदयं यदि ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

मनसा, कर्मणा, वाचा, त्यज्यताम्, मृगलोचना । न, ते, स्वर्गः, अपवर्गः, वा, सानन्दम्, हृदयम्, यदि ॥

पदार्थः।

मनसा=मनकरके	ते=तुम्हारे को
कर्मणा=क्रियाकरके	स्वर्गः=स्वर्गसुख और
वाचा=वाणीकरके	अपवर्गः=मोक्षसुख
मृगलोचना=मृगके तुल्य नेत्रोंवाली स्त्रियोंका	वा=अथवा
	हृदयम्=हृदयमें
त्यज्यताम्=त्याग करदेवो	सानन्दम्=आनन्द भी
यदि न=यदि नहीं करोगे तब	न=नहीं होवेगा

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहतेहैं—मन वाणी और कर्मसे स्त्रीको छोडदेना चाहिये संसारमें बन्धन करनेवाली स्त्री ही हैं, बन्धन ही नाना प्रकारके दुःखोंका कारण है इससे दुःखकी जड ही काटदेना बुद्धिमानका काम है, हे जीव! जब तेरा मन यदि आनन्दपूर्ण होजाय तो स्वर्ग और मोक्ष किसी पदार्थकी आवश्यकता नहीं है॥ ११॥

न जानामि कथं तेन निर्म्मिता मृगलोचना।
विश्वासघातकीं विद्धि स्वर्गमोक्षसुखार्गलाम्॥१२॥

पदच्छेदः।

न, जानामि, कथम्, तेन, निर्म्मिता, मृगलोचना।
विश्वासघातकीम्, विद्धि, स्वर्गमोक्षसुखार्गलाम्॥

पदार्थः।

नजानामि=हम इस बातको नहीं जानते है	विश्वासघातकीम्=विश्वासको घात करनेवाली
तेन=विधाताने	विद्धि=तू जान और
मृगलोचना-मृगके लोचनवालीस्त्रीको	
कथम्=किसवास्ते	स्वर्गमोक्षसुखार्गलाम्=स्वर्गऔर मोक्षसुखमें विघ्नरूप अर्गला है
निर्म्मिता=रचा वह कैसी है	

भावार्थः–दत्तात्रेयजी कहतेहैं सृष्टिकर्ता ब्रह्माने अपने नयनबाणोंके जालसे संसारको फंसानेवाली स्त्रियोंको क्यों बनाया यह समझमें नहीं आता, मेरी समझसे तो स्त्रीको विश्वासघात ऐसे बडे पापोंको करनेवाली स्वर्ग मोक्ष और सुखको नष्ट करनेवाली, पुरुषकी शत्रु समझना चाहिये ॥ १२ ॥

मूत्रशोणितदुर्गन्धे ह्यमेध्यद्वारदूषिते ॥
चर्मकुण्डे ये रमन्ति ते लिप्यन्ते न संशयः ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

मूत्रशोणितदुर्गन्धे, हि, अमेध्यद्वारदूषिते । चर्मकुण्डे, ये, रमन्ति, ते, लिप्यन्ते, न, संशयः ॥

पदार्थः ।

हि=निश्चयकरके
मूत्रशोणितदुर्गन्धे=मूत्र और रक्तसे दुर्गन्धयुक्त
अमेध्यद्वारदूषिते=मलके द्वारोंसे दूषित
चर्मकुण्डे=इस चर्मकुण्डमें
ये=जो पुरुष
रमन्ति=रमण करते हैं
ते=वे
लिप्यन्ते=दुःखमय संसारमें लिप्तहोतेहैं
न संशयः=इसमें सन्देह नहीं है

भावार्थः=दत्तात्रेयजी कहतेहैं–जिस स्त्रीको कामीलोग विधुवदनी, रम्भोरु, मृगराजकटी आदिकी उपमा देकर उसके अपवित्र देहको अपने सुखकी सामग्री समझकर उसमें लिप्त रहते और अन्तमें दुःख ही भोगते हैं वह बडे ही मूढ हैं उनको विचारना चाहिये कि मूत्र और रक्तसे दुर्गन्धयुक्त और मलके द्वारोंसे भरीहुई स्त्री है उसके चर्मकुण्डमें जो आनन्दलाभ करतेहैं वह दुःखमय संसारमें लिप्त रहतेहैं अर्थात् उनका निस्तार कभी नहीं होता ॥ १३ ॥

कौटिल्यदम्भसंयुक्ता सत्यशौचविवर्जिता ।
केनापि निर्म्मिता नारी बन्धनं सर्वदेहिनाम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ।

कौटिल्यदम्भसंयुक्ता, सत्यशौचविवर्जिता । केन, अपि, निर्मिता, नारी, बन्धनम्, सर्वदेहिनाम् ॥

पदार्थः ।

कौटिल्यदम्भसंयुक्ता	=कुटिलता और दम्भकरके युक्त जो स्त्री है	केन=किसने अपि=निश्चयकरके निर्मिता=रचाहै
सत्यशौचविवर्जिता	=सत्यसे और पवित्रतासे रहितहै ऐसीस्त्रीको	सर्वदेहिनाम्=संपूर्ण जीवोंको बन्धनम्=बन्धनका कारण है

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहतेहैं—कुटिलता और दम्भकरके युक्त जो स्त्री है, सत्यसे और पवित्रतासे रहितहै ऐसी स्त्रीको किसने निश्चयकरके रची है ऐसी स्त्री संपूर्ण बंधोंका कारण है ॥ १४ ॥

त्रैलोक्यजननी धात्री साभागी नरकं ध्रुवम् ।
तस्यां जातो रतस्तत्र हाहा संसारसंस्थितिः ॥१५॥

पदच्छेदः ।

त्रैलोक्यजननी, धात्री, साभागी, नरकम्, ध्रुवम् ।
तस्याम्, जातः, रतः, तत्र, हाहा, संसारसंस्थितिः ॥

पदार्थः ।

धात्री=जो स्त्री
त्रैलोक्यजननी=तीनों लोकोंको उत्पन्न करनेवाली है
साभागी=भगके सहित
ध्रुवम्=निश्चयकरके
नरकम्=साक्षात् नरक ही है
तस्याम्=तिसी स्त्रीमें
जातः=उत्पन्न हुआ २ पुरुष
तत्र=उसीमें फिर
रतः=प्रीति करता है अर्थात् उसीको भोगता है
हाहा=बडा कष्ट है
संसारसंस्थितिः=कैसी यह संसारकी स्थिति है

भावार्थः-दत्तात्रेयजी कहतेहैं-कि, जो स्त्री तीनों लोकोंमें उत्पन्न करने-वालीहै सो स्त्री भगके साक्षात् नरकही है. तिसी स्त्रीमें उत्पन्न हुआ पुरुष उसीमें फिर प्रीति करताहै इसी तरह संसारस्थिति बडी कष्टकारक है ॥ १५ ॥

जानामि नरकं नारीं ध्रुवं जानामि बन्धनम् ।
यस्यां जातो रतस्तत्र पुनस्तत्रैव धावति ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ।

जानामि, नरकम्, नारीम्, ध्रुवम्, जानामि, बन्धनम् ।
यस्याम्, जातः, रतः, तत्र, पुनः, तत्र, एव, धावति ॥

पदार्थः ।

नारीम्=स्त्रीको	जातः=उत्पन्न होताहै
नरकम्=नरकरूप	तत्र=तिसीमें
जानामि=हम जानते हैं	रतः=क्रीडाको करताहै
ध्रुवम्=निश्चयकरके	पुनः=फिर
बन्धनम्=बन्धनका कारण	एव=निश्चयकरके
जानामि=हम जानतेहैं	तत्र=तिसीमें
यस्याम्=जिसमें	धावति=दौडता भी है

भावार्थः-दत्तात्रेयजी कहतेहैं-स्त्रीको मैं नरक समझताहूँ और निश्चय ही स्त्री बन्धन है ऐसा जानताहूँ पर मनुष्योंकी ओर जब दृष्टि देकर विचार करताहूँ तो बडा खेद होताहै कि जिस स्त्रीसे उत्पन्न हुआ वही आसक्त होजाता है और फिर २ उसीकी ओर दौडताहै । कैसा अज्ञान है ॥ १६ ॥

भगादिकुचपर्यन्तं संविद्धि नरकार्णवम् ।
ये रमन्ति पुनस्तत्र तरन्ति नरकं कथम् ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ।

भगादिकुचपर्यन्तम्, संविद्धि, नरकार्णवम् । ये, रमन्ति, पुनः, तत्र, तरन्दि, नरकम्, कथम् ॥

पदार्थः ।

भगादिकुच-पर्यन्तम् = भगादिसे लेकर कुचों पर्यन्त	तत्र=तिसीमें
नरकार्णवम्=नरकका समुद्र तिसको	रमन्ति=रमण करतेहैं
संविद्धि=सम्यक् तू जान	नरकम्=नरकको
ये=जो पुरुष	कथम्=किसप्रकार वह
पुनः=फिर उसीसे पैदा होकर फिर	तरन्ति=तरजाते है

भावार्थः–दत्तात्रेयजी कहतेहैं–यह स्त्री भगआदिसे लेकर स्तनोंतक नरक रूप समुद्र है । जो मनुष्य एक समय (गर्भस्थिति) वहां रहकर भी फिर वहीं रमते हैं फिर वह नरकसे अलग कैसे होसकतेहैं ॥ १७ ॥

विष्ठादिनरकं घोरं भगञ्च परिनिर्मितम् ।
किमु पश्यसि रे चित्त कथं तत्रैव धावसि ॥ १८ ॥

पदच्छेदः ।

विष्ठादिनरकम्, घोरम्, भगम्, च, परिनिर्मितम् । किमु, पश्यसि, रे, चित्त, कथम्, तत्र, एव, धावसि ॥

पदार्थः ।

विष्ठादिनरकं घोरम् = विष्ठा आदिकों करके घोर नरकरूप	किमु=तो फिर तू क्या तू उसमें क्या
भगञ्च=स्त्रीकी भग	पश्यसि=देखताहै और
परिनिर्मितम्=रचित है	कथम्=किसप्रकार
रे चित्त=हे चित्त !	तत्र=तिसीकी तरफ
	धावसि=दौडता है

भावार्थः –दत्तात्रेयजी कहतेहैं–विष्ठा मूत्र इत्यादि ही नरकोंमें भरे रहतेहैं स्त्रीकी योनि भी ऐसे अशुद्ध पदार्थोंसे घिरीहुई है, हे अधम चित्त ! तू उसको क्यों देखताहै उसकी ओर तृष्णासे दौडाजाताहै ॥ १८ ॥

भगेन चर्म्मकुण्डेन दुर्गन्धेन व्रणेन च ।
खण्डितं हि जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ।

भगेन चर्म्मकुण्डेन, दुर्गन्धेन, व्रणेन, च । खण्डितम्, हि, जगत्, सर्वम्, सदेवासुरमानुषम् ॥

पदार्थः ।

चर्मकुण्डेन=चर्मका एक कुण्डरूप
भगेन=जो स्त्रीका भग है वह
दुर्गन्धेन=दुर्गन्धिका घर है
च=और
व्रणेन=घावकी तरह है अर्थात् जैसे किसी पुरुषको शस्त्रके लगनेसे घाव होजाताहै उसीके आकार-वाली है उसी भग करके
सर्वम्=संपूर्ण
जगत्=जगत्
खण्डितम्=नाशको प्राप्त होरहा है
सदेवासुरमानुषम्=देवता असुर और मनुष्य सहित

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहतेहैं—चमडेके कुण्डरूपी दुर्गन्ध तथा घावके आकारवाले स्त्रीके भगसे देवता दानव और मनुष्योंसे सहित यह जगत् खण्डित हुआ है इसीके कारण इन्द्रको गौतमकी स्त्रीके पीछे सहस्र भगका शाप हुआ असुरोंके राजा शुंभ निशुंभ भी इसीपर आपसमें लडकरके मरगये मनुष्योंमें वाली इसीपर मारागया और भी बहुतसे इसीपर लडकरके कटगये ॥ १९ ॥

देहार्णवे महाघोरे पूरितं चैव शोणितम् ।
केनापि निर्म्मिता नारी भगं चैव अधोमुखम् ॥ २० ॥

पदच्छेदः ।

देहार्णवे, महाघोरे, पूरितम्, च, एव, शोणितम् । केन, अपि, निर्म्मिता, नारी, भगम्, च, एव, अधोमुखम् ॥

पदार्थः ।

देहार्णवे=स्त्रीके शरीररूपी समुद्रमें	अपि=निश्चयकरके
महाघोरे=महान् घोर नरकरूपमें	केन=किसने
च=और	नारी निर्मिता=स्त्री रची गयीहै जिसने इसके शरीरमें
एव=निश्चयकरके	
शोणितम्=रुधिर	भगश्च=भगको
पूरितम्=भरा हुआ है	अधोमुखम्=अधोमुख किया है

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहतेहैं—यह शरीररूपी समुद्र बडा भयंकर है यह लोहूसे भरा हुआ है, इससे किसीने स्त्रीको ऐसा विचित्र बनाया है कि उसका गुप्त इन्द्रिय नीचे मुखवाला होताहै । प्रयोजन यह है कि, ब्रह्माने स्त्रीको बनाकर यह स्पष्ट सूचित किया है कि, जिस स्त्रीको कामीलोग बडी प्यारी समझतेहैं वह मांस, रक्त, हड्डी आदि अपवित्र वस्तुओंकी बनी है उसको छूनेमें भी घृणा होनी चाहिये ॥ २० ॥

अन्तरे नरकं विद्धि कौटिल्यं बाह्यमण्डितम् ।
ललितामिह पश्यन्ति महामन्त्रविरोधिनीम् ॥२१॥

पदच्छेदः ।

अन्तरे, नरकम्, विद्धि, कौटिल्यम्, बाह्यमण्डितम् ।
ललिताम्, इह, पश्यन्ति, महामन्त्रविरोधिनीम् ॥

पदार्थः ।

इह=इस संसारमें	पश्यति=देखता है जिसके
महामन्त्रविरोधिनीम्=संसारसे छूटनेके लिये जोकि महान् मन्त्र वैराग्य है उसका विरोधी जो राग है उससे युक्त	अन्तरे=शरीरके भीतर
	नरकम्=नरकको
	विद्धि=तू जान और
	कौटिल्यम्=कुटिलता करके युक्त
ललिताम्=स्त्रीको	बाह्यमण्डितम्=ऊपरसे भूषित है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—इन्द्रायणका फल बाहरसे बडा मनोहर देख पडताहै और भीतर दुर्गन्धि तथा कुरूपपूर्ण है स्त्री भी ठीक इसी प्रकार भीतर मलमूत्र आदि अपवित्र पदार्थोंसे पूर्ण तथा कुटिलतासे भरीहुई है और बाहरसे सुन्दरी देखपडतीहै यह ब्रह्मविचारकी शत्रुहै इसकारण बुद्धिमान् लोग इसे दूरसेही छोड देतेहैं ॥ २१ ॥

अज्ञात्वा जीवितं लब्धं भवस्तत्रैव देहिनाम् ।
अहो जातो रतस्तत्र अहो भवविडम्बना ॥ २२ ॥

पदच्छेदः ।

अज्ञात्वा, जीवितम्, लब्धम्, भवः, तत्र, एव, देहिनाम् ।
अहो, जातः, रतः, तत्र, अहो, भवविडम्बना ॥

पदार्थः ।

अज्ञात्वा=आत्माको न जानकरके	देहिनाम्=देह धारियोंका
तत्र= उस स्त्रीमें	अहो जातः=बडा आश्चर्य और हुआ
जीवितम्=जीवनलाभ किया	तत्र=उसीमें
लब्धम्=लामकिया	रतः=फिरभी प्रीतियुक्त हुआ
तत्र एव=उसी स्त्रीमें ही	अहो भवविडम्बना=बडी संसारकीविडम्बना आश्चर्यरूप है
भवः=जन्म हुआ	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं—आत्मस्वरूप न जानकर जन्मलिया जन्म भी उसी अनर्थमूलक स्त्रीमें लिया अस्तु दो भूलोंके होनेपर भी यदि फिर आत्माके जाननेका यत्न करते तब भी कल्याण था पर उलटा उसी स्त्रीमें आनन्द करनेलगा अहो इस जन्ममरणरूपी संसारमें कैसा तिरस्कार है ॥ २२ ॥

तत्र मुग्धा रमन्ते च सदेवासुरमानवाः ।
ते यान्ति नरकं घोरं सत्यमेव न संशयः ॥ २३ ॥

पदच्छेदः।

तत्र, मुग्धाः, रमन्ते, च, सदेवासुरमानवाः। ते, यान्ति, नरकम्, घोरम्, सत्यम्, एव, न, संशयः॥

पदार्थः।

तत्र=तिसी स्त्रीमें
मुग्धाः=मूढबुद्धिवाले
सदेवासुरमानवाः=सहित देवतों और असुरों तथा मनुष्योंके
रमन्ते=रमण करते है
ते=वे सब
घोरम्=घोर
नरकम्=नरकको
यान्ति=गमन करते हैं
सत्यम् एव=निश्चयकरके यह सत्य है
न संशयः=इसमें संशय नहीं है

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहतेहैं—आत्मज्ञान न होनेसे ही स्त्रीके गर्भमें वास हुआ वही जन्म पाया, बडे आश्चर्यकी बात है कि, गर्भवासका दुःख जानता हुआ भी फिर उसीमें आसक्त होगया यह कैसी संसारकी लज्जाकी बात है यदि मनुष्यको केवल १० महीने गर्भमें रहनेके कष्टका स्मरण रहे तो कभी संसारकी इच्छा न करे॥ २३॥

अग्निकुण्डसमा नारी घृतकुम्भसमो नरः।
संसर्गेण विलीयेत तस्मात्तां परिवर्जयेत्॥ २४॥

पदच्छेदः।

अग्निकुण्डसमा, नारी, घृतकुम्भसमः, नरः, संसर्गेण, विलीयेत, तस्मात्, ताम्, परिवर्जयेत्॥

पदार्थः।

अग्निकुण्डसमानारी=अग्निके कुण्डके समान स्त्री है
घृतकुम्भसमः=घृतके कुम्भके समान
नरः=पुरुष है
संसर्गेण=सम्बन्धसे
विलीयेत=पिघलजाता है
तस्मात्=तिसीकारणसे
ताम्=उस स्त्रीको
परिवर्जयेत्=त्याग करदेवे

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहतेहैं—स्त्री आगकी भट्टीके समान है, पुरुष घीके घडेके समान है, उन दोनोंका संयोग होते ही कामविकार सिद्ध है इसलिये उन्नति चाहनेवाला पुरुष स्त्रीका परित्याग करे ॥ २४ ॥

गौडी पैष्टी तथा माध्वी विज्ञेया त्रिविधा सुरा ।
चतुर्थी स्त्री सुरा ज्ञेया ययेदं मोहितं जगत् ॥ २५ ॥

पदच्छेदः ।

गौडी, पैष्टी, तथा, माध्वी, विज्ञेया, त्रिविधा, सुरा ।
चतुर्थी, स्त्री, सुरा, ज्ञेया, यया, इदम्, मोहितम्, जगत् ॥

पदार्थः ।

त्रिविधा=तीन प्रकारकी	चतुर्थी=चौथी
सुरा=शराब	स्त्री=स्त्रीको
विज्ञेया=जानो	सुरा ज्ञेया=शराब जानो
गौडी=एक गुडकी	यया=जिस स्त्रीरूपी मदिराकरके
पैष्टी=दूसरी जौकी	इदम्=यह
तथा=उसी प्रकार	जगत्=जगत् सब
माध्वी=तीसरी मौवेकी बनती है	मोहितम्=मोहको प्राप्त होरहा हैं

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहते हैं—गुड, आटा और मधुसे मद्य बनताहै, यह अधम मद्य है परन्तु स्त्रीरूपी चौथा मद्य ऐसा प्रबल है कि जिसने यह संसार वशमें कर लिया है आशय यह है कि, ऊपर कही हुई तीन शराब तो पीकर नशा करती हैं परन्तु यह स्त्रीरूप मद्य ऐसा विचित्र है कि, देखनेसेही मनुष्यको उन्मत्त कर देता है ॥ २५ ॥

मद्यपानं महापापं नारीसंगस्तथैव च ।
तस्माद्द्वयं परित्यज्य तत्त्वनिष्ठो भवेन्मुनिः ॥ २६ ॥

पदच्छेदः ।

मद्यपानम्, महापापम्, नारीसंगः, तथा, एव, च ।
तस्मात्, द्वयम्, परित्यज्य, तत्त्वनिष्ठः, भवेत्, मुनिः ॥

पदार्थः ।

मद्यपानम्=जिसप्रकार शराबका पीना	तस्मात्=तिसीकारणसे
महापापम्=महान् पापरूपी है	द्वयम्=इन दोनोंका परित्याग करके
नारीसंगः=स्त्रीका संग भी	मुनिः=मुनि
एव=निश्चयकरके	तत्त्वनिष्ठः=आत्मनिष्ठावाला
तथा=वैसाहीहै अर्थात् महापापरूपहीहै	भवेत्=होवे ॥

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहतेहैं—शराब पीना और स्त्रीका प्रसङ्ग करना बडा पाप है इससे इन दोनोंको छोडकर मुनि तत्त्वज्ञानयुक्त होवै ॥ २६ ॥

चिन्ताक्रान्तं धातुबद्धं शरीरं नष्टे चित्ते धातवो यान्ति नाशम् । तस्माच्चित्तं सर्वतो रक्षणीयं स्वस्थे चित्ते बुद्धयः सम्भवन्ति ॥ २७ ॥

पदच्छेदः ।

चिन्ताक्रान्तम्, धातुबद्धम्, शरीरम्, नष्टे, चित्ते, धातवः, यान्ति, नाशम् । तस्मात्, चित्तम्, सर्वतः, रक्षणीयम्, स्वस्थे, चित्ते, बुद्धयः, संभवन्ति ॥

पदार्थः ।

चिन्ताक्रान्तम्=चिन्ताकरके दबाया हुआ चित्त तबकि अति दुःखी होता है तब तिसकालमें	यान्ति=प्राप्तहोजातीहैं
	तस्मात्=तिसी कारणसे
	चित्तम्=चित्तकी
	सर्वतः=सर्व ओरसे रक्षा करनी चाहिये क्योंकि
नष्टे चित्ते=चित्तके नाश होनेपर	
धातुबद्धम्=धातुओंकरके बांधाहुआ शरीर भी नष्ट होजाताहै	स्वस्थे चित्ते=चित्तके स्वस्थ होनेपर
	बुद्धयः=सारअसारको विचारनेवाली बुद्धियें
धातवः=सब धातु भी शरीरकी	
नाशम्=नाशको	संभवन्ति=उत्पन्न होतीहैं

भावार्थः—दत्तात्रेयजी कहते हैं—प्राणियोंका देह जो कि रस, रक्त, मांस, चर्बी, हड्डी, मज्जा और शुक्रसे बँधाहुआ है, वह बहुत फिकर करनेसे मनका नाश करदेताहै, मनके नाश होनेसे धातुओंका नाश होजाताहै, इसलिये सावधानीसे चित्तकी रक्षा करनी चाहिये मनके दोष रहित होनेसे बुद्धि ठीक रहतीहै ॥२७॥

दत्तात्रेयावधूतेन निर्म्मितानन्दरूपिणा ।
ये पठन्ति च शृण्वन्ति तेषां नैव पुनर्भवः ॥ २८ ॥

इति श्रीदत्तात्रेयविरचितायामवधूतगीतायां स्वामिकार्त्तिकसंवादे स्वात्मसँवित्त्युपदेशेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

दत्तात्रेयावधूतेन, निर्म्मिता, आनन्दरूपिणा । ये, पठन्ति, च, शृण्वन्ति, तेषाम्, न, एव, पुनर्भवः ॥

पदार्थः ।

दत्तात्रेयावधूतेन=श्रीस्वामिदत्तात्रेयजी अवधूतने
आनन्दरूपिणा=आनन्दरूपने
निर्म्मिता=इस अवधूगीताका निर्माण किया है
ये=जो मुमुक्षुजन
पठन्ति=इसका पाठ करतेहैं
च=और
शृण्वन्ति=या इसको श्रवण करते हैं
तेषाम्=उनका
पुनर्भवः=पुनर्जन्म फिर
एव=निश्चयकरके
न=नहीं होताहै

भावार्थः-दत्तात्रेयजी कहतेहैं-आनन्दमूर्ति श्रीदत्तात्रेय योगिराजने यह अवधूतगीता बनाई है जो इसको पढतेहैं अथवा किसीसे सुनते हैं उनका पुनर्जन्म नहीं होता ॥ २८ ॥

उन्नीसौं छचासठि सँव्वत, भाद्र द्वादशी शुद्ध ।
ग्रंथ यहै पूरण भयो, जानहु सकल सुबुद्ध ॥

इति श्रीमदवधूतगीतायां स्वामिहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्दविरचितपरमानन्दीभाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस-मुंबई.